[2023] 9 एस.सी.आर. 285 : 2023 आई.एन.एस.सी. 423

मेसर्स एन.एन. ग्लोबल मर्केंटाइल प्राइवेट लिमिटेड

विरूद्ध

मैसर्स इंडो यूनिक फ्लेम लिमिटेड एवं अन्य

(सिविल अपील संख्या: 3802–3803/2020)

25, अप्रैल 2023

[**के एम. जोसेफ, अजय रस्तोगी, अनिरुद्ध बोस, हृषिकेश रॉय और सी. टी. रविकुमार, जे.जे.**]

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996– धारा 11(6ए), 7, 8, 9, 11 और 16 – भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 – धारा 3, 33 एवं 35 – संविदा अधिनियम, 1872– धारा 2(एच), 10 – भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा मध्यस्थों की नियुक्ति योजना, 1996 – एक अपंजीकृत लिखत में मध्यस्थता करार, जो वैध और प्रवर्तनीय होने पर विधिवत स्टांपित नहीं है – क्या स्टाम्प अधिनियम 1899 की धारा 35 में वैधानिक रोक, अधिनियम की अनुसूची के साथ पठित धारा 3 के तहत स्टांप शुल्क के लिए प्रभार्य लिखत पर लागू, ऐसे लिखत में निहित मध्यस्थता करार को भी लागू होगा, जो स्टांप शुल्क के भुगतान के लिए प्रभार्य नहीं है, अस्तित्वहीन, अप्रवर्तनीय है या अमान्य, धारित मूल संविदा/लिखत पर स्टांप शुल्क का लंबित भुगतान– अभिनिर्धारित **[प्रति के.एम. जोसेफ, जे. (स्वयं के लिए और अनिरुद्ध बोस, जे. के लिए)]**: एक लिखत, जो स्टांप शुल्क के लिए योग्य है, और जिस पर स्टाप नहीं लगी है, में मध्यस्थता खंड शामिल हो सकता है, उसे संविदा नहीं कहा जा सकता है, जो संविदा अधिनियम की धारा 2(एच) के अर्थ के तहत विधि में प्रर्वतनीय है और संविदा अधिनियम की धारा 2 (जी) के तहत प्रर्वतनीय नहीं है – एक बिना मुद्रांकित लिखत, जब उस पर स्टाम्प लगाने की आवश्यकता होती है, संविदा नहीं होने और

विधि में प्रवर्तनीय नहीं होने के कारण, विधि में मौजूद नहीं हो सकता है। अधिनियम में धारा 11(6A) को शामिल करने के पीछे असली उदेश्य न्यायालय को धारा 11 के तहत कार्य करते समय, मध्यस्थता करार के अस्तित्व के बारे में जांच करना और सुनिश्चित करने तक सीमित करना था, – योजना की धारा 11 के तहत न्यायालय को मूल करार के आधार पर या प्रमाणित प्रति पर कार्य करने की अनुमति देती है – प्रमाणित प्रति में भुगतान की गई स्टाम्प शुल्क को स्पष्ट रूप से इंगित करें यदि वह ऐसा नहीं करता है, तो न्यायालय को ऐसी प्रमाणित प्रति पर कार्रवाई नहीं करनी चाहिए। यदि लिखत की मूल प्रति प्रस्तुत की जाती है और उस पर स्टाम्प नहीं लगा है, तो न्यायालय, धारा 11 के तहत कार्य करने में – स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के तहत कार्य करने के लिए बाध्य हैं – जब यह ऐसा करता है, तो अन्य प्रावधान, जो, शुल्क के भुगतान और शास्ति के मामले में स्टाम्प एक्ट की धारा 42(2) के तहत प्रमाण पत्र में समाप्त होगा, अधिनियम भी लागू होगा– जब ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी तो न्यायालय विधि के अनुसार आवेदन पर कार्रवाई करने के लिए स्वतंत्र होगा – एक मध्यस्थता करार, अधिनियम की धारा 7 के अर्थ के अंतर्गत, जो स्टांप शुल्क को आकर्षित करता है और जिस पर शुल्क मुद्रांकित नहीं है या अपर्याप्त रूप से मुद्रांकित है, पर कार्यवाही नहीं किया जा सकता है, जब तक कि स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 के अनुसार परिबद्ध करना और आवश्यक शुल्क का भुगतान कर, आवश्यक प्रमाण पत्र स्टाम्प अधिनियम की धारा 42 के तहत प्रदान नही किया जाता है – धारा 33 के प्रावधान और स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 के तहत वर्जन, लिखतों पर लागू: बिना स्टाम्प लगे या अपर्याप्त रूप से मुद्रांकित होने के कारण, करार उपलब्ध नहीं होगा 'साक्ष्य में स्वीकार किया गया' और 'कार्यवाही की जाएगी', जब तक कि प्रक्रियाओं का पालन करते हुए इसे मान्य नहीं किया जाता, स्टाम्प अधिनियम की अनुसूची के साथ पठित धारा 3 के तहत स्टाम्प शुल्क के लिए प्रभार्य, इस तरह के लिखत में निहित मध्यस्थता करार को विधि में गैर –मौजूद बना देगा जब तक कि लिखत स्टाम्प अधिनियम के तहत मान्य नहीं है – अभिनिर्धारित (**प्रति सी. टी. रविकुमार, जे**):

स्टाम्प रहित या अपर्याप्त रूप से स्टाम्पित होने के कारण, करार 'साक्ष्य में स्वीकार' और 'कार्रवाई के लिए' तब तक उपलब्ध नहीं होगा जब तक कि यह स्टाम्प अधिनियम के प्रावधानों के तहत निर्धारित प्रक्रियाओं का पालन करते हुए मान्य नहीं हो जाता है और तब तक, यह 'विधि में' मौजूद नहीं होगा–जब मध्यस्थता खंड वाला मूल दस्तावेज प्रस्तुत किया जाता है और यदि यह पाया जाता है कि यह स्टाम्प रहित या अपर्याप्त रूप से स्टाम्पित है, तो न्यायालय धारा 11 के तहत कार्य कर रहा है वह धारा 35 स्टाम्प एक्ट के तहत कार्य करने के लिए कर्तव्यबद्ध है। भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के तहत कार्रवाई करने के लिए – अभिनिर्धारित (**अजय रस्तोगी, जे. के अनुसार**) (असहमति): मध्यस्थता करार की एक प्रति/प्रमाणित प्रति का अस्तित्व, चाहे वह अमुद्रांकित/अपर्याप्त रूप से स्टाम्पित हो प्रेषण पुर्व स्तर पर 1996 के अधिनियम की धारा 11(6A) के तहत मध्यस्थ के नियुक्ति हेतु केवल "मध्यस्थता करार के अस्तित्व" अकेले की 2015 के संशोधन के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए की प्रथम दृष्टया जांच तक ही सीमित रहेगा और अदालतों को ऐसा करना चाहिए अधिनियम, 1996 की धारा 11(13) के तहत निर्धारित मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए समय–सारिणी का सख्ती से पालन करें – अपर्याप्त स्टाम्प/अनुचित स्टाम्प लगी या मध्यस्थता करार की वैधता आदि सहित सभी प्रारंभिक बहस योग्य मुद्दे मध्यस्थ/मध्यस्था पंचाट के लिए संदर्भित हैं, अधिनियम 1996 की धारा 16 के तहत ट्रिब्यूनल, जो कोम्पेटेंज़ के सिद्धांत के आधार पर – कोम्पेटेंज़ के पास ऐसा करने की शक्ति है – अभिनिर्धारित (**प्रति हृषिकेश रॉय, जे**.) (असहमति) मुद्रांकन और जब्ती की जांच की आवश्यकता नहीं है मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 के तहत पूर्व–संदर्भ चरण में, न्यायालय द्वारा प्रारंभिक स्तर पर किया जाना चाहिए – मूल संविदा/उपलेख की गैर–मुद्रांकन/ अपर्याप्त मुद्रांकन मध्यस्थता करार को विधि में गैर –मौजूद नहीं बनाएगी और संदर्भित करने के उद्देश्य से अप्रवर्तनीय/शून्य –मध्यस्थता के लिए एक मामला – एक मध्यस्थता करार को रद्द नहीं किया जाना चाहिए यदि इसमें स्टांप की कमी है जोकि एक उपचार योग्य दोष है।

संदर्भ का उत्तर देते हुए, न्यायालय द्वारा

अभिनिर्धारित:

<u>के.एम. जोसेफ, जे. (स्वयं के लिए और अनिरुद्ध बोस, जे.) द्वारा</u>

1.1. एक करार, जो एक मूल विधि के कारण अप्रवर्तनीय है, जिसमें स्टाम्प अधिनियम शामिल होगा, संविदा अधिनियम की धारा 2 (एच) को लागू करने पर संविदा नहीं होगा। यदि कोई करार प्रर्वतनीय है, तभी वह संविदा बनेगा। यह केवल एक 'संविदा' है, जो 'मध्यस्थता करार' होगा, जिस पर अधिनियम की धारा 11(6ए) में विचार किया गया है। किसी बिना स्टाम्प लगे मध्यस्थता करार को केवल 'इलाज योग्य दोष' के रूप में वर्णित करना उचित नहीं होगा। जब तक यह एक बिना स्टाम्प लगा लिखत रहेगा, तब तक किसी भी प्रयोजन के लिए इस पर ध्यान नहीं दिया जा सकता, जैसा कि स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 में दर्शाया गया है। यह अप्रवर्तनीय रहता है। धारा 17 उस समय की घोषणा करती है जब भारत में निष्पादित किसी लिखत पर स्टाम्प लगाई जानी चाहिए। उक्त प्रावधान इस बात पर विचार करता है कि ऐसे दस्तावेज़ पर स्टाम्प दस्तावेज़ के निष्पादन से पहले या उसके समय लगनी चाहिए। कोई भी सार्वजनिक अधिकारी, न ही न्यायालय और न ही मध्यस्थ, किसी भी व्यक्ति को इस पर कार्रवाई करने या इसे साक्ष्य के रूप में प्राप्त करने के लिए कहने की अनुमति नहीं दे सकता है। क़ानून के अनुसार, यह जीवन से रहित है। यह 'विधिन प्रर्वतनीय नहीं' है। उक्त अर्थ में, यह विधि में भी मौजूद नहीं हो सकता है। यह शून्य होगा। शून्यता को अप्रवर्तनीयता के साथ जोड़ दिया जाता है, जो संविदा अधिनियम की धारा 2 (जे) से सुदृढ़ीकरण प्राप्त करता है जो एक संविदा को प्रस्तुत करता है जो प्रर्वतनीय नहीं रह जाता है। धारा 11(6ए) में जो विचार किया गया है वह एक संविदा है और यह कोई ऐसा करार नहीं है जिसे संविदा के रूप में नहीं माना जा सकता है। यह धारा 11(6ए) में 'मध्यस्थता करार' शब्दों के उपयोग के बावजूद है। दूसरे शब्दों में, संविदा को अधिनियम की धारा 7 के अनुरूप होना चाहिए। यह कहने की आवश्यकता

नहीं है कि इसे संविदा अधिनियम की आवश्यकताओं को भी पूरा करना होगा। [पैरा 70 और 71]

1.2. कोई करार जिस पर स्टाम्प नहीं लगी है या अपर्याप्त स्टाम्प लगी है, वह तब तक प्रवर्तनीय नहीं है, जब तक वह उक्त स्थिति में रहता है। ऐसा लिखत प्रवर्तनीय न होने के कारण अमान्य होगा [संविदा अधिनियम की धारा 2(जी) देखें]। ऐसा नहीं होगा कि उक्त अर्थ में विधि में मौजूद है। इसे केवल धारा 33 और स्टाम्प अधिनियम के अन्य प्रावधानों में विचारित प्रक्रिया द्वारा "मान्य" किया जा सकता है। इसका मतलब यह है कि न्यायालय इसे प्रर्वतनीय और इसलिए विधि में मौजूद नहीं मानेगी। समझाए गए अर्थ में, इसे 'शून्य नहीं' और इसलिए 'अमान्य नहीं' के रूप में नहीं पाया जाएगा। इस प्रकार, अधिनियम, स्टाम्प अधिनियम और संविदा अधिनियम के संदर्भ में, इस संबंध में एसएमएस टी एस्टेट्स में इस न्यायालय की राय, जैसा कि गरवारे में दोहराया गया और विद्या ड्रोलिया में अनुमोदित है, सही है। [पैरा 74]

2. एक लिखत, जो स्टांप शुल्क के लिए पात्र हो सकता है में एक मध्यस्थता खंड शामिल है और जिस पर स्टाम्प नहीं लगी है, उसे संविदा नहीं कहा जा सकता है, जो संविदा अधिनियम की धारा 2 (एच) के अर्थ के तहत विधि में प्रर्वतनीय है और संविदा की धारा 2 (जी) के तहत प्रर्वतनीय नहीं है। कार्यवाही करना। एक बिना सील लगा लिखत, जब उस पर सील लगाने की आवश्यकता होती है, संविदा नहीं होने और विधि में प्रवर्तनीय नहीं होने के कारण, विधि में मौजूद नहीं हो सकता है। अत: गरवारे की कंडिका–22 एवं 29 स्वीकृत की जाती है। इस हद तक, यह न्यायालय विद्या ड्रोलिया को भी मंजूरी देता है, जहां तक कि गरवारे के पैराग्राफ –22 और 29 में तर्क को मंजूरी दी जाती है। [पैरा 110]

3. योजना अधिनियम की धारा 11 के तहत न्यायालय को मूल करार के आधार पर या प्रमाणित प्रति पर कार्य करने की अनुमति देती है। हालाँकि, प्रमाणित प्रति में एसएमएस टी एस्टेट्स में भुगतान की गई स्टाम्प शुल्क का स्पष्ट रूप से उल्लेख

होना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करता है, तो न्यायालय को ऐसी प्रमाणित प्रति पर कार्रवाई नहीं करनी चाहिए। [पैरा 112]

4. स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के प्रावधान और स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 के तहत रोक, स्टाम्प अधिनियम की अनुसूची के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 3 के तहत स्टाम्प शुल्क के लिए प्रभार्य उपकरणों पर लागू होने से, ऐसे लिखत में निहित मध्यस्थता करार को गैर माना जाएगा। –विधि में मौजूद है जब तक कि लिखत स्टाम्प अधिनियम के तहत मान्य न हो। [पैरा 115]

> एन.एन. ग्लोबल मर्केंटाइल प्राइवेट लिमिटेड बनाम इंडो यूनिक फ्लेम लिमिटेड और अन्य (2021) 4 एससीसी 379 को खारिज(overruled) कर दिया गया।

एस.एम.एस.टी एस्टेट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम चांदमारी टी कंपनी प्राइवेट लिमिटेड (2011) **14 एससीसी 66: [2011] 9 एस.सी.आर 382**; गरवारे वॉल रोप्स लिमिटेड बनाम कोस्टल मरीन कंस्ट्रक्शन एंड इंजीनियरिंग लिमिटेड **(2019) 9 एससीसी 209: [2019] 5 एस.सी.आर 579**; विद्या ड्रोलिया और अन्य बनाम दुर्गा ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन **(2021) 2 एस.सी.सी 1;** धर्मरत्नाकर राय बहादुर आरकोट नारायणस्वामी मुदलियार छत्रम बनाम भास्कर राजू एंड ब्रदर्स **(2020) 4 एस.सी.सी 612: [2020] 3 एस.सी.आर 798; –** पुष्टि की गई।

एस.बी.पी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड और अन्य **(2005) 8 एस.सी.सी 618: [2005] 4 सप्ल। एस.सी.आर 688 – अनुसरण किया गया।**

हिंदुस्तान स्टील लिमिटेड बनाम दिलीप कंस्ट्रक्शन कंपनी **(1969) 1 एस.सी.सी 597: [1969] 3 एस.सी.आर 736**; यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम हुंडई इंजीनियरिंग एंड कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड **(2018) 17 एस.सी.सी 607: [2018] 12 एस.सी.आर 1085** और गोविंद रबर लिमिटेड लाउड्स ड्रेफस

कमोडिटीज एशिया प्राइवेट लिमिटेड **(2015) 13 एस.सी.सी 477: [2014] 12 एस.सी.आर 488** – पर भरोसा।

ड्यूरो फेलगुएरा, एस.ए. बनाम गंगावरम पोर्ट लिमिटेड **(2017) 9 एस.सी.सी 729: [2017] 10 एससीआर 285;** मायावती ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड बनाम प्रद्युत देब बर्मन **(2019) 8 एस.सी.सी 714: [2019] 1 एस.सी.आर 123;** लछमी नारायण अग्रवाल और अन्य बनाम ब्रज मोहन सिंह (मृतक के बाद से) **51 भारतीय अपील 332**; जॉयमैन बेवा बनाम ईज़ीन सरकार **एआईआर 1926 कलकत्ता 877**; ग्रेट आफश्योर लिमिटेड वी. ईरानी आफश्योर इंजीनियरिंग एंड कंस्ट्रक्शन कंपनी **(2008) 14 एस.सी.सी 240: [2008] 12 एस.सी.आर 515;** आयकर आयुक्त बनाम हिंदुस्तान बल्क कैरियर्स **(2003) 3 एस.सी.सी 57: [2002] 5 पूरक। एससीआर 387**; शिन–एत्सु केमिकल कंपनी लिमिटेड बनाम अक्षय ऑप्टिफाइबर लिमिटेड और अन्य **(2005) 7 एस.सी.सी 234: [2005] 2 सप्ल। एस.सी.आर 699;** नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बोघारा पॉलीफैब प्राइवेट लिमिटेड **(2009) 1 एस.सी.सी 267: [2008] 13 एस.सी.आर 638;** गंगा रिट्रीट एंड टावर्स लिमिटेड बनाम राजस्थान राज्य **(2003) 12 एस.सी.सी 91: [2003] 6 पूरक। एस.सी.आर 1134;** ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी बनाम नरभेराम पावर एंड स्टील प्राइवेट लिमिटेड **(2018) 6 एस.सी.सी 534: [2018] 4 एस.सी.आर 826;** डॉ. चिरंजी लाल (डी) लार्स द्वारा वी. हरि दास (डी) एलआरएस द्वारा **(2005) 10 एस.सी.सी 746: [2005] 1 पूरक। एस.सी.आर 359;** हरिओम अग्रवाल बनाम प्रकाश चंद मालवीय **(2007) 8 एस.सी.सी 514: [2007] 10 एस.सी.आर 772;** एम.आर. इंजीनियर्स एंड कॉन्ट्रैक्टर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम सोम दत्त बिल्डर्स लिमिटेड **(2009) 7 एससीसी 696: [2009] 10 एससीआर 373** और जुपुडी केशव राव बनाम पुलवर्ती वेंकट सुब्बाराव और अन्य **(1971) 1 एससीसी 545: [1971] 3 एससीआर 590** – निर्दिष्ट किया ।

दीप नारायण सिंह बनाम नागेशर प्रसाद और अन्य एआईआर **1930 ऑल 1 (एफबी) / 1929 एससीसी ऑनलाइन ऑल 1;** इमामबी बनाम खाजा हुसैन उर्फ खाजासाब **एआईआर 1988 कर्नाटक 51;** गुलज़ारी लाल मारवाड़ी बनाम राम गोपाल **ILR 1937 1– कलकत्ता 257;** पूर्ण चंद्र चक्रवर्ती और अन्य बनाम कालीपद रॉय और अन्य **एआईआर 1942 कलकत्ता 386;** यूनाइटेड इंश्योरेंस कंपनी ऑफ पाकिस्तान लिमिटेड बनाम हाफिज मुहम्मद सिद्दीकी पीएलडी **1978 एससी 279** और गौतम लैंडस्केप्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम शैलेश एस. शाह **(2019) एससीसी ऑनलाइन बॉम्बें 563** –निर्दिष्ट किया।

हेमैन बनाम डार्विन्स लिमिटेड **(1942) एसी 356 एचएल** – निर्दिष्ट किया।

<u>प्रति सी. टी. रविकुमार, जे. (सहमत)</u>

1. उस 'लिखत' को प्राप्त करना जो मध्यस्थता करार को ले जा रहा है या उस पक्ष से मध्यस्थता खंड युक्त है जो इसके अस्तित्व का दावा करता है, उस सीमित अर्थ में अनिवार्य रूप से साक्ष्य प्राप्त करने का एक कार्य है। इसलिए , न्यायालय, जिसके पास साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार और क्षमता है, धारा 11 (6) के तहत शक्ति का उपयोग करने के उद्देश्य से, धारा 33 के संदर्भ में आगे बढ़ने से कैसे रोक सकता है यदि उसे ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा लिखत प्रस्तुत किया गया है इससे पहले, हालांकि इस पर स्टाम्प लगाना आवश्यक है, यह बिना स्टाम्प लगी है या विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई गई है। धारा 33 की उप–धारा (2) के तहत जनादेश के संदर्भ में, उस उद्देश्य के लिए, धारा 11 के न्यायाधीश जिन्होंने साक्ष्य प्राप्त किया है, यह सुनिश्चित करने के लिए प्रभार्य और प्रस्तुत किए गए लिखत की 'जांच' करेंगे। क्या उस पर भारत में लागू विधि द्वारा अपेक्षित मूल्य और विवरण की स्टाम्प लगी हुई है, जब ऐसा लिखत निष्पादित किया गया था या पहली वर्जन निष्पादित किया गया था। प्रावधान (बी), केवल उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को ऐसे किसी भी लिखत की जांच करने और उसे ज़ब्त करने का कर्तव्य ऐसे अधिकारी को सौंपने की अनुमति देगा जैसा कि न्यायालय उस निमित्त

नियुक्त करें. इस प्रकार, यह केवल उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को उक्त परंतुक के तहत उल्लिखित तरीके से ऐसे किसी भी लिखत की जांच करने और परिबद्ध करने का कर्तव्य सौंपने का विवेक देता है, यदि वह लिखत को परिबद्ध करने के लिए प्रदान किए गए तरीके से आगे नहीं बढ़ना चाहता है। प्रासंगिक प्रावधान, स्वयं द्वारा। जब यह धारा 33 (1) और (2) के तहत प्रावधान है, तो इसका एक संयुक्त वाचन स्पष्ट रूप से धारा 11 (6) के तहत शक्ति का प्रयोग करने वाले न्यायालय के लिए धारा 33 के तहत जनादेश के संदर्भ में आगे बढ़ना अनिवार्य बनाता है। परिस्थितियाँ कानूनी रूप से इसके आह्वान को आमंत्रित करती हैं। एक विरोधाभासी दृष्टिकोण, धारा 33 की उप–धारा (2) और प्रावधान (बी) को निरर्थक बना देगा और प्रावधानों की मूल आत्मा को पराजित कर देगा क्योंकि सी अधिनियम की धारा 11 (6) के तहत दायर आवेदन के संबंध में उनके आवेदन से संबंधित है। [पैरा 5][379–सी–एच]

2. अधिनियम की धारा 11(10) के तहत बनाई गई योजना की धारा 2 (ए) के संदर्भ में मूल दस्तावेज़ के अलावा, द्वितीयक साक्ष्य के रूप में जो भी प्रस्तुत किया जाना स्वीकार्य है, वह प्रमाणित प्रति के अलावा और कुछ नहीं है। लेकिन ऐसी प्रमाणित प्रति, स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के तहत आगे बढ़ने के लिए उपलब्ध नहीं होगी यदि यह बिना स्टाम्प लगी हो या अपर्याप्त रूप से स्टाम्पित हो। ऐसी परिस्थिति में ऐसी प्रमाणित प्रति पर कार्रवाई नहीं की जाएगी। [पैरा 18][384–सी–डी]

एस.बी.पी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड और अन्य **(2005) 8 एस.सी.सी 618: [2005] 4 सप्ल। एस.सी.आर 688** – अनुसरण किया गया। माउंट बिट्टन बीबी और अन्य बनाम कुंटू लाल और अन्य। आई.एल.आर **[1952] 2 सभी 984** – संदर्भित।

<u>प्रति अजय रस्तोगी, जे. (असहमति)</u>

1. प्री–रेफ़रल चरण में धारा 11(6ए) के तहत न्यायालय का सीमित दायरा यह जांचना है कि क्या मध्यस्थता करार, प्रथम दृष्टया, अधिनियम, 1996 की धारा 7

के तहत संदर्भित है, जिसमें केवल का निर्धारण शामिल है निम्नलिखित कारक: (i) क्या मध्यस्थता करार लिखित में है? (ii) क्या मध्यस्थता करार के लिए मुख्य संविदात्मक तत्व पूरे हो गए हैं? (iii) दुर्लभ अवसरों पर, आपत्ति के गंभीर नोट पर, यदि कोई हो, यह जांच कर सकता है कि क्या विवाद का विषय मध्यस्थता योग्य है? [पैरा 92][420–ई–एफ]

2. (i) मध्यस्थता करार की एक प्रति/प्रमाणित प्रति का अस्तित्व, चाहे पूर्व–रेफ़रल चरण में बिना स्टाम्प लगी हो/60 अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगी हो, अधिनियम की धारा 11(6ए) के तहत एक मध्यस्थ की नियुक्ति के प्रयोजनों के लिए एक प्रवर्तनीय दस्तावेज है। . 1996 जहां न्यायिक हस्तक्षेप 2015 के संशोधन के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए केवल "मध्यस्थता करार के अस्तित्व" की प्रथम दृष्टया जांच तक ही सीमित रहेगा और अदालतों को इसके तहत निर्धारित मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए समय–सारिणी का सख्ती से पालन करना होगा। अधिनियम, 1996 की धारा 11(13)। (ii) अपर्याप्त स्टाम्प लगी/अनुचित स्टाम्प लगी या मध्यस्थता करार की वैधता आदि सहित सभी प्रारंभिक/बहस योग्य मुद्दे अधिनियम, 1996 की धारा 16 के तहत मध्यस्थ/मध्यस्थ न्यायाधिकरण को संदर्भित किए जाने योग्य हैं। जो, कोम्पेटेंज़ के सिद्धांत के आधार पर – कोम्पेटेंज़ के पास ऐसा करने की शक्ति है। (iii) एसएमएस टी एस्टेट्स प्राइवेट लिमिटेड का निर्णय खारिज कर दिया गया है। गरवारे वॉल रोप्स लिमिटेड के पैरा 22 और 29, जो विद्या ड्रोलिया और अन्य में पैरा 146 और 147 में स्वीकृत हैं, को उस हद तक खारिज कर दिया गया है।. [पैरा 97][422–एच; 423–ए–डी]

एन.एन. ग्लोबल मर्केंटाइल प्राइवेट लिमिटेड बनाम इंडो यूनिक फ्लेम लिमिटेड और अन्य **(2021) 4 एससीसी 379**– पुष्टि की गई।

विद्या ड्रोलिया और अन्य बनाम दुर्गा ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन **(2021) 2 एससीसी 1;** एसएमएस टी एस्टेट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम चांदमारी टी कंपनी प्राइवेट लिमिटेड

(2011) 14 एससीसी 66: [2011] 9 एससीआर 382 और गरवारे वॉल रोप्स लिमिटेड बनाम कोस्टल मरीन कंस्ट्रक्शन एंड इंजीनियरिंग लिमिटेड **(2019) 9 एससीसी 209: [2019] 5 एससीआर 579 – खारिज कर दिया गया।**

जुपुडी केशव राव बनाम. पुलवार्थी वेंकट सुब्बाराव और अन्य **(1971) 1 एससीसी 545: [1971] 3 एससीआर 590** और हरिओम अग्रवाल बनाम प्रकाश चंद मालवीय **(2007) 8 एससीसी 514: [2007] 10 एससीआर 772 – पर भरोसा किया गया।**

नैना ठक्कर बनाम अन्नपूर्णा बिल्डर्स **(2013) 14 एससीसी 354;** आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य बनाम पी. लक्ष्मी देवी (श्रीमती) **(2008) 4 एससीसी 720: [2008] 3 एससीआर 330;** एनका इंसात वे सनाई एएस बनाम 000 बीमा कंपनी चुब **(2020) यूके एससी 38;** शिन–एत्सु केमिकल अक्षय ऑप्टिफाइबर लिमिटेड और अन्य **(2005) 7 एससीसी 234: [2005] 2 पूरक। एससीआर 699;** हिंदुस्तान स्टील लिमिटेड बनाम दिलीप कंस्ट्रक्शन कंपनी **(1969) 1 एससीसी 597: [1969] 3 एससीआर 736;** विटला सीतान्ना बनाम मारिवदा विरन्ना **एआईआर 1934 पीसी 105;** गुरु नानक फाउंडेशन बनाम रतन सिंह एंड संस **(1981) 4 एससीसी 634: [1982] 1 एससीआर 842;** भारतीय खाद्य निगम बनाम जोगिंदरपाल मोहिंदरपाल और अन्य **(1989) 2 एससीसी 347: [1989] 1 एससीआर 880;** एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड और अन्य **(2005) 8 एससीसी 618: [2005] 4 सप्ल। एससीआर 688;** ड्यूरो फेलगुएरा, एस.ए. बनाम गंगावरम पोर्ट लिमिटेड **(2017) 9 एससीसी 729: [2017] 10 एससीआर 285;** मायावती ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड बनाम प्रद्युत देब बर्मन **(2019) 8 एससीसी 714: [2019] 1 एससीआर 123;** उत्तराखंड पूर्व सैनिक कल्याण निगम लिमिटेड बनाम नॉर्दर्न कोल फील्ड लिमिटेड **(2020) 2 एससीसी 455;** वर्ल्ड स्पोर्ट ग्रुप (मॉरीशस) लिमिटेड बनाम एमएसएम सैटेलाइट (सिंगापुर) पीटीई। लिमिटेड **(2014) 11 एससीसी 639: [2014] 1 एससीआर 796;** प्रवीण इलेक्ट्रिकल्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम गैलेक्सी इंफ्रा एंड इंजीनियरिंग

प्राइवेट लिमिटेड **(2021) 5 एससीसी 671;** यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम हुंडई इंजीनियरिंग एंड कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड **(2018) 17 एससीसी 607 [2018] 12 एससीआर 1085 – संदर्भित।**

<u>प्रति हृषिकेश रॉय, जे. (असहमति)</u>

1. तीन अलग–अलग अधिनियमों के प्रावधानों में विसंगतियों को सामंजस्यपूर्ण ढंग से पढ़ने पर, यह पाया गया कि सामान्य विधि को इस अर्थ में विशेष विधि के आगे झुकना चाहिए, कि एक मध्यस्थता करार को सामान्य विधि द्वारा अपर्याप्त स्टांप पर शून्य नहीं किया जा सकता है, विशेष रूप से तब जब मध्यस्थता अधिनियम, 1996, जो एक विशेष अधिनियम है, का कोई भी प्रावधान स्टाम्पिंग का प्रावधान नहीं करता है। मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 7 के तहत मध्यस्थता करार की "औपचारिक" वैधता की आवश्यकता को अधिनियम की विशेष प्रकृति और न्यूनतम न्यायिक हस्तक्षेप के सिद्धांत पर विचार करते हुए प्राथमिकता दी जाएगी। निर्माण के नियम जी को लागू करते हुए कि एक विशिष्ट विधि और एक सामान्य विधि के बीच संघर्ष के मामलों में, विशिष्ट विधि प्रभावी होता है और संविदा अधिनियम, 1872 जैसा सामान्य विधि केवल ऐसे मामलों पर लागू होता है जो विशेष विधि के अंतर्गत नहीं आते हैं; इसलिए, संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 2(ई), 2(जी), 2(एच) एच इसमें निहित धारा 7 को ओवरराइड नहीं कर सकती जब औपचारिक वैधता की बात आती है तो एक विशेष विधि यानी मध्यस्थता अधिनियम, 1996। इसके अलावा, जब मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 में क़ानून के शब्दों में "वैधता" या यहां तक कि "निष्क्रिय और निष्पादित करने में असमर्थ" का उल्लेख नहीं किया गया है जैसा कि उल्लेख किया गया है । मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 45 या मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 8 में "प्रथम दृष्टया कोई वैध मध्यस्थता करार नहीं", यह समझा जाना चाहिए कि एक अलग क़ानून जैसे संविदा अधिनियम, 1872 में सामान्य शब्द विशिष्ट को ओवरराइड नहीं कर सकते हैं विशेष विधि में प्रयुक्त शब्द . कहने का तात्पर्य यह है कि किसी मध्यस्थता करार को धारा 11 के न्यायाधीश द्वारा अपर्याप्त

स्टाम्प लगाने पर "शून्य" नहीं किया जा सकता है, जब परीक्षा का दायरा केवल "अस्तित्व" तक ही सीमित हो। मध्यस्थता करार और "वैधता" नहीं। [पैरा 79.1 और 79.2][473–बी–एफ]

2. विशेष विधि की व्याख्या इस तरह से करना आवश्यक है जो इसके विशिष्ट प्रावधानों को प्रभावी बनाता है, साथ ही यह भी सुनिश्चित करता है कि यह यथासंभव सामान्य विधि के अनुरूप है। धारा 11 के चरण में ज़ब्त करने से वैधानिक बाधा के कारण शुरुआत में ही स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 के तहत मध्यस्थ कार्यवाही रुक जाएगी। स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 और मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 में सामंजस्य स्थापित करने का एक तरीका यह है कि धारा 11 न्यायाधीश आवश्यक स्टाम्पिंग ई को स्थगित कर दे और मध्यस्थ/कलेक्टर को परिबद्ध कर ले। स्टाम्प अधिनियम, 1899 को सामान्य रूप से धारा 35 को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह किसी मध्यस्थ या कलेक्टर को बिना मुद्रांकित/अपर्याप्त मुद्रांकित दस्तावेज़ को ज़ब्त करने से नहीं रोकता है। [पैरा 79.4][474–एफ–एफ]

3. धारा 16 के तहत मध्यस्थ के पास अधिकार क्षेत्र है कि "अस्तित्व" और "वैधता" पर निर्णय लें। धारा 11(6ए) को पढ़ने से पता चलता है कि न्यायालय द्वारा जांच केवल "अस्तित्व" तक ही सीमित है, यहां तक कि "वैधता" तक भी नहीं। इसके अलावा, वर्तमान संदर्भ केवल मुद्रांकन की औपचारिक आवश्यकता से संबंधित है न कि मनमनापुर्ण से। मध्यस्थता करार को शून्य बनाने के लिए प्रासंगिक व्याख्या लागू करना स्टांप की आवश्यकता मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के मूल उद्देश्य को विफल कर देगी। किसी दस्तावेज़ को अमान्य या अप्रवर्तनीय नहीं बनाया जा सकता है, खासकर यदि दोष स्टांप अधिनियम, 1899 के तहत ठीक किया जा सकता है। इसके अलावा, स्टांप अधिनियम, 1899 में किसी भी प्रावधान में ऐसा नहीं है। कि किसी दस्तावेज़ को अमान्य करने का प्रभाव. इस प्रकार हो । विद्या ड्रोलिया में स्थिति इस हद तक गलत है कि वह गरवारे पर निर्भर है। [पैरा 86.2][489–बी–डी]

एन.एन. ग्लोबल मर्केंटाइल प्राइवेट लिमिटेड बनाम इंडो यूनिक फ्लेम लिमिटेड और अन्य **(2021) 4 एससीसी 379**– पुष्टि की गई।

विद्या ड्रोलिया और अन्य बनाम दुर्गा ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन **(2021) 2 एससीसी 1;** गरवारे वॉल रोप्स लिमिटेड बनाम कोस्टल मरीन कंस्ट्रक्शन एंड इंजीनियरिंग लिमिटेड **(2019) 9– एससीसी 209: [2019] 5 एससीआर 579;** एसएमएस टी एस्टेट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम चांदमारी टी कंपनी प्राइवेट लिमिटेड **(2011) 14 एससीसी 66: [2011] 9 एससीआर 382;** यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम हुंडई इंजीनियरिंग एंड कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड **(2018) 17 एससीसी 607: [2018] 12 एससीआर 1085; – खारिज कर दिया गया।**

एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग। लिमिटेड **(2005) 8 एससीसी 618: [2005] सप्ल। एससीआर 688 – अनुसरण किया गया।**

जुपुडी केशव राव बनाम. पुलवार्थी वेंकट सुब्बाराव और अन्य **(1971) 1 एससीसी 545: [1971] 3 एससीआर 590;** हरिओम अग्रवाल वि. प्रकाश चंद मालवीय **(2007) 8 एससीसी 514–[2007] 10 एससीआर 772 – पर निर्भर।**

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बोघारा पॉलीफैब प्राइवेट लिमिटेड **(2009) 1 एससीसी 267: [2008] 13 एससीआर 638;** सरकार. एपी के. बनाम पी. लक्ष्मी देवी **(2008) 4 एससीसी 720: [2008] 3 एससीआर 330;** बंगाल इम्यूनिटी कंपनी बनाम बिहार राज्य **(1955) 2 एससीआर 603;** सरकार. भारत बनाम वेदांता **(2020) 10 एससीसी 1;** अमेज़ॅन बनाम फ्यूचर रिटेल **(2022) एससीसी 209**; क्लोरो कंट्रोल्स बनाम सेवर्न ट्रेंट वाटर प्यूरीफिकेशन इंक **(2013) 1 एससीसी 641: [2012] 13 एससीआर 402;** शिन–एत्सु केमिकल कंपनी लिमिटेड बनाम अक्षय ऑप्टिफ़ाइबर

लिमिटेड और अन्य **(2005) 7 एससीसी 234: [2005] 2 सप्ल। एससीआर 699;** फ़्यूरस्ट डे लॉसन लिमिटेड बनाम जिंदल एक्सपोर्ट्स लिमिटेड **(2011) 8 एससीसी 333: [2011] 11 एससीआर 1;** हिंदुस्तान स्टील लिमिटेड बनाम दिलीप कंस्ट्रक्शन कंपनी **(1969) 1 एससीसी 597: [1969] 3 एससीआर 736;** चिरंजी लाल (डॉ.) बनाम हरि दास **(2005) 10 एससीसी 746: [2005] 1 पूरक। एससीआर 359;** जगदीश नारायण बनाम मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी, **एआईआर 1994 सभी 371;** रियो ग्लास सोलर एसए बनाम श्रीराम ईपीसी लिमिटेड और अन्य **(2018) 18 एससीसी 313;** आईटी आयुक्त बनाम चंदनबेन मगनलाल **(2000) 245 आईटीआर 182;** हमीद जौहरन बनाम अब्दुल सलाम **(2001) 7 एससीसी 573: [2001] 1 पूरक। एससीआर 469**; चिरंजी लाल (डॉ.) बनाम हरि दास **(2005) 10 एससीसी 746: [2005] 1 पूरक। एससीआर 359;** बुर्जोर और भवानी प्रसाद बनाम भगाना **आईएलआर 10 कैल 557;** सैनिक मोटर्स बनाम राजस्थान राज्य **1962 (1) एससीआर 517;** उत्तर प्रदेश राज्य बनाम बाबू राम **एआईआर 1961 एससी 751: [1961] एससीआर 679;** आईसीआईसीआई लिमिटेड बनाम ईस्ट कोस्ट बोट बिल्डर्स एंड इंजीनियर्स लिमिटेड **(1998) 9 एससीसी 728;** केआर रवीन्द्रनाथन बनाम केरल राज्य **(1996) 10 एससीसी 35;** सुंदरम फाइनेंस लिमिटेड बनाम एनईपीसी इंडिया लिड **(1999) 2 एससीसी 479: [1999] 1 एससीआर 89;** एडोर सामिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम पीके होल्डिंग्स लिमिटेड **(1999) एससीसी 572: [1999] 1 सप्ल। एससीआर 658;** कोंकण रेलवे कॉरपोरेशन बनाम मेहुल कंस्ट्रक्शन कंपनी **(2000) 7 एससीसी 201: [2000] 2 सप्ल। एससीआर 563;** कोंकण रेलवे कॉरपोरेशन बनाम मेहुल कंस्ट्रक्शन कंपनी **(2002) 2 एससीसी 388: [2002] 1 एससीआर 728;** ए. अय्यासामी बनाम ए. परमसिवम और अन्य **(2016) 10 एससीसी 386:**

[2016] 11 एससीआर 521; ब्लैक पर्ल होटल्स बनाम प्लैनेट एम. रिटेल लिमिटेड **(2017) 4 एससीसी 498–: [2017] 2 एससीआर 50;** ड्यूरो फेलगुएरा, एस.ए. बनाम गंगावरम पोर्ट लिमिटेड **(2017) 9 एससीसी 729: [2017] 10 एससीआर 285;** मायावती ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड बनाम प्रद्युत देब बर्मन **(2019) 8 एससीसी 714: [2019] 1 एससीआर 123;** प्रवीण इलेक्ट्रिकल्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम गैलेक्सी इंफ्रा एंड इंजीनियरिंग प्राइवेट लिमिटेड **(2021) 5 एससीसी 671;** फिसर बनाम इंटरनेशनल बैंक, **282 एफ.2 डी 231, 233 (2 डी सर्कुलर 1960);** त्रावणकोर देवासम बोर्ड बनाम पंचमी पैक, **2004 13 एससीसी 510;** भारत संघ बनाम पॉपुलर कंस्ट्रक्शन कंपनी **2001 (8) एससीसी 470: [2001] 3 सप्ल। एससीआर 619;** सेंट स्टीफंस कॉलेज बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय **(1992) 1 एससीसी 558: [1991] 3 पूरक। एससीआर 121;** ग्रेट ऑफशोर लिमिटेड बनाम ईरानी ऑफशोर इंजीनियरिंग एंड कंस्ट्रक्शन कंपनी **(2008) 14 एससीसी 240: [2008] 12 एससीआर 515;** ट्राइमेक्स इंटरनेशनल एफजेडई बनाम वेदांत एल्युमीनियम लिमिटेड, भारत **2010 (1) स्केल 574;** भारत संघ बनाम किशोरीलाल गुप्ता एवं ब्रदर्स **(1959) 1 एससीआर 493;** राष्ट्रीय कृषि सहकारी मार्केटिंग फेडरेशन इंडिया लिमिटेड बनाम गेन्स ट्रेडिंग लिमिटेडमैसर्स एन.एन. ग्लोबल मर्केंटाइल प्राइवेट लिमिटेड बनाम मैसर्स इंडो यूनिक फ्लेम लिमिटेड एवं ओ.आर.एस. **(2007) 5 एससीसी 692;** नैहाटी जूट मिल्स ढक्कन। बनाम ख्यालीराम जगन्नाथ **एआईआर 1968 एससी 522: [1968] एससीआर 821;** पी मनोहर रेड्डी एंड ब्रदर्स बनाम महाराष्ट्र कृष्णा वैली डेवलपमेंट कॉरपोरेशन एंड अन्य **(2009) 2 एससीसी 494: [2008] 17 एससीआर 1217;** ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी बनाम नरभेराम पावर एंड स्टील प्राइवेट लिमिटेड **(2018) 6 एससीसी 534: [2018] 4 एससीआर 826;** गुरु नानक फाउंडेशन बनाम रतन सिंह एंड संस **(1981) 4 एससीसी**

634: [1982] 1 एससीआर 842; मेसर्स श्री विष्णु कंस्ट्रक्शन बनाम इंजीनियर इन चीफ मिलिट्री इंजीनियरिंग सर्विस और अन्य **एसएलपी (सी) नंबर 5306/2022 दिनांक 1.4.2022;** इंटरकॉन्टिनेंटल होटल्स ग्रुप (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड बनाम वॉटरलाइन होटल्स प्राइवेट। लिमिटेड **2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 83 – संदर्भित।**

जे.एम.ए. राजू बनाम कृष्णमूर्ति भट्ट, एआईआर **1976 गुजरात 72;** गुलजारी लाल मालवारी बनाम राम गोपाल **एआईआर 1937 कैल 765;** मत्तेगुंटा धनलक्ष्मी बनाम कांतम राजू सारदाम्बा, **एआईआर 1977 एपी 348;** पूरनचंद्र बनाम कलीपद रॉय, **एआईआर– 1942 कैल 386;** बूटम पिचिया बनाम बोयापति कोटेश्वर राव **एआईआर 1964 एपी 519;** राजस्व बोर्ड बनाम एन. नरसिम्हन **एआईआर 1961 मैड 504;** ए. बापीराजू बनाम जिला रजिस्ट्रार **एआईआर 1968 एपी 142;** गुलजारी लाल मालवारी बनाम राम गोपाल **एआईआर 1937 कैल 765;** चेन्नई कंटेनर टर्मिनल प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ, **(2007) 3 अरब एलआर 218 (मैड);** यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड वी कुमार टेक्सचराइजर्स **एआईआर 1999 बॉम 118 – संदर्भित।**

एनका इंसान वे सनाई एएस बनाम ओओओ इंश्योरेंस कंपनी चुब **(2020) यूकेएससी 38;** यूनाइटेड इंश्योरेंस कंपनी ऑफ़ पाकिस्तान लिमिटेड बनाम हाफ़िज़ मुहम्मद सिद्दीकी **1978 पीएलडी एससी 279;** फियोना ट्रस्ट और होल्डिंग कॉर्पोरेशन बनाम प्रिवालोव में हाउस ऑफ लॉर्ड्स **(2007) 1 सभी ईआर (कॉम) 891;** बकआई चेक कैशिंग इंक. बनाम कार्डेग्ना, **2006 एससीसी ऑनलाइन यूएस एससी 14;** हेनरी शीन, इंक. बनाम आर्चर एंड व्हाइट सेल्स, इंक. **2019 एससीसी ऑनलाइन यूएस एससी 1;** वेदरफोर्ड ऑयलटूल मिडिल ईस्ट लिमिटेड बनाम बेकर ह्यूजेस सिंगापुर पीटीई **2022**

एससीसी ऑनलाइन 1464; बैजरो बनाम वाल्टर्स, **596 यू.एस. 2022 – संदर्भित ।**

केस विधि संदर्भ

के. एम. जोसेफ के फैसले में

(2021) 4 एससीसी 379	नामांजूर करना	पैरा 2
[2011] 9 एससीआर 382	पुष्टि	पैरा 4
[2005] 4 पूरक। एससीआर 688	पालन किया	पैरा 5
[2017] 10 एससीआर 285	निर्दिष्ट किया	पैरा 5
[2019] 1 एससीआर 123	निर्दिष्ट किया	पैरा 5
[2019] 5 एससीआर 579	पुष्टि	पैरा 5
(2021) 2 एससीसी 1	पुष्टि	पैरा 8
[1969] 3 एससीआर 736	पालन किया	पैरा 3
[2008] 12 एससीआर 515	निर्दिष्ट किया	पैरा 18
[2002] 5 पूरक। एससीआर 387	निर्दिष्ट किया	पैरा 19
[2020] 3 एससीआर 798	पुष्टि	पैरा 27
[2005] 2 पूरक। एससीआर 699	निर्दिष्ट किया	पैरा 28
[2008] 13 एससीआर 638	निर्दिष्ट किया	पैरा 30
[2003] 6 पूरक। एससीआर 1134	निर्दिष्ट किया	पैरा 57
[2018] 12 एससीआर 1085	पालन किया	पैरा 62(iii)
[2018] 4 एससीआर 826	निर्दिष्ट किया	पैरा 63
[2005] 1 पूरक। एससीआर 359	निर्दिष्ट किया	पैरा 66
[2007] 10 एससीआर 772	निर्दिष्ट किया	पैरा 74

[2009] 10 एससीआर 373	निर्दिष्ट किया	पैरा 77
[2014] 12 एससीआर 488	पालन किया	पैरा 81
[1971] 3 एससीआर 590	निर्दिष्ट किया	पैरा 93

<u>जी सी. टी. रविकुमार के फैसले में, जे.</u>

[2005] 4 पूरक। एससीआर 688	पालन किया	पैरा 2

<u>अजय रस्तोगी के फैसले में, जे.</u>

(2021) 4 एससीसी 379	पुष्टि	पैरा 2
(2021) 2 एससीसी 1	नामंजूर किया गया	पैरा 2
[2011] 9 एससीआर 382	नामंजूर किया गया	पैरा 5
(2013) 14 एससीसी 354	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 6
[2019] 5 एससीआर 579	नामंजूर किया गया	पैरा 8
[1971] 3 एससीआर 590	भरोसा किया गया	पैरा 17
[2007] 10 एससीआर 772	भरोसा किया गया	पैरा 17
[2008] 3 एससीआर 330	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 20
[2005] 2 पूरक। एससीआर 699	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 26
[1969] 3 एससीआर 736	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 47
[1982] 1 एससीआर 842	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 59
[1989] 1 एससीआर 880	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 60
[2005] 4 पूरक। एससीआर 688	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 63
[2017] 10 एससीआर 285	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 67
[2019] 1 एससीआर 123	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 68
(2020) 2 एससीसी 455	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 83

[2014] 1 एससीआर 796	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 87
(2021) 5 एससीसी 671	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 89
[2018] 12 एससीआर 1085	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 89

हृषिकेश रॉय के फैसले में, जे.

(2021) 4 एससीसी 379	पुष्टि	पैरा 6
(2021) 2 एससीसी 1	नामंजूर किया गया	पैरा 6
[2019] 5 एससीआर 579	नामंजूर किया गया	पैरा 6
[2011] 9 एससीआर 382	नामंजूर किया गया	पैरा 7
[2005] 4 पूरक। एससीआर 688	पालन किया	पैरा 16.1
[2008] 13 एससीआर 638	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 16.1
[1971] 3 एससीआर 590	पालन किया	पैरा 16.7
[2007] 10 एससीआर 772	पर भरोसा किया	पैरा 16.7
[2008] 3 एससीआर 330	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 17.1
(1955) 2 एससीआर 603	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 17.3
(2020) 10 एससीसी 1	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 17.3
(2022) 1 एससीसी 209	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 17.3
[2012] 13 एससीआर 402	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 20.1
[2005] 2 पूरक। एससीआर 699	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 20.1
[2011] 11 एससीआर 1	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 20.2
[1969] 3 एससीआर 736	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 23
[2005] 1 पूरक। एससीआर 359	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 25
(2018) 18 एससीसी 313	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 26
[2001] 1 पूरक। एससीआर 469	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 31.2

1962 (1) एससीआर 517	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 32
[1961] एससीआर 679	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 32
(1998) 9 एससीसी 728	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 40
(1996) 10 एससीसी 35	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 40
[1999] 1 एससीआर 89	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 41
[1999] 1 पूरक। एससीआर 658	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 42
[2000] 2 पूरक। एससीआर 563	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 42
[2002] 1 एससीआर 728	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 43
[2016] 11 एससीआर 521	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 62
[2017] 2 एससीआर 50	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 67
[2017] 10 एससीआर 285	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 72
[2019] 1 एससीआर 123	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 72
(2021) 5 एससीसी 671	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 73
जी 2004 13 एससीसी 510	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 78.1(iii)
[2001] 3 पूरक। एससीआर 619	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 78.3
[1991] 3 पूरक। एससीआर 121	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 79
[2008] 12 एससीआर 515	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 80.7
एच 2010 (1) स्केल 574	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 80.8
(1959) 1 एससीआर 493	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 81.1
(2007) 5 एससीसी 692	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 81.2
[1968] एससीआर 821	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 81.2
[2008] 17 एससीआर 1217	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 81.2

[2018] 12 एससीआर 1085	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 84
[2018] 4 एससीआर 826	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 84.1
[1982] 1 एससीआर 842	निर्दिष्ट किया गया	पैरा 85.6

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2020 की सिविल अपील संख्या 3802–3803

2020 के डब्ल्यूपी नंबर 1801 में दिनांक 30.09.2020 के निर्णय और आदेश और नागपुर के उच्च न्यायालय, बाम्बें के 2020 के आरएएसटी नंबर 9819 में दिनांक 28.10.2020 से

गौरव बनर्जी, वरिष्ठ अधिवक्ता। (न्याय मित्र)

गगन संघवी, रामेश्वर प्रसाद गोयल अपीलार्थ की ओर से ।

के. रमाकांत रेड्डी, सुश्री. मालविका त्रिवेदी, सीनियर अधिवक्ता, राजुला श्रीवास्तव, मोहित डी. राम, मोनिश हांडा, सुश्री चारु अम्बवानी, रघु गुर्रम, कु. काव्या विजय, कु. कोमल अग्रवाल, संजय कपूर, कु. मेघा कर्णवाल, सूर्य प्रकाश, अर्जुन भाटिया, कु. अक्षता जोशी, कु. पी आस्था गुंबर, देबेश पांडा, नमन माहेश्वरी, गर्व मल्होत्रा, नील चटर्जी, उद्भव गैडी, सुश्री स्नेहल माहेश्वरी, राहुल टोटला, ईशान अप्रमेय चतुर्वेदी, प्रेमलाल कृष्णन, राहुल आर्य, माधव भाटिया, सुश्री बानी दीक्षित, योगेश शर्मा, शैलेन्द्र स्लारिया, अरुण पांडियन, श्रेष्ठ आर्य, आदित्य पांडे, हिमांशु कपूर, आलोक त्रिपाठी, कु. सुजल गुप्ता, पुनित सिंह बिंद्रा, कु. अंशिका मिश्रा, कु. सिमरन जीत, ऋषभ गुप्ता, उत्तरदाताओं के लिए अधिवक्तागण ।

न्यायालय के निर्णय सुनाये गया गया

के. एम. जोसेफ, जे.

<u>अनुक्रमणिका*</u>

A संदर्भ... 2

B एन.एन. ग्लोबल में तथ्यों की समीक्षा 3

C एन.एन. ग्लोबल में 'एक बिना स्टाम्प लगे करार में मध्यस्थता करार की वैधता' कैप्शन के तहत दिये गये
निष्कर्ष... 5

D पार्टियों की प्रस्तुति... 15

E विश्लेषण... ... ... .29

F अधिनियम... 30

G धारा 11(6ए) को शामिल करने का कारण क्या है? 32

H स्टाम्प अधिनियम की योजना 53

I. हिंदुस्तान स्टील लिमिटेड का विश्लेषण 59

J. भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 एक सर्वेक्षण, गरवारे का, विद्या ड्रोलिया और एन.एन. ग्लोबल का विछेदन 64

K स्टाम्प अधिनियम–क्या एक प्रक्रियात्मक विधि है? ... ... .88

L. अधिनियम की धारा 7–इसका प्रभाव... 97

M. वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य... ... ... .105

N. एमिकस क्यूरी आश्चर्यचकित करता है... 111

0. स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35, न्यायालय या मध्यस्थ कार्य करेगा? 124

P. मध्यस्थता करार, एक विशिष्ट करार और इसका प्रभाव? .132

Q. निष्कर्ष... 137

1. हमने अपने सम्मानित भाइयों अजय रस्तोगी, जे. और हृषिकेश रॉय, जे. द्वारा तैयार किए गए मसौदा निर्णयों का अध्ययन किया है। अपने विद्वान भाइयों के प्रति गहरा सम्मान रखते हुए, हम, हालांकि, इच्छा के अलावा उनके तर्क और निष्कर्षों से सहमत होने में असमर्थ हैं जिसे स्पष्ट किया जाए. इसलिए निम्नलिखित निर्णय.

ए. **<u>संदर्भः</u>**

2 तीन विद्वान न्यायाधीशों की पीठ ने 2020 की सिविल अपील संख्या 3802–3803 का निपटान दिनांक 11.01.2021 के निर्णय द्वारा किया। निर्णय एन.एन. ए. ग्लोबल मर्केंटाइल प्राइवेट लिमिटेड बनाम इंडो यूनिक फ्लेम लिमिटेड और अन्य में रिपोर्ट किया गया। संदर्भ के प्रयोजन के लिए निम्नलिखित प्रासंगिक है:

"56. हमारा मानना हैं कि एसएमएस टी एस्टेट्स [एसएमएस टी एस्टेट्स (पी) लिमिटेड बनाम चांदमारी टी कंपनी (पी) लिमिटेड, (2011) 14 एससीसी 66: (2012) 4 एससीसी (सीविल) 777] और गारवेयर [गारवेयर वॉल रोप्स लिमिटेड बनाम कोस्टल मरीन कंस्ट्रक्शन एंड जीनियरिंग लिमिटेड, (2019) 9 एससीसी 209: (2019) 4 एससीसी (सिविल) 324] कि स्टांप शुल्क का भुगतान न करने पर वाणिज्यिक संविदा मध्यस्थता करार को भी अमान्य कर देगा, और इसे विधि में अस्तित्वहीन और अप्रवर्तनीय बना देगा, यह विधि में सही स्थिति नहीं है।

57. एक समन्वय पीठ द्वारा विद्या ड्रोलिया [विद्या ड्रोलिया बनाम दुर्गा ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन, (2021) 2 एससीसी 1: (2021) 1 एससीसी (सिव) 549] मामले में फैसले के पैरा 146 और 147 में निष्कर्ष के मद्देनजर, जिसने गारवेयर [गारवेयर वॉल रोप्स लिमिटेड बनाम कोस्टल मरीन कंस्ट्रक्शन्स एंड इंजीनियरिंग' मामले में फैसले की पुष्टि की है। लिमिटेड, (2019) 9 एससीसी 209: (2019) 4 एससीसी (सिव) 324], उपरोक्त मुद्दे को इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा आधिकारिक रूप से निपटाया जाना आवश्यक है।

58. हम इस न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ द्वारा आधिकारिक तौर पर निपटाए जाने वाले निम्नलिखित मुद्दे को संदर्भित करना उचित मानते हैं:

"क्या स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 में निहित वैधानिक रोक अधिनियम की अनुसूची के साथ पढ़ी गई धारा 3 के तहत स्टाम्प शुल्क के लिए प्रभार्य उपकरणों पर लागू होती है, ऐसे लिखत में निहित मध्यस्थता करार को भी प्रस्तुत करेगी, जो प्रभार्य नहीं है स्टांप शुल्क के भुगतान को, गैर–मौजूद, अप्रवर्तनीय, या अमान्य होने के कारण, मूल संविदा/लिखत पर स्टांप शुल्क का लंबित भुगतान? "

बी. <u>एनएन ग्लोबल में तथ्यों का एक संक्षिप्त अवलोकनः</u>

3. प्रथम प्रतिवादी, जिसे कार्य आदेश दिया गया था, ने अपीलकर्ता के साथ एक उप–संविदा किया। उप–संविदा का गठन करने वाले कार्य आदेश के खंड 10 में मध्यस्थता खंड का प्रावधान किया गया था। अपीलकर्ता ने खंड 9 के अनुसार बैंक गारंटी प्रस्तुत की थी। उक्त गारंटी के आह्वान के कारण अपीलकर्ता ने बैंक गारंटी के नकदीकरण के खिलाफ मुकदमा दायर किया। प्रथम प्रतिवादी ने मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे इसके बाद संक्षेप में 'अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा 8 के तहत संदर्भ की मांग करते हुए आवेदन किया। अधिनियम की धारा 8 के तहत आवेदन को खारिज करने वाले वाणिज्यिक न्यायालय के आदेश को चुनौती देते हुए प्रथम प्रतिवादी द्वारा एक रिट याचिका दायर की गई थी। उठाए गए विवादों में से एक यह था कि मध्यस्थता करार अप्रवर्तनीय हो गया क्योंकि कार्य आदेश पर स्टाम्प नहीं लगी थी। हालांकि, उच्च न्यायालय ने प्रथम प्रतिवादी द्वारा दायर रिट याचिका को अनुमति दे दी। इस पीठ के लिए प्रासंगिक मुद्दा यह था कि क्या मध्यस्थता करार प्रर्वतनीय होगा और उस पर कार्रवाई की जाएगी, भले ही कार्य आदेश भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899

(जिसे आगे संक्षेप में ' स्टाम्प अधिनियम ' कहा जाएगा) के तहत स्टाम्प रहित और लागू न हो।

सी. 'अनस्टैम्प्ड करार में मध्यस्थता करार की वैधता' शीर्षक के अंतर्गत प्रश्न के संबंध में एनएन ग्लोबल में निष्कर्ष

4. न्यायालय ने पाया कि मध्यस्थता करार एक विशिष्ट और पृथक करार है, जो उस मूल वाणिज्यिक संविदा से स्वतंत्र है जिसमें वह अंतर्निहित है। कॉम्पेटेंज़-कॉम्पेटेंज़ के सिद्धांत के तहत, मध्यस्थ न्यायाधिकरण के पास मध्यस्थता करार के अस्तित्व, वैधता और दायरे के संबंध में आपत्तियों सहित अपने स्वयं के अधिकार क्षेत्र पर निर्णय लेने की क्षमता थी। अधिनियम की धारा 16(1) पर भरोसा किया गया। न्यायालय ने कॉम्पेटेंज़-कॉम्पेटेंज़ के सिद्धांत के समर्थन में केस लॉ का प्रचुर संदर्भ दिया। अधिनियम की धारा 5 में न्यूनतम न्यायिक हस्तक्षेप की परिकल्पना की गई है। न्यायालय ने महाराष्ट्र स्टाम्प अधिनियम, 1958 का संदर्भ दिया । उक्त अधिनियम की धारा 34 , अनिवार्य रूप से, स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 के समरूप है, जिसे आगे स्टाम्प अधिनियम_कहा गया है । इसके अतिरिक्त अन्य प्रावधान हैं जोकि पुर्व के अधिनियम के प्रावधानों को ही मानते हैं । इसके बाद न्यायालय ने महाराष्ट्र स्टाम्प अधिनियम, 1958 की अनुसूची । की मद 63 का संदर्भ लिया , जो 'कार्य संविदा से संबंधित है। यह पाया गया कि स्टाम्प अधिनियम एक राजकोषीय उपाय हैं। इसके बाद न्यायालय ने एसएमएस टी एस्टेट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम चांदमारी टी कंपनी प्राइवेट लिमिटेड में दिए गए इस न्यायालय के निर्णय पर चर्चा की। न्यायालय ने एसएमएस टी एस्टेट्स (सुप्रा) में दिए गए निर्णय के निम्नलिखित भाग का संदर्भ दिया :

> "19. स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 के अनुसार , जब तक कि लिखत के संबंध में देय स्टाम्प शुल्क और शास्ति अदा नहीं किया जाता है , तब तक न्यायालय लिखत पर कार्रवाई नहीं कर सकता है, जिसका अर्थ है कि वह

मध्यस्थता करार पर भी कार्रवाई नहीं कर सकता है जो लिखत का हिस्सा है। स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 एक अपंजीकृत दस्तावेज़ के संबंध में पंजीकरण अधिनियम की धारा 49 से अलग और भिन्न है । स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 में_पंजीकरण अधिनियम की धारा 49 की तरह कोई प्रावधान नहीं है जो लिखत को संपार्श्विक लेनदेन स्थापित करने के लिए उपयोग करने में सक्षम बनाता है।

XXX XXX XXX

21. इसलिए, जब किसी पट्टा विलेख या किसी अन्य दस्तावेज पर मध्यस्थता करार का तर्क देने पर भरोसा किया जाता है, तो न्यायालय को शुरुआत में इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या उस संबंध में कोई आपत्ति उठाई गई है या नहीं, क्या दस्तावेज़ पर ठीक से स्टाम्प लगाई गई है। यदि यह निष्कर्ष निकलता है कि इस पर उचित रूप से मुद्रांकन नहीं किया गया है, तो इसे परिबद्ध कर लिया जाना चाहिए और स्टाम्प अधिनियम की धारा 38 में निर्दिष्ट तरीके से निपटा जाना चाहिए। न्यायालय ऐसे दस्तावेज़ या उसमें मौजूद मध्यस्थता खंड पर कार्रवाई नहीं कर सकती। लेकिन यदि स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 या धारा 40 में निर्धारित तरीके से शेष शुल्क और शास्ति का भुगतान किया जाता है, तो दस्तावेज़ पर कार्रवाई की जा सकती है या साक्ष्य में स्वीकार किया जा सकता है।"

5. न्यायालय ने आगे पाया कि, जिस समय एसएमएस टी एस्टेट्स (सुप्रा) पर निर्णय लिया गया था, अधिनियम की धारा 11 के तहत मध्यस्थता के संदर्भ से संबंधित विधि, *एसबीपी एंड कंपनी विरूद्ध पटेल इंजियरिंग लिमिटेड एवं अन्य* में रिपोर्ट किए गए संविधान पीठ के फैसले में सामने आया था। आगे यह पाया गया कि निर्धारित विधि यह था कि अधिनियम की धारा 11(6) के तहत एक आवेदन में, न्यायालय कुछ निश्चित मुद्दों का निर्धारण कर सकता है, जैसे

कि क्या दावा समय–बाधित था, या पुराना दावा था; क्या सहमति और संतुष्टि थी, जो मध्यस्थता के संदर्भ की आवश्यकता को समाप्त कर देगी। इसके बाद, न्यायालय धारा 11 में उप–धारा (6ए) जोड़कर धारा 11 में संशोधन का उल्लेख करता है। न्यायालय ने *ड्यूरो फेलगुएरा, एस.ए. बनाम गंगावरम पोर्ट लिमिटेड'* मामले में दिए फैसले का हवाला दिया, ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि क्या होना था केवल इस बात पर विचार किया गया कि मध्यस्थता करार अस्तित्व में था या नहीं। न्यायालय ने कहा कि उक्त स्थिति की पुष्टि *मायावती ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड बनाम प्रद्युत देह बर्मन'* मामले में तीन सदस्यीय पीठ ने की थी। इसके अलावा, न्यायालय ने *गरवारे वॉल रोप्स लिमिटेड बनाम कोस्टल मरीन कंस्ट्रक्शन एंड इंजीनियरिंग लिमिटेड* में दो विद्वान न्यायाधीशों की खंडपीठ द्वारा दिए गए फैसले पर ध्यान दिया और उक्त निर्णय के पैरा 22 का उल्लेख किया जहां इस न्यायालय ने भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (इसके बाद इसे संक्षेप में 'संविदा बी अधिनियम' के रूप में संदर्भित किया गया है) की धारा 2 (एच) पर भरोसा किया था और पाया गया कि बिना स्टाम्प लगा हुआ करार अप्रवर्तनीय है।

6. *गरवारे* (सुप्रा) में, दो विद्वान न्यायाधीशों की खंडपीठ ने यह विचार किया कि उप–संविदा में निहित मध्यस्थता खंड विधि के मामले के रूप में तब तक मौजूद नहीं होगा जब तक कि उप–संविदा पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई जाती। आगे पाया गया कि धारा 11(6ए) धारा 8 के विपरीत अस्तित्व से संबंधित है, और अधिनियम की धारा 45 [*गारवेयर* (सुप्रा) का पैराग्राफ 29 देखें]। तीन विद्वान न्यायाधीशों की खंडपीठ ने अपने फैसले में *एन.एन. ग्लोबल* (सुप्रा), जिसमें संविधान पीठ के संदर्भ का आदेश शामिल है, ने पाया कि एक मध्यस्थता करार स्टांप शुल्क के लिए प्रभार्य साधन के रूप में अनुसूची में शामिल नहीं है। न्यायालय ने इस संबंध में महाराष्ट्र स्टाम्प अधिनियम, 1958 की अनुसूची । के आइटम 12 का उल्लेख किया। इसके बाद, न्यायालय ने पाया

कि कार्य आदेश स्टांप शुल्क के भुगतान के लिए प्रभार्य था। हालाँकि, न्यायालय ने पाया कि भुगतान न करने या कार्य आदेश में कमी के कारण मुख्य संविदा अमान्य नहीं हुआ। महाराष्ट्र अधिनियम की धारा 34, स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 के अनुरूप, बिना मुद्रांकित लिखत को विधि में अमान्य, गैर–मौजूद या अप्रवर्तनीय नहीं बनाती है। न्यायालय ने पाया कि मध्यस्थता करार एक विशिष्ट और स्वतंत्र संविदा था। इसे देखते हुए इस पर स्टाम्प नहीं लगाई गई हैं पृथक्करण के सिद्धांत पर, इसे अमान्य, अप्रवर्तनीय या गैर–मौजूदा नहीं बनाया जाएगा, भले ही मूल संविदा, जिसमें यह निहित है, साक्ष्य में अस्वीकार्य था या उस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती थी। । *एन.एन. ग्लोबल* (सुप्रा) में बेंच ने इस प्रकार होल्ड किया :

> "26. हमारे विचार में, मूल संविदा पर स्टाम्प शुल्क के भुगतान के लंबित रहने तक मध्यस्थता करार की प्रवर्तनीयता में कोई कानूनी बाधा नहीं है। हालांकि, कार्य आदेश या मूल वाणिज्यिक संविदा के तहत अधिकारों और दायित्वों का निर्णय स्टाम्प अधिनियम के अनिवार्य प्रावधानों का अनुपालन किए बिना आगे नहीं बढ़ेगा ।
>
> 27. स्टाम्प अधिनियम में निर्दिष्ट कुछ वर्गों के उपकरणों पर राज्य को स्टाम्प शुल्क के भुगतान के लिए एक राजकोषीय अधिनियम है। स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 40_जप्त किये गये लिखत के बारे में प्रकिया का प्रावधान करती हैं और द्वारा 42 की उप–धारा (1) के अनुसार संबंधित कलेक्टर द्वारा विधिवत स्टाम्प लगाने के बाद लिखत को पृष्ठांकित किया जाना आवश्यक है। धारा 42(2) में प्रावधान है कि दस्तावेज़ पर विधिवत स्टाम्प लगने के बाद उसे साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाएगा और उस पर कार्रवाई की जा सकती है।
>
> 28. हमारे विचार में, एसएमएस टी एस्टेट्स [एसएमएस टी एस्टेट्स (पी) लिमिटेड बनाम चांदमारी टी कंपनी (पी) लिमिटेड , (2011) 14 एससीसी 66: (2012) 4 एससीसी (सिविल) 777] में निर्णय दो मुद्दों पर विधि में सही स्थिति निर्धारित नहीं करता है अर्थात: (i) कि बिना स्टांप वाले

वाणिज्यिक संविदा में मध्यस्थता करार पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है, या विधि में लागू नहीं की जा सकती है; और (ii) कि मध्यस्थता करार अवैध होगा जहां संविदा या लिखत किसी पक्ष के विकल्प पर शून्यकरणीय है, जैसे कि संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 19 के तहत।

29. हम मानते हैं कि चूंकि मध्यस्थता करार पक्षों के बीच एक स्वतंत्र करार है, और इस पर स्टांप शुल्क का भुगतान नहीं किया जाता है, इसलिए वाणिज्यिक संविदा पर स्टांप शुल्क का भुगतान न करने से मध्यस्थता खंड अमान्य नहीं होगा, या इसे लागू नहीं किया जा सकेगा, क्योंकि इसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। मूल संविदा के पंजीकरण पर मध्यस्थता खंड की पृथक्करणता के मुद्दे पर न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण, स्टांप अधिनियम के संबंध में भी अपनाया जाना चाहिए था। मूल संविदा पर स्टांप शुल्क का भुगतान न करने से मुख्य संविदा भी अमान्य नहीं होगा। यह एक कमी है जिसे अपेक्षित स्टांप शुल्क के भुगतान पर ठीक किया जा सकता है।

30. एसएमएस टी एस्टेट्स [एसएमएस टी एस्टेट्स (पी) लिमिटेड बनाम चांदमारी टी कंपनी (पी) लिमिटेड , (2011) 14 एससीसी 66: (2012) 4 एससीसी (सिविल) 777] में दूसरा मुद्दा यह है कि एक शून्यकरणीय संविदा मध्यस्थता योग्य नहीं होगा क्योंकि यह मध्यस्थता करार की वैधता को प्रभावित करता है, हमारे विचार में विधि में सही स्थिति नहीं है। किसी पक्ष द्वारा लगाए गए आरोप कि मूल संविदा को बलपूर्वक, धोखाधड़ी या गलत बयानी द्वारा प्राप्त किया गया है, इस मुद्दे पर प्रमुख साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए। इन मुद्दों को निश्चित रूप से मध्यस्थता के माध्यम से तय किया जा सकता है।

31. हम एसएमएस टी एस्टेट्स [एसएमएस टी एस्टेट्स (पी) लिमिटेड बनाम चांदमारी टी कंपनी (पी) लिड., (2011) 14 एससीसी 66: (2012) 4 एससीसी (सिव) 777] के संबंध में फैसले को खारिज

करते हैं। उपरोक्त दोनों मुद्दों पर विधि में सही स्थिति नहीं बताई गई है।"

7. हम एन.एन. ग्लोबल (सुप्रा): में पैराग्राफ–32 पर भी गौर कर सकते हैं। ग्लोबल

"32. गारवेयर [गारवेयर वॉल रोप्स लिमिटेड बनाम कोस्टल मरीन कंस्ट्रक्शन एंड इंजीनियरिंग लिमिटेड, (2019) 9 एससीसी 209: (2019) 4 एससीसी (सिव) 324] निर्णय ने एसएमएस टी एस्टेट्स [एस्टेट्स (पी) लिमिटेड बनाम चांदमारी टी कंपनी (पी) लिड., (2011) 14 एससीसी 66: (2012) 4 एससीसी (सिव) 777]" में निर्णय का पालन किया है अपीलकर्ता के वकील ने फैसले के पैरा 22 पर भरोसा जताया है यह तर्क देने के लिए कि मध्यस्थता खंड विधि में अस्तित्वहीन होगा, और अप्रवर्तनीय होगा, जब तक कि स्टांप शुल्क का फैसला नहीं हो जाता और मूल संविदा पर भुगतान नहीं किया जाता है, हम मानते हैं कि यह निष्कर्ष दोषपूर्ण है, और हमारे पास विधि में सही स्थिति नहीं है पहले से ही माना जाता है कि एक मध्यस्थता करार अंतर्निहित मूल वाणिज्यिक संविदा से अलग और स्वतंत्र है। एक वर्जन मध्यस्थता करार को स्वतंत्र अस्तित्व में रखने के बाद , वाणिज्यिक संविदा की कथित अमान्यता के बावजूद, इस पर कार्रवाई की जा सकती है।"

8. इसके बाद तीन विद्वान न्यायाधीशों की खंडपीठ ने *एन.एन. ग्लोबल* (सुप्रा) ने उल्लेख किया कि *गरवारे* (सुप्रा) में निर्णय को *विद्या ड्रोलिया और अन्य बनाम दुर्गा ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन* में तीन विद्वान न्यायाधीशों की पीठ द्वारा अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था। न्यायालय ने विद्या ड्रोलिया (सुप्रा) के पैराग्राफ 146 और 147 निर्धारित किए और उक्त दृष्टिकोण की शुद्धता पर संदेह किया और *गरवारे* (सुप्रा) के

पैराग्राफ –22 और 29 में निष्कर्षों को संविधान पीठ को संदर्भित करना उचित पाया जैसा कि *विद्या ड्रोलिया* (सुप्रा) के पैराग्राफ 146 और 147 में पुष्टि की गई है। हम अब *एन.एन. ग्लोबल* (सुप्रा): में निम्नलिखित अनुच्छेदों का संदर्भ लेना उचित समझते हैं।

> "35. अगला मुद्दा जो उठता है वह यह है कि कौन सा प्राधिकारी होगा जो महाराष्ट्र स्टाम्प अधिनियम की धारा 34 के साथ पढ़ी गई धारा 33 के तहत लिखत को परिबद्ध करने की शक्ति का प्रयोग करेगा, ऐसे मामले में जहां मूल संविदा में मध्यस्थता करार शामिल है।
>
> 36. एक मध्यस्थता करार में, विवादों को तीन तरीकों से मध्यस्थता के लिए भेजा जा सकता है।
>
> 36.1. पहला तरीका वह है जहां मध्यस्थ की नियुक्ति पार्टियों द्वारा मध्यस्थता करार की शर्तों के अनुसार, या अदालत के हस्तक्षेप के बिना, एक निर्दिष्ट मध्यस्थ संस्थान द्वारा सहमति से होती है। ऐसे मामले में। मध्यस्थ/न्यायाधिकरण स्टाम्प अधिनियम, 1899 (या लागू राज्य अधिनियम) की धारा 33 द्वारा लिखत को परिबद्ध करने और पार्टियों को अपेक्षित स्टाम्प शुल्क (और शास्ति, यदि कोई हो) का भुगतान करने और संबंधित कलेक्टर से एक समर्थन प्राप्त करने का निर्देश देने के लिए बाध्य है। यह स्टाम्प अधिनियम की धारा 34 के प्रावधानों से स्पष्ट होगा जो यह प्रदान करता है कि "किसी भी व्यक्ति के पास विधि या पार्टियों की सहमति से साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार है" विधि द्वारा दस्तावेज को परिबद्ध करना अनिवार्य है, और पार्टियों को अपेक्षित स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने का निर्देश देना है।

36.2. नियुक्ति का दूसरा तरीका वह है जहां पार्टियां मध्यस्थता करार के अनुसार नियुक्ति करने में विफल रहती हैं, और नियुक्ति करने के लिए डिफ़ॉल्ट शक्ति को लागू करने के लिए न्यायालय के समक्ष धारा 11 के तहत एक आवेदन दायर किया जाता है। ऐसे मामले में, उच्च न्यायालय, या सर्वोच्च न्यायालय, जैसा भी मामला हो, धारा 11 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, उस मूल संविदा को परिबद्ध कर लेगा जो या तो बिना स्टाम्प लगा हुआ है या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगा हुआ है, और पार्टियों को पहले दोष को ठीक करने का निर्देश देगा तब मध्यस्थ/न्यायाधिकरण संविदा पर निर्णय दे सकता है।

36.3. तीसरा तरीका तब होता है जब विवादों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने के लिए न्यायिक प्राधिकरण के समक्ष धारा 8 के तहत एक आवेदन दायर किया जाता है, क्योंकि संविदा की विषय–वस्तु एक मध्यस्थता करार के अंतर्गत आती है। ऐसे मामले में, न्यायिक प्राधिकरण मध्यस्थता का संदर्भ देगा। हालाँकि, इस बीच, संबंधित स्टाम्प अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार मूल संविदा पर स्टाम्प लगाने के लिए पार्टियों को निर्देशित किया जाएगा, ताकि मूल संविदा से निकलने वाले अधिकारों और दायित्वों पर निर्णय लिया जा सके।'

D.पार्टियों की प्रस्तुति

9. श्री गगन सांघी, विद्वान वकील, अपीलकर्ता (मैसर्स एन.एन. ग्लोबल मर्केंटाइल प्राइवेट लिमिटेड) की ओर से उपस्थित हुए। शुरू में चूंकि पहले प्रतिवादी के लिए कोई उपस्थिति नहीं थी, इसलिए हमने वरिष्ठ वकील श्री गौरव

बनर्जी को एमिकस क्यूरिज नियुक्त किया। हमने की हस्तक्षेप के माध्यम से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील सुश्री मालविका त्रिवेदी को भी सुना ।

इसके बाद विद्वान वरिष्ठ वकील श्री के रमाकांत रेड्डी पहले प्रतिवादी की ओर से उपस्थित हुए और अपनी दलीलें दीं।

10. श्री गगन सांघी हमें स्टाम्प अधिनियम और अधिनियम के प्रावधानों के बारे में बताएंगे और तर्क दिया कि स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 न्यायालय में किसी भी उद्देश्य के लिए साक्ष्य के रूप में विधिवत स्टाम्प न किए गए दस्तावेज़ के प्रवेश पर रोक लगाती है। इसके अलावा, कोई न्यायालय ऐसे दस्तावेज़ पर कार्रवाई नहीं कर सकता। किसी अतिरिक्त उद्देश्य के लिए भी नहीं, तर्क चलाया। एक पूर्णता निषेधित है । एक मध्यस्थता करार, भले ही किसी खंड में, किसी कार्य आदेश में या अन्य वाणिज्यिक संविदा में शामिल हो, उसका एक अलग अस्तित्व नहीं हो सकता जैसा कि *एन.एन. ग्लोबल* (सुप्रा) में पाया गया है। । मध्यस्थता करार का सिद्धांत अलग होने और एक अलग अस्तित्व होने के कारण, स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 के संदर्भ में गलती से समझा गया है। *एसएमएस टी एस्टेट्स* (सुप्रा) में फैसले को खारिज नहीं किया जाना चाहिए था। स्टेयर डेसिसिस के सिद्धांत को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था। विद्वान वकील ने हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया कि कई विदेशी देशों में ऐसे विधि हैं, जिनमें स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 के समान प्रावधान हैं। वास्तव में, उनका तर्क था कि संदर्भ देने का कोई अवसर नहीं था क्योंकि मुख्य मामला निपट चुका था। उनका कहना था कि अधिनियम की धारा 11 के तहत एक आवेदन में भी, न्यायालय स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 में निहित विधि के आदेश का पालन करने के लिए बाध्य है। *एसएमएस टी एस्टेट्स* (सुप्रा) और *गरवारे* (सुप्रा) में विधि सही ढंग से निर्धारित किया गया है और *विद्या ड्रोलिया* (सुप्रा)

में भी इसे सही ढंग से बरकरार रखा गया है। उप–धारा (6ए) को शामिल करके धारा 11 में संशोधन, किसी न्यायालय को स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 के निर्देशों की अनदेखी करने के लिए अधिकृत नहीं कर सकता है।

11. श्रीमती. विद्वान वरिष्ठ वकील मालविका त्रिवेदी ने *एन.एन. ग्लोबल* (सुप्रा) में लिए गए दृष्टिकोण के खिलाफ वही शिकायत पेश की। । वास्तव में, उन्होंने एन.एन.वैश्विक (सुप्रा) में अधिनियम की धारा 9 के तहत लिए गए दृष्टिकोण के प्रभाव की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। यह उनका मामला है कि स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 का अनुपालन करने की आवश्यकता, धारा 9 के तहत एक आवेदन में भी विस्थापित नहीं होगी।

12. विद्वान न्यायमित्र श्री गौरव बनर्जी ने तर्क दिया कि वास्तव में , *गरवारे* (सुप्रा), *विद्या ड्रोलिया* (सुप्रा) और एन.एन. ग्लोबल (सुप्रा) के हिस्से थे, जिसने विधि को सही ढंग से विलंबित किया। उन्होंने शुरुआत में यह इंगित करते हुए कि खंडपीठ एन.एन. ग्लोबल (सुप्रा) सही नहीं था क्योकि इस आधार पर आगे बढ़ रहा है कि मध्यस्थता करार में स्टाम्प लगाना की आवश्यकता नहीं है । उन्होंने इस संबंध में हमारा ध्यान महाराष्ट्र स्टांप अधिनियम, 1958 की अनुसूची । के अनुच्छेद 5 की ओर आकर्षित किया। उनका कहना है कि मध्यस्थता करार का अस्तित्व और/या वैधता स्टाम्प अधिनियम के प्रावधानों से प्रभावित नहीं होती है। स्टाम्प शुल्क का भुगतान न करने पर लिखत अमान्य नहीं होगा। यह एक उपचार योग्य दोष है । धारा 11(6 ए) को सही ढंग से पढ़ने से यह स्थापित हो जाएगा कि बिना मुद्रांकित या त्रुटिपूर्ण मुद्रांकित दस्तावेज को परिबद्ध करना, धारा 11 के तहत न्यायाधीश द्वारा नहीं बल्कि धारा 11 के तहत नियुक्त मध्यस्थ द्वारा किया जाना है। धारा 11(6ए) न्यायालय को मजबूर करती है अपनी जांच को मध्यस्थता करार के अस्तित्व के प्रश्न तक सीमित रखें । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि, न तो

गरवारे (सुप्रा) और न ही एन.एन. ग्लोबल (सुप्रा) ने विधि को सही ढंग से निर्धारित किया, उन्होंने अनुरोध किया कि संदर्भ को बाद में बताए अनुसार दोबारा तैयार किया जाए।

13. *हिंदुस्तान स्टील लिमिटेड बनाम दिलीप कंस्ट्रक्शन कंपनी* मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए, यह तर्क दिया गया है कि शुल्क और शस्ति के भुगतान के बाद बिना स्टाम्प लगे दस्तावेज़ पर कार्रवाई की जा सकती है। एक इलाज योग्य दोष होने के कारण, इसे नहीं पाया जा सका कि बिना स्टाम्प वाला लिखत विधि की नजर में मौजूद नहीं है। उन्होंने हमारा ध्यान *लछमी नारायण अग्रवाल और अन्य बनाम ब्रज मोहन सिंह (मृतक के बाद से)"* मामले में प्रिवी काउंसिल के फैसले की ओर आकर्षित किया, जिसमें कहा गया था कि शास्ति अदा किया गया, बिना स्टाम्प वाला लिखत, विधि में प्रभावी हो गया। उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों से भी समर्थन प्राप्त किया:

i. *जॉयमन बेवा वि० ईसीन सरकार'*

ii. *गुलजी लाल मारवारी वि० रामगोपाल*

iii. *पूर्ण चंद्र चक्रवर्ती और अन्य बनाम। कालीपद रॉय और अन्य ।*

14. उपरोक्त मामला विधि, बिना किसी त्रुटि के इस निष्कर्ष की ओर इशारा करता है कि किसी दस्तावेज़ पर स्टाम्प लगाने में विफलता, दस्तावेज़ की वैधता को प्रभावित नहीं करती है। इसने दस्तावेज़ को केवल साक्ष्य के तौर पर अस्वीकार्य बना दिया। *यूनाइटेड इंश्योरेंस कंपनी ऑफ़ पाकिस्तान लिमिटेड बनाम हाफ़िज़ मुहम्मद सिद्दीकी* मामले में पाकिस्तान सुप्रीम कोर्ट के फैसले से, दोराब पटेल, जे. के निम्नलिखित शब्द हमारे सामने सूचीबद्ध हैं:

"धारा 35 में शब्दों के अर्थ को बढ़ाना निर्माण के सभी सिद्धांतों के विरुद्ध होगा ताकि धारा के अंतर्गत आने वाले उपकरणों को अमान्य कर दिया जाए।"

15. विद्वान न्यायमित्र का कहना है कि स्टांप शुल्क लिखत के संदर्भ में लगाया जाता है, लेनदेन के संदर्भ में नहीं। स्टाम्प अधिनियम एक समेकित अधिनियम है। यह एक राजकोषीय विधि है। राजस्व सुरक्षित करना उद्देश्य था। इसका उपयोग किसी वादी को तकनीकीता का हथियार पहनाने के लिए नहीं किया जा सकता। उन्होंने न्यायिक हस्तक्षेप पर रोक लगाने वाली अधिनियम की धारा 5 की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने अधिनियम की धारा 8 की ओर इशारा किया, जो वर्ष 2015 में संशोधन के बाद, मध्यस्थता के संदर्भ को अस्वीकार करने की अनुमति देती है, केवल अगर न्यायालय ने प्रथम दृष्टया पाया कि कोई वैध मध्यस्थता करार मौजूद नहीं है। उन्होंने बताया कि धारा 8 में 'वैधता' का उल्लेख है। उन्होंने हमें *एसएमएस टी एस्टेट्स* (सुप्रा) में निर्णय, एसबीपी (सुप्रा) में निर्धारित विधि के संदर्भ में, संविधान पीठ द्वारा, भारत के विधि आयोग की रिपोर्ट के बारे में बताया और न्यूनतम हस्तक्षेप की आवश्यकता पर जोर दिया । न्यूनतम हस्तक्षेप सुनिश्चित करके, धारा 11(6ए) को पूर्ण अर्थ दें। उन्होंने हमारा ध्यान धारा 11 में संशोधन से पहले हुई उच्च स्तरीय समिति की चर्चा की ओर आकर्षित किया। उन्होंने न्यायालय की स्वीकृति के लिए ड्यूरो फेलगुएरा में इस न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण की सराहना की, जिसमें न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ, न्यायालय की ओर से बोलते हुए अन्य, धारा 11(6ए) परिदृश्य में इस प्रकार रखा गया है:

> "59. 1996 अधिनियम की धारा 11(6) के तहत शक्ति का दायरा एसबीपी एंड कंपनी के निर्णयों को देखते हुए काफी व्यापक था। [एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड, (2005) 8 एससीसी 618] और बोघारा पॉलीफैब [नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बोघारा पॉलीफैब (पी) लिमिटेड, (2009) 1 एससीसी 267: (2009) 1 एससीसी (सिव) 117]। यह स्थिति 2015 में संशोधन लाए जाने तक जारी रही। संशोधन के बाद, अदालतों को यह

देखने की ज़रूरत है कि क्या मध्यस्थता करार न तो अधिक मौजूद है और न ही कम। विधायी नीति और उद्देश्य अनिवार्य रूप से मध्यस्थ की नियुक्ति के चरण में न्यायालय के हस्तक्षेप को कम करना है और यह इरादा है जैसा कि धारा 11(6–ए) में शामिल है, उसका सम्मान किया जाना चाहिए।"

16. विद्वान न्यायमित्र का कहना है कि गैर–मुद्रांकन ,ऐसा नहीं होता कि करार को अमान्य कर दें। विधि और तथ्य की दृष्टि से, एक बिना स्टाम्प लगा लिखत जीवन धारण करता है। वह *डुरो फेलगुएरा (सुप्रा)* की ओर इशारा करेंगे जिसे *मायावती ट्रेडिग* (सुप्रा) में तीन विद्वान न्यायाधीशों की पीठ द्वारा अनुमोदित किया गया था । वह *गरवारे* (सुप्रा) में इस खोज पर हमला करेगा कि

बिना स्टाम्प लगा हुआ लिखत गलत होने के कारण अमान्य था। उप–धारा (6ए) को शामिल करने के बाद विधि में क्या आवश्यक है क्योकि उसके बाद दिन के उजाले की तरह साफ़ हैं । मध्यस्थता करार का अस्तित्व, बस इतना ही है धारा 11 के तहत एक आवेदन में न्यायाधीश को विचार में लेना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है, वह इंगित करेगा कि ऐसे मामले हो सकते हैं जहां वास्तविक स्थिति, जो बी *विद्या ड्रोलिया* (सुप्रा) में निर्णय के कारण हुई, मौजूद हो सकती है। इसका मतलब यह है कि चूंकि अधिनियम की धारा 5 कुछ विवादों को गैर–मध्यस्थता योग्य बनाती है, इसलिए यह धारा 11 के तहत संपर्क किए गए न्यायाधीश को संदर्भ देने से रोकने के लिए विचार में ले सकती है। ऐसे अवसर आ सकते हैं, जब न्यायाधीश के पास संदर्भ को अस्वीकार करने के अलावा कोई विकल्प नहीं रह जाएगा। एक उदाहरण एक ऐसा करार हो सकता है जिसे किसी नाबालिग या विकृत दिमाग वाले व्यक्ति द्वारा किया गया दर्शाया गया हो। ऐसे असाधारण मामलों के अलावा, विद्वान न्यायमित्र न्यायालय से इस विचार से राहत पाने का अनुरोध करेंगे कि मध्यस्थ कोम्पेटेंज़–कोम्पेटेंज़ के सिद्धांत के

आधार पर सभी प्रकार के मामलों में आपत्तियाँ से निपटने के लिए पूरी तरह से सक्षम है, जो अधिनियम की धारा 16 में निहित है। विधि आयोग की रिपोर्ट और अधिनियम की धारा 11 में संशोधन से स्पष्ट विधायी इरादे को ध्यान में रखते हुए, जो उसी संशोधन द्वारा अधिनियम की धारा 8 में लाए गए परिवर्तन में अपनी प्रतिध्वनि पाता है, मध्यस्थता के संदर्भ की मांग करने वाले आवेदन के लिए निर्बाध और सुचारू मार्ग की सुविधा प्रदान करने का प्रयास आवश्यक है। एसबीपी (सुप्रा) के पैराग्राफ–18 के संदर्भ में विद्वान अमीकस का मानना है कि *गरवारे* (सुप्रा) में न्यायालय ने यह मानने में गलती की है कि यदि न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना मध्यस्थ नियुक्त किया गया था, तो धारा 16 का पूरा प्रभाव होगा। यह इंगित किया गया है कि 2015 में संशोधन के बाद एसबीपी (सुप्रा) में निर्णय का कोई अस्तित्व नहीं होगा। उन्होंने यह भी बताया कि *गरवारे* (सुप्रा) में न्यायालय ने पैराग्राफ –19, में गलती की जब उसने सुझाव दिया कि न्यायालय केवल एक अनिवार्य अधिनियम को प्रभावी बना रहा था, जिसका उद्देश्य सार्वजनिक राजस्व की रक्षा करना था। हालांकि यह सही है, यह बताया गया है कि विधि द्वारा प्रर्वतनीय एक करार एक संविदा है और संविदा अधिनियम की धारा 2 (जी) में प्रावधान है कि जो करार विधि द्वारा लागू नहीं किया जा सकता है, उसे शून्य, गैर–स्टांपिंग या अपर्याप्त स्टांप कहा जाता है। किसी लिखत को शून्य नहीं करेगा. यह इंगित किया गया है कि यह सुझाव कि, एक बिना स्टाम्प वाला दस्तावेज़ संविदा नहीं बनता है, और (इसलिए, यह विधि में अप्रवर्तनीय है) गलत था। उन्होंने *गरवारे* (सुप्रा) में न्यायालय में भी गलती ढूंढी, जब उसने पाया कि समाधान के रूप में एक बिना स्टाम्प वाला दस्तावेज़ 'अस्तित्व में' नहीं होगा। विद्वान न्यायमित्र का सुझाव है कि एक मध्यस्थ नियुक्त किया जा सकता है और, मध्यस्थ न्यायाधिकरण को स्टाम्प अधिनियम के तहत अपने कर्तव्यों को पूरा करने की अनुमति दी जा सकती हैं । दूसरे शब्दों में, अनुभाग के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, यह इंगित किया गया है।

11(6ए) और न्यूनतम हस्तक्षेप की आवश्यकता, जैसा कि अनुभाग में विचार किया गया है।अधिनियम की अनुभाग 5, एक मध्यस्थता के अस्तित्व के बारे में प्रथम दृष्टया जांच पर करार, एक संदर्भ अवश्य बनाया जाना चाहिए। वह आगे यह भी बताएंगे *विद्या ड्रोलिया* (सुप्रा) में न्यायमूर्ति संजीव खन्ना के फैसले को दोबारा देखने की आवश्यकता हो सकती है। अनुच्छेद–31 के संदर्भ में, जिसमें संजीव खन्ना, जे., एसबीपी (सुप्रा) में संविधान पीठ के फैसले से बंधे हुए महसूस करते थे, यह बताया गया है कि विद्वान न्यायाधीश ने 2015 में संशोधन द्वारा लाए गए धारा 8 और 11 में संशोधनों को नजरअंदाज कर दिया। वह आगे बताएंगे कि पैराग्राफ–81 से 154 में, 'गैर–मध्यस्थता का निर्णय कौन करता है' शीर्षक के तहत, वह स्पष्टता लाने का आह्वान करते हैं। अनुच्छेद–98 में, यह बताया गया है कि इस निष्कर्ष पर पहुंचने में त्रुटि हुई कि धारा 8 और 11 प्रकृति में पूरक थे और दो प्रावधानों के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय, क्षेत्राधिकार पूरक था। यह बताया गया है कि न्यायमूर्ति संजीव खन्ना के विचार मायावती (सुप्रा) मामले में तीन–न्यायाधीशों की पीठ के विचारों से असंगत प्रतीत होते हैं। विद्वान न्यायमित्र द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि अनुच्छेद –146, 147.1, 147.9 और अनुच्छेद–147.10 में न्यायमूर्ति संजीव खन्ना की टिप्पणियों को पुनर्गणना की आवश्यकता हो सकती है। पैराग्राफ–146 से 154, यह एमिकस क्यूरी का रुख है, इसे ठीक करना पड़ सकता है। विद्वान अमीकस का कहना है कि अनुच्छेद–237 और 244 में एन.वी. रमना, जे. के निष्कर्ष को न्यायमूर्ति संजीव ई खन्ना के साथ असंगतता की हद तक समर्थन किया जा सकता है। एन.एन. ग्लोबल (सुप्रा), विद्वान अमीकस ने यह इंगित करने के अलावा कि जो माना गया था उसके विपरीत, अर्थात, एक मध्यस्थता करार पर स्टांप शुल्क नहीं लगाया जा सकता था, यह वास्तव में उत्तरदायी था। यह बताया गया है कि पैराग्राफ–22 और 26 में पालन होना चाहिए का समर्थन किया। विद्वान न्यायमित्र का तर्क है कि अधिनियम की धारा 8 और 11 को

बराबर नहीं माना जा सकता है। लागू किया जाने वाला मानक समान हो सकता है, यानी, मध्यस्थता करार के अस्तित्व की प्रथम दृष्टया संतुष्टि। धारा 11 में, न्यायालय नियुक्ति प्राधिकारी के स्थानापन्न के रूप में कार्य करता है। इसका दायरा बहुत ही सीमित है. यह उनका मामला है, कि धारा 8 के तहत एक आवेदन में, दायरा व्यापक हो सकता है क्योंकि किसी को यह देखना होगा कि क्या कोई वैध मध्यस्थता करार था। उनका निवेदन है कि जब तक यह स्पष्ट रूप से शून्य न हो, 'विषय वस्तु मध्यस्थता' को मध्यस्थ पर छोड़ दिया जाना चाहिए। धारा 8 आवेदन में, न्यायालय को स्टाम्प शुल्क से संबंधित मुद्दे की जांच करने का कार्य नहीं करना चाहिए, जो

स्वीकार्यता पर जाता है न कि क्षेत्राधिकार पर। अनुभाग में 'अस्तित्व' शब्द 11(6ए) का अर्थ कानूनी रूप से प्रर्वतनीय अस्तित्व है, न कि केवल संविदा में उपस्थिति। प्रथम दृष्टया जांच को सीमित करने के लिए न्यायालय के दायरे को सीमित किया जाना चाहिए:

i मध्यस्थता करार की औपचारिक वैधता संविदा निर्माण के बारे में जिसमें यह भी शामिल है कि क्या यह लिखित रूप में है ?

ii क्या मुख्य संविदात्मक सामग्री पूरी की गई थी ?

iii दुर्लभ अवसरों पर, क्या विवाद मध्यस्थता योग्य था?

17. स्टांप शुल्क का निर्णय एक समय लेने वाला मामला है और यह अधिनियम के लक्ष्य के अनुरूप नहीं होगा, जो कि मध्यस्थों की शीघ्र नियुक्ति और कम से कम न्यायिक हस्तक्षेप के साथ कार्यवाही के समापन को सुनिश्चित करना है। यदि न्यायालय को स्टांप शुल्क के विवादों के मामले में हस्तक्षेप करने से रोकता है और मध्यस्थ को उस मामले से निपटने की अनुमति देता है, जिससे वह कानूनी रूप से निपटने के लिए पूरी तरह से सक्षम है, तो यह त्वरित

विवाद समाधान के कारण को बढ़ावा देगा, जो मध्यस्थता की संस्था का लक्ष्य है।

18. सुनवाई के समय विद्वान वरिष्ठ वकील श्री के. रमाकांत रेड्डी प्रथम प्रतिवादी की ओर से उपस्थित हुए। उनका तर्क होगा कि अदालत को स्टाम्प अधिनियम और अधिनियम के बीच एक सामंजस्यपूर्ण संरचना अपनानी चाहिए। वह अधिनियम की धारा 5 के अनुरूप होने के महत्व पर जोर देते हैं। उन्होंने हमारा ध्यान *ग्रेट ऑफशोर लिमिटेड बनाम ईरानी ऑफशोर इंजीनियरिंग एंड कंस्ट्रक्शन कंपनी* मामले में इस न्यायालय के फैसले की ओर आकर्षित किया। उक्त निर्णय में, जो एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लिखा गया है, जबकि अधिनियम की धारा 11 के तहत एक याचिका से निपटते हुए, अन्य बातों के अलावा, माना हैं :

> 55. दूसरा, धारा 7 की स्पष्ट भाषा एक वर्जन फिर मेरे निष्कर्ष को नियंत्रित करती है। धारा 7 के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि पक्ष करार पर स्टाम्प लगाएँ। जब यह स्पष्ट रूप से कहा गया है और जब यह किसी भी तरह से संविधान के साथ संघर्ष नहीं करता है तो संसद के इरादे को अपालन करना गलत होगा।
>
> 60. तकनीकी बातें जैसे स्टाम्प, मोहरें और यहां तक कि हस्ताक्षर वे लाल ऊतासाही हैं जिन्हें पहले हटाना होगा क्योंकि पक्षकार वास्तव में अपने विवाद का एक कुशल, प्रभावी और संभावित रूप से सस्ता समाधान चाहते हैं। *ऑटोनॉमी डे ला वॉलोंटे* सिद्धांत संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय व्यापार विधि आयोग (यू.एन.सी.आई.आर.ए.एल.) मॉडल विधि अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता, 1985 के नीतिगत उद्देश्यों में निहित है, जिस पर हमारा मध्यस्थता अधिनियम आधारित है. (अधिनियम की प्रस्तावना देखें।) अदालतों को विधायी इरादे को लागू

करना चाहिए। अदालतों के लिए विधि द्वारा परिकल्पित नहीं की गई कई अतिरिक्त औपचारिकताओं को जोड़ना अनुचित और अवांछनीय होगा। अदालतों के निर्देश विधायी इरादे को हासिल करने के लिए होने चाहिए।

19. उन्होंने अन्य बातों के साथ–साथ *आयकर आयुक्त बनाम हिंदुस्तान बल्क कैरियर्स* मामले में इस न्यायालय के फैसले की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया कि एक न्यायालय को दो व्याख्याओं का सामना करते हुए उस निर्माण से बचना चाहिए जो विधि को निरर्थकता में बदल देता है लेकिन एक साहसी निर्माण को स्वीकार करता है जो वांछित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रभावी परिणाम देगा।

20. 2022 के I.A.No.199969 में आवेदक (हस्तक्षेप) की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री देबेश पांडा ने प्रस्तुत किया कि अधिनियम पूर्ण संहिता का गठन करता है। चूंकि अधिनियम की धारा 5 में एक गैर–अस्थिर खंड शामिल है जो घोषित करता है कि "किसी भी समय लागू होने वाले किसी भी अन्य विधि में निहित किसी भी चीज़ के बावजूद " न्यूनतम हस्तक्षेप के सिद्धांत पर स्टाम्प अधिनियम के बावजूद, जैसा कि भाग– । में प्रदान किया गया है। अधिनियम, न्यायालय को स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 द्वारा हिरासत में नहीं लिया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी दोहराया कि धारा 11 के तहत जो आवश्यक है वह प्रथम दृष्टया संतुष्टि है। संसद को वैधता पर विचार की आवश्यकता नहीं थी जब इसने धारा 11 (6ए) अधिनियमित किया। धारा 8 और 11 के बीच एक सचेत अंतर है। दूसरे शब्दों में, 'अस्तित्व' और 'वैधता' अभिव्यक्तियों के बीच एक अंतर है। यह तर्क दिया गया है कि धारा 16 के तहत शक्तियों की चौड़ाई अबाधित है।

ई. विश्लेषण

21. विद्वान न्यायमित्र द्वारा की गई दलील कि न्यायालय एन.एन. ग्लोबल (सुप्रा) में इस आधार पर आगे बढ़ने में गलती कर रहा था कि मध्यस्थता करार पर स्टांप शुल्क लागू नहीं होगा, के मद्देनजर संदर्भ के आदेश का आधार ही हटा दिया जाएगा। सुधारित प्रश्न में ये शब्द शामिल नहीं हैं, 'जो स्टांप शुल्क के भुगतान के लिए प्रभार्य नहीं है', और शब्द, 'अप्रवर्तनीय या अमान्य', इसलिए, इस प्रकार होंगे:

> "क्या स्टांप अधिनियम की धारा 35 में निहित वैधानिक रोक अधिनियम की अनुसूची के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 3 के तहत स्टांप शुल्क के लिए प्रभार्य उपकरणों पर लागू होती है, ऐसे लिखत में निहित मध्यस्थता करार को भी प्रस्तुत करेगी, जैसा कि अस्तित्वहीन, मूल संविदा/लिखत पर स्टांप शुल्क का भुगतान लंबित है?"

एफ. <u>अधिनियम</u>

22. अधिनियम की धारा 2(बी) एक मध्यस्थता करार को धारा 7 में संदर्भित एक करार के रूप में परिभाषित करती है।

23. अधिनियम की धारा 5 इस प्रकार घोषित करती है:–

"5. न्यायिक हस्तक्षेप की सीमा– तत्समय लागू किसी भी अन्य विधि में कुछ भी निहित होने के बावजूद, इस भाग द्वारा शासित मामलों में, कोई भी न्यायिक प्राधिकारी हस्तक्षेप नहीं करेगा, सिवाय इसके कि इस भाग में जैसा प्रावधान किया गया है।"

24. अधिनियम की धारा 7 इस प्रकार है:

"7 मध्यस्थता करार.

(1) इस भाग में, "मध्यस्थता करार" का अर्थ पक्षकारों द्वारा उन सभी या कुछ विवादों जो उत्पन्न हुए हैं या जो एक परिभाषित कानूनी संबंध के संबंध में उनके बीच उत्पन्न हो सकते हैं, को मध्यस्थता के लिए प्रस्तुत करने के लिए एक करार है चाहे संविदात्मक हो या नहीं।

(2) एक मध्यस्थता करार एक संविदा में मध्यस्थता खंड के रूप में या एक अलग करार के रूप में हो सकता है।

(3) मध्यस्थता करार लिखित रूप में होगा।

(4) एक मध्यस्थता करार लिखित रूप में होता है यदि इसमें निहित है–

(ए) पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित एक दस्तावेज़;

(बी) पत्रों, टेलेक्स, टेलीग्राम या दूरसंचार के अन्य माध्यमों का आदान–प्रदान जो करार का रिकॉर्ड प्रदान करते हैं; या

(सी) दावे और बचाव के बयानों का आदान–प्रदान जिसमें एक पक्ष द्वारा करार के अस्तित्व का आरोप लगाया जाता है और दूसरे द्वारा इनकार नहीं किया जाता है।

(5) किसी संविदा में मध्यस्थता खंड वाले दस्तावेज़ का संदर्भ एक मध्यस्थता करार का गठन करता है यदि संविदा लिखित रूप में है और संदर्भ ऐसा है कि उस मध्यस्थता खंड को संविदा का हिस्सा बना दिया जाए।"

25. धारा 11 मध्यस्थों की नियुक्ति से संबंधित है। चूँकि हम धारा 11(6 ए) जो प्रभाव में आई से चिंतित हैं,, हम इसे संदर्भित करना उचित समझते हैं:

"6ए. उच्चतम न्यायालय या, जैसा भी मामला हो, उच्च न्यायालय, आवेदनपत्र अंतर्गत उप–धारा (4) या उप–धारा (5) पर विचार

करते समय, किसी भी न्यायालय के किसी भी निर्णय, डिक्री या आदेश के बावजूद, मध्यस्थता करार के अस्तित्व की जांच तक ही सीमित रहें।"

यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि उपरोक्त प्रावधान 2019 के अधिनियम 33 द्वारा हटा दिया गया है। लेकिन 2019 के अधिनियम 33 को लागू नहीं किया गया है।

जी. <u>धारा सी 11(6ए) को शामिल करने का क्या कारण हैं ?</u>

26. अतीत में जाना और यह जांच करना महत्वपूर्ण है कि अधिनियम की धारा 11 में उप–धारा (6ए) को शामिल करने का क्या कारण है। यह अधिनियम वर्ष 1996 में पारित किया गया था। यह अधिनियम, निस्संदेह, UNCITRAL मॉडल विधि पर आधारित है। भारत के विधि आयोग की एक सौ छिहत्तरवीं रिपोर्ट ने अधिनियम में संशोधन करने के लिए अपनी सिफारिशें की। इसके बाद जस्टिस बी.पी. सराफ समिति की रिपोर्ट, जो 29.01.2005 को प्रस्तुत की गई थी। अधिनियम की धारा 11 के तहत न्यायालयों द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति की प्रकृति, विचारणीय मामले के विधि का विषय थी। यह ध्यान देने योग्य है कि सात विद्वान न्यायाधीशों की एक पीठ ने एसबीपी (सुप्रा) में एकमात्र असहमति के साथ यह माना कि धारा 11(6) के तहत प्रयोग की गई शक्ति एक न्यायिक शक्ति थी न कि प्रशासनिक शक्ति। बहुमत के फैसले में, न्यायालय के पास अधिनियम की धारा 16 के प्रभाव पर विचार करने का अवसर था, जिसमें कॉम्पेटेंज़–कोम्पेटेन्ज़ का सिद्धांत शामिल है। न्यायालय ने अन्य बातों के साथ–साथ इस प्रकार निर्णय दिया:

> 12.... जब ट्रिब्यूनल इन दो प्रश्नों का निर्णय करता है, अर्थात् अधिकार क्षेत्र का प्रश्न और प्राधिकार के दायरे से बाहर जाने का प्रश्न

या इनमें से किसी एक का, तो आपत्ति बरकरार रहने पर इसे अपील में तत्काल चुनौती दी जा सकती है और केवल अंतिम अवार्ड के खिलाफ अपील में, जब आपत्ति को खारिज कर दिया जाता है । उप–धारा (5) में कहा गया है कि यदि मध्यस्थता न्यायाधिकरण उप–धारा (2) या (3) के तहत आपत्तियों को खारिज कर देता है, तो उसे मध्यस्थ कार्यवाही जारी रखनी चाहिए और एक मध्यस्थ अवार्ड बनाएं। उप–धारा (6) में प्रावधान है कि इस तरह के मध्यस्थ अवार्ड से व्यथित पक्ष क्षेत्राधिकार की कमी और दायरे से अधिक होने पर याचिका को खारिज करने हेतु इन आधारों पर प्राधिकरण को आवेदन कर सकता है कि अधिनियम की धारा 34 के अनुसार अवार्ड को अलग रखें। धारा 11 की उप–धारा (7) के संदर्भ में एक प्रश्न यह है कि मध्यस्थ न्यायाधिकरण को अपने अधिकार क्षेत्र पर शासन करने के लिए प्रदत्त अधिकार का दायरा और मध्यस्थता खंड का अस्तित्व क्या है। धारा 16(1) द्वारा परिकल्पित, एक वर्जन मुख्य न्यायाधीश या उनके द्वारा नामित व्यक्ति ने खुद को संतुष्ट करने के बाद एक मध्यस्थ नियुक्त किया था कि मध्यस्थ नियुक्त करने की शक्ति के प्रयोग की शर्तें मामले में मौजूद हैं। प्रथम दृष्टया, यह कहना कठिन होगा कि अधिनियम की धारा 11 की उप–धारा (7) द्वारा मुख्य न्यायाधीश के ऐसे निर्णय को दी गई अंतिम मंजूरी के बावजूद, मध्यस्थ न्यायाधिकरण अभी भी उस निर्णय के पीछे जा सकता है और अपने स्वयं के अधिकार क्षेत्र पर या मध्यस्थता खंड के अस्तित्व पर नियम। हमें यह कहना भी असंगत प्रतीत होता है कि मुख्य न्यायाधीश द्वारा एक मध्यस्थ न्यायाधिकरण नियुक्त करने के बाद, मध्यस्थ न्यायाधिकरण घूम सकता है और कह सकता है कि मुख्य न्यायाधीश के पास न्यायाधिकरण नियुक्त करने का कोई अधिकार क्षेत्र

या अधिकार नहीं था, जो अस्तित्व में लाया गया प्राणी है। इसके निर्माता, मुख्य न्यायाधीश द्वारा शक्ति के प्रयोग द्वारा। विद्वान वरिष्ठ वकील श्री के.के. का तर्क वेणुगोपाल डी का कहना है कि धारा 16 तभी पूर्ण रूप से लागू होती है जब अधिनियम की धारा 11(6) के तहत हस्तक्षेप के बिना एक मध्यस्थ न्यायाधिकरण का गठन किया जाता है, यह अधिनियम की धारा 11 के साथ उस प्रावधान को समेटने का एक तरीका है। विशेषकर उसकी उपधारा (7) के संदर्भ में। हमारा मानना है कि ई क्षेत्राधिकार के मुद्दे पर और एक वैध मध्यस्थता करार के अस्तित्व पर मुख्य न्यायाधीश का निर्णय पार्टियों पर बाध्यकारी होगा जब मामला मध्यस्थ न्यायाधिकरण में जाता है और कार्यवाही के बाद के चरणों में सिवाय इसके कि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश या उनके द्वारा नामित उच्च न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा निर्णय होने की स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय में अपील।"

(जोर दिया गया)

27. हम आगे एस. एम. एस. टी एस्टेट (उपरोक्त) में दो विद्वान न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिए गए निर्णय पर ध्यान दे सकते हैं। उन्होंने तीन प्रश्नों का जवाब दिया। प्रासंगिकता की बात यह है कि दूसरा प्रश्न यह था कि क्या एक अपंजीकृत लिखत में एक मध्यस्थता करार, जिस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगी है, वैध और प्रर्वतनीय है। न्यायालय ने अन्य बातों के साथ–साथ इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

"20. गुवाहाटी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा मध्यस्थों की नियुक्ति के लिए योजना, 1996 अधिनियम की धारा 11 के तहत एक आवेदन जिसके साथ मूल मध्यस्थता करार या उसकी विधिवत प्रमाणित प्रति होनी चाहिए की,

आवश्यकता है। वास्तव में, ऐसी आवश्यकता लगभग सभी उच्च न्यायालयों की योजना/नियमों में पाई जाती है। यदि जो प्रस्तुत किया जाता है वह मध्यस्थता खंड वाले करार/संविदा/लिखत की प्रमाणित प्रति है, तो उसे मूल पर भुगतान किए गए स्टाम्प शुल्क का खुलासा करना चाहिए। धारा 33 प्रत्येक न्यायालय पर एक कर्तव्य डालती है, कि एक व्यक्ति जिसे विधि द्वारा साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार है (साथ ही प्रत्येक मध्यस्थ जो एक व्यक्ति है जिसे पक्षों की सहमति से, साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार है) जिसके समक्ष एक अपंजीकृत लिखत जो स्टाम्प से प्रभार्य है, प्रस्तुत की जाती है, यह पता लगाने के लिए कि क्या उस पर विधिवत स्टाम्प लगी है। यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि दस्तावेज़ पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगा है, तो उसे दस्तावेज़ को परिबद्ध करना होगा और स्टाम्प् अधिनियम की धारा 38 के अनुसार इससे व्यवहत करना होगा।

XXX XXX XXX

22. इसलिए हम उस प्रक्रिया का सारांश प्रस्तुत कर सकते हैं जिसे तब अपनाया जाना चाहिए जब मध्यस्थता खंड ऐसे दस्तावेज़ में निहित हो जो पंजीकृत नहीं है (परंतु अनिवार्य रूप से पंजीयन करने योग्य है) और जिस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगी है:

22.1. न्यायालय को किसी भी दस्तावेज़ को साक्ष्य में स्वीकार करने या ऐसे दस्तावेज़ पर कार्रवाई करने से पहले, यह जांचना चाहिए कि क्या लिखत/दस्तावेज़ पर विधिवत स्टाम्प लगा है और क्या यह एक ऐसा लिखत है जो अनिवार्य रूप से पंजीकरण योग्य है।

22.2. यदि दस्तावेज़ पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगा पाया जाता है, तो स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 उक्त दस्तावेज़ पर कार्रवाई करने से रोकती है। परिणामस्वारुप, उसमें मध्यस्थता खंड पर भी कार्रवाई नहीं की जा सकती है। इसके बाद न्यायालय को स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के तहत दस्तावेज़ को परिबद्ध करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए और स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 और 38 के तहत प्रक्रिया का पालन करना चाहिए।

22.3. यदि दस्तावेज़ पर विधिवत स्टाम्प लगा हुआ पाया जाता है, या यदि कमी मुद्रांक शुल्क और शस्ति का भुगतान या तो न्यायालय के समक्ष या कलेक्टर के समक्ष किया जाता है (जैसा कि स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 या

40 की धारा में अनुध्यात किया गया है), और कमी के संदर्भ में दोष ठीक हो जाता है, तो न्यायालय दस्तावेज़ को विधिवत स्टाम्प लगा हआ मान सकता है।"

(बल दिया गया)

इस दृष्टिकोण का अनुसरण धर्मरत्नाकर राय बहादुर अर्काट नारायणस्वामी मुदलियार चत्तरम बनाम भास्कर राजू एंड ब्रदर्स में और पश्चात् में गरवारे (उपरोक्त) में भी किया गया है । हमने पैराग्राफ–19 और 21 की पुनरावृत्ति को छोड़ दिया है, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

28. *शिन–एत्सु केमिकल कं. लिमिटेड बनाम अक्ष ऑप्टिफ़ाइबर लिमिटेड और अन्य* अधिनियम की धारा 45 के तहत उत्पन्न होने वाले अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता का मामला था। तीन विद्वान न्यायाधीशों की पीठ द्वारा मामले का निर्णय लेने के साथ, न्यायमूर्ति वाई. के. सभरवाल के असहमति के साथ बहुमत ने यह विचार व्यक्त किया कि धारा 45 के तहत मध्यस्थता के लिए संदर्भ दिया जाना चाहिए या नहीं, इस सवाल पर निर्णय लेने में, दृष्टिकोण यह पता लगाने का होना चाहिए कि क्या प्रथम दृष्टया मामला बनता है और क्या यह 'स्पष्ट रूप से तर्क योग्य' है कि मध्यस्थता करार अस्तित्व में था। दूसरे शब्दों में, न्यायालय ने यह विचार किया कि प्रथम दृष्टया यह संतुष्टि होनी चाहिए कि मध्यस्थता करार था, जो शून्य, निष्क्रिय या निष्पादित करने में असमर्थ नहीं है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि धारा 45, उस समय जब मामला तय किया गया था, इस प्रकार थी:

"45. पक्षकारों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने की न्यायिक प्राधिकरण की शक्ति – भाग 1 या सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में किसी बात के होते हुए भी, एक न्यायिक प्राधिकरण, जब किसी ऐसे मामले में कार्रवाई करता है जिसके संबंध में पक्षों ने धारा 44 में निर्दिष्ट एक करार किया है, तो पक्षकारों में से किसी एक पक्ष या उसके माध्यम से या उसके तहत दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति के अनुरोध पर, पक्षकारों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करेगा, जब तक कि वह यह न पाए कि उक्त करार शून्य, निष्क्रिय या निष्पादित होने में असमर्थ है।"

(बल दिया गया)

29 यह उपरोक्त वैधानिक पाठ पर ही था कि न्यायमूर्ति बी . एन. श्रीकृष्णा ने यह विचार रखा कि मध्यस्थता करार के अस्तित्व के बारे में निष्कर्ष, प्रथम दृष्टया निष्कर्ष

होना चाहिए।न्यायमूर्ति डी. एम. धर्माधिकारी ने कुछ अतिरिक्त बातों के साथ न्यायमूर्ति बी. एन. श्रीकृष्णा से सहमति व्यक्त की।

30. *राष्ट्रीय बीमा कंपनी लिमिटेड बनाम बोघारा पॉलीफैब प्राइवेट लिमिटेड*[1], में, जो प्रश्न, दो विद्वान न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष विचार के लिए आया था, यह था कि कौन सी परिस्थितियों में, एक न्यायालय मध्यस्थता से संबंधित विवाद की मात्रा को संदर्भित करने से इनकार कर देगा, भले ही संविदा में ऐसे विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने की बात कही गई थी।

17 (2020) 4 एससीसी 612
18 (2005) 7 एससीसी 234
19 (2009) 1 एससीसी 267

यह भी विचारणीय रहा है, कि क्या इस आधार पर संदर्भ का विरोध कि क्या अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदक ने राशि प्राप्त की और एक पूर्ण और अंतिम डिस्चार्ज वाउचर जारी किया, उन्होंने कहा कि यह आदेश अनुचित प्रभाव, दबाव और आर्थिक मजबूरी के तहत जारी किया गया था, इसलिए इस संदर्भ को उचित ठहराया गया। न्यायमूर्ति आर.वी. रवींद्रन ने न्यायालय की ओर से बोलते हुए, अन्य बातों के साथ–साथ, एसबीपी (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय का पालन करने का दावा किया और इस प्रकार कहा:

> "22. जहां धारा 11 के तहत मध्यस्थ न्यायाधिकरण की नियुक्ति के लिए न्यायालय का हस्तक्षेप मांगा जाता है, वहां मुख्य न्यायाधीश या उनके नामित व्यक्ति का कर्तव्य एस. बी. पी. एंड कंपनी [(2005) 8 एस. सी. सी. 618] में परिभाषित किया गया है। इस न्यायालय ने अधिनियम की धारा 11 के तहत एक आवेदन में विचार के लिए उत्पन्न होने वाले प्रारंभिक विवाद्यकों की पहचान की और उन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित किया, अर्थात्, (i) ऐसे विवाद्यक जो मुख्य न्यायाधीश या उनके द्वारा नामित व्यक्ति तय करने के लिए बाध्य हैं; (ii) ऐसे विवाद्यक जो वह भी तय कर सकते हैं, यानी ऐसे विवाद्यक जो वह तय करने का विकल्प चुन सकते हैं; और (iii) ऐसे विवाद्यक जिन्हें तय करने के लिए मध्यस्थ न्यायाधिकरण पर छोड़ दिया जाना चाहिए।

1

22.1. वे विवाद्यक (पहली श्रेणी) पर मुख्य न्यायाधीश/उनके द्वारा नामित व्यक्ति को निर्णय लेना होगा, वे हैं:

(क) क्या आवेदन करने वाले पक्ष ने उपयुक्त उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

(ख) क्या कोई मध्यस्थता करार है और क्या वह पक्ष जिसने अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदन किया है, इस तरह के करार का एक पक्ष है।

22.2. वे विवाद्यक (दूसरी श्रेणी) को मुख्य न्यायाधीश/उनका द्वारा नामित व्यक्ति तय करने के लिए चुन सकता है (या उन्हें मध्यस्थ न्यायाधिकरण के निर्णय पर छोड़ सकता है) वे हैं:

(क) क्या दावा एक मृत (लंबे समय से प्रतिबंधित) दावा है या एक जीवित दावा है।

(ख) क्या पक्षों ने अपने पारस्परिक अधिकारों और दायित्वों की संतुष्टि दर्ज करके या बिना किसी आपत्ति के अंतिम भुगतान प्राप्त करके संविदा/लेनदेन का समापन किया है।

22.3. जिन विवाद्यक (तीसरी श्रेणी) को मुख्य न्यायाधीश/उनके नामित व्यक्ति को विशेष रूप से मध्यस्थ न्यायाधिकरण पर छोड़ना चाहिए, वे हैं:

(i) क्या किया गया दावा मध्यस्थता खंड के अंतर्गत आता है (उदाहरण के लिए, कोई मामला जो विभागीय प्राधिकरण के अंतिम निर्णय के लिए आरक्षित है और मध्यस्थता से अपवादित या बहिष्कृत है)

(ii) गुणदोष या मध्यस्थता में शामिल कोई दावा।

23. अधिनियम की योजना से यह स्पष्ट है जैसा कि इस न्यायालय द्वारा एस. बी. पी. एंड कंपनी [(2005) 8 एस. सी. सी. 618] में व्याख्या की गयी है कि दूसरी श्रेणी के तहत आने वाले विवाद्यक के संबंध में, यदि अधिनियम की धारा 11 के तहत किसी भी आवेदन में उठाया जाता है, तो मुख्य न्यायाधीश/उसके द्वारा नामित व्यक्ति, यदि आवश्यक हो, तो साक्ष्य लेकर उनका निर्णय ले सकता है। वैकल्पिक रूप से, वह उन विवाद्यकों को मध्यस्थ न्यायाधिकरण को निर्णय लेने के निर्देश के साथ खुला छोड़ सकता है। यदि मुख्य न्यायाधीश या

उनके द्वारा नामित व्यक्ति इस मुद्दे की जांच करने का विकल्प चुनते हैं और इसका फैसला करते हैं, तो मध्यस्थ न्यायाधिकरण उसी विवाद्यक की फिर से जांच नहीं कर सकता है। मुख्य न्यायाधीश/उनका द्वारा नामित व्यक्ति, यह चुनने में कि क्या वह इस तरह के विवाद्यक पर निर्णय लेगा या इसे मध्यस्थ न्यायाधिकरण पर छोड़ देगा, अधिनियम के उद्देश्य (जो न्यूनतम न्यायिक हस्तक्षेप के साथ मध्यस्थता प्रक्रिया में तेजी लाना है) द्वारा निर्देशित होगा।जहां पूर्ण और अंतिम करार द्वारा संविदा के निर्वहन को दर्ज करने वाले दस्तावेज़ के संबंध में जालसाजी/मनगढ़ंत आरोप लगाए जाते हैं, यह उचित होगा यदि मुख्य न्यायाधीश/उनके द्वारा नामित व्यक्ति इस विवाद्यक का फैसला करते हैं।

24. हालांकि यह स्पष्ट है कि जब कोई उत्तरवादी यह तर्क देता है कि विवाद किसी समाधान करार या निर्वहन वाउचर या नो–क्लेम प्रमाणपत्र के तहत संविदा के निर्वहन के कारण मध्यस्थता योग्य नहीं है, और दावाकर्ता का तर्क है कि यह धोखाधड़ी, जबरदस्ती या अनुचित प्रभाव से प्राप्त किया गया था, तो इस विवाद्यक का निर्णय या तो मुख्य न्यायाधीश/उनके द्वारा नामित व्यक्ति द्वारा अधिनियम की धारा 11 के तहत कार्यवाही में या अधिनियम की धारा 11 के तहत आदेश द्वारा निर्देशित मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा किया जाएगा। मध्यस्थता के लिए एक दावे को केवल या पूरी तरह से इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि एक समाधान करार या निर्वहन वाउचर को दावेदार द्वारा निष्पादित किया गया था, यदि इसकी वैधता दावेदार द्वारा विवादित है।"

31. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि, उस समय जब न्यायालय ने एस. बी. पी. (उपरोक्त) और एस. एम. एस. टी. ईस्टेट (उपरोक्त), धारा 11 (6) में एक मध्यस्थ की नियुक्ति पर विचार किया गया था, अनिवार्य रूप से नियुक्त पर सहमत होने या नियुक्ति करने में पक्षों की विफलता पर न्यायालयों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों के संदर्भ में, जैसा कि ऊपर कहा गया है, भारत के विधि आयोग ने अगस्त, 2014 में दो सौ छियालिसवीं रिपोर्ट प्रस्तुत की। उक्त रिपोर्ट में, निर्णय का उल्लेख करने के बाद एस. बी. पी. (ऊपर) में और राष्ट्रीय बीमा (ऊपर) में व्यक्त किए गए विचारों के साथ, विधि आयोग ने अन्य बातों के साथ–साथ निम्नलिखित सिफारिशें प्रस्तुत कीं:

"31. आयोग का विचार है कि, इस संदर्भ में, न्यायिक हस्तक्षेप के दायरे और प्रकृति के बारे में वही परीक्षण, जो धारा 11 के संदर्भ में लागू होता है, अधिनियम की धारा 8 और 45 पर भी लागू होना चाहिए – चूँकि न्यायिक हस्तक्षेप का दायरा और प्रकृति इस बात पर नहीं बदलनी चाहिए कि क्या कोई

पक्ष (मध्यस्थता करार को विफल करने का इरादा रखता है) मध्यस्थता करार के संदर्भ में मध्यस्थ नियुक्त करने से इनकार करता है , या इस तरह के मध्यस्थता करार के सामने न्यायिक प्राधिकरण के समक्ष कार्यवाही करता है।

32. हस्तक्षेप की प्रकृति के संबंध में, विधि की व्याख्या शिन एट्सु केमिकल्स कंपनी लिमिटेड बनाम सुप्रीम कोर्ट के फैसले में पाई जाती है। अक्ष ऑप्टिफ़ाइबर, (2005) 7 एस. सी. सी. 234, (अधिनियम की धारा 45 के संदर्भ में), जहां सर्वोच्च न्यायालय ने विवाद्यकों/विवाद को केवल प्रथम दृष्टया देखने के पक्ष में फैसला सुनाया है।

33. इस संदर्भ में आयोग ने मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 8 और 11 में संशोधन की सिफारिश की है। न्यायिक हस्तक्षेप का दायरा केवल उन स्थितियों तक सीमित है जहां न्यायालय /न्यायिक प्राधिकरण को पता चलता है कि मध्यस्थता करार मौजूद नहीं है या शून्य है। जहाँ तक हस्तक्षेप की प्रकृति का संबंध है, यह अनुशंसा की जाती है कि यदि न्यायालय /न्यायिक प्राधिकरण मध्यस्थता करार को चुनौती देने वाले तर्क के खिलाफ प्रथम दृष्टया संतुष्ट हो जाता है, तो वह मध्यस्थ की नियुक्ति करेगा और/या पक्षकारों को मध्यस्थता के लिए भेजेगा, जैसा भी मामला हो। संशोधन में प्रावधान किया गया है कि न्यायिक प्राधिकरण पक्षकारों को केवल तभी मध्यस्थता के लिए नहीं भेजेगा जब वह पाएगा कि कोई मध्यस्थता करार मौजूद नहीं है या यह शून्य है। यदि न्यायिक प्राधिकरण की राय है कि प्रथम दृष्टया मध्यस्थता करार मौजूद है, तो वह विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करेगा, और मध्यस्थता करार के अस्तित्व को अंततः मध्यस्थता न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित करने के लिए छोड़ देगा।हालांकि, अगर न्यायिक प्राधिकरण यह निष्कर्ष निकालता है कि करार मौजूद नहीं है, तो वह निष्कर्ष अंतिम होगा प्रथम दृष्टया नहीं। संशोधन में यह भी प्रावधान किया गया है कि यह एक निर्णायक निर्धारण होगा कि मध्यस्थता करार शून्य और शून्य है, यदि न्यायिक प्राधिकरण विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करता है और/या मध्यस्थ नियुक्त करता है, तो धारा 8 और 11 के तहत ऐसा निर्णय अंतिम होगा और अपील योग्य नहीं होगा। धारा 37 के तहत केवल तभी अपील की जा सकती है जब पक्षों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने से इनकार कर दिया जाए या मध्यस्थ नियुक्त करने से इनकार कर दिया जाए।"

(बल दिया गया)

32 तदनुसार, यह रिपोर्ट स्वीकार करते हुए कि धारा 11(6ए) अंतःस्थापित की गई। उन घटनाओं को निर्धारित करने के बाद, जिनके कारण धारा 11(6ए) को शामिल किया गया, हम कथा को आगे ले जा सकते हैं। *ड्यूरो फेलगुएरा* में, हमने इस निर्णय के पहले भाग में पैराग्राफ 59 में लिए गए दृष्टिकोण को देखा है, संक्षेप में, यह पता लगाने का कर्तव्य कि मध्यस्थता करार मौजूद है या नहीं। विद्वान न्यायाधीश ने पैराग्राफ 48 में भी टिप्पणियां कीं जिसमें धारा 11 (6ए) को उद्धृत करने के बाद उन्होंने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

> "... धारा 11(6–ए) के अध्ययन से, विधायिका का इरादा स्पष्ट है अर्थात न्यायालय को केवल एक पहलू पर ध्यान देना चाहिए और उसकी आवश्यकता है– एक मध्यस्थता करार का अस्तित्व। अगला प्रश्न यह है कि यह तय करने के लिए कौन से कारक हैं कि मध्यस्थता करार है या नहीं। इसका समाधान सरल है– यह देखने की आवश्यकता है कि क्या करार में एक खंड है जो करार के पक्षों के बीच उत्पन्न हुए विवादों से संबंधित मध्यस्थता का प्रावधान करता है।"

33. गरवारे (ऊपर) में दो विद्वान न्यायाधीशों की एक पीठ ने धारा 11 (6ए) के तहत एक मामले पर विचार किया और वह भी महाराष्ट्र स्टाम्प अधिनियम, 1958 के संदर्भ में। अपीलार्थी द्वारा उठाया गया तर्क यह था कि एस. एम. एस. चाय संपदाओं (उपरोक्त) में निर्णय धारा 11(6ए) के लागू होने के बाद भी लागू रहता है। दूसरे शब्दों में, धारा 11(6ए) को शामिल करने के बावजूद, एस. एम. एस. चाय संपदाओं (उपरोक्त) में अनुध्यात की गई प्रक्रिया का पालन करना होगा। न्यायालय ने अन्य बातों के साथ–साथ, जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं और जिसे एन. एन. ग्लोबल (उपरोक्त) में संदर्भित किया गया है:

> 22. जब एक मध्यस्थता खंड "एक संविदा में" निहित होता है, तो यह महत्वपूर्ण है कि करार केवल तभी एक संविदा बन जाता है जब यह विधि द्वारा लागू किया जा सके।हमने देखा है कि कैसे, भारतीय स्टाम्प अधिनियम के तहत, एक करार एक संविदा नहीं बन जाता है, अर्थात्, यह विधि में प्रर्वतनीय नहीं है, जब तक कि उस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई जाती है। इसलिए, धारा 11(6ए) को जब 1996 के अधिनियम की धारा 7(2) और संविदा अधिनियम की धारा 2 (एच) के साथ पढ़ा जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी करार में मध्यस्थता खंड जब मौजूद नहीं होगा तब वह विधि द्वारा लागू नहीं किया जा सकता है। यह भी एक संकेत है कि धारा 11 (6ए) के संशोधन ने किसी भी तरह से एस. एम. एस. टी एस्टेट को प्रभावित नहीं किया है।

XXX XXX XXX

29. हुंडई इंजी. प्रकरण में यह निर्णय इस मायने में महत्वपूर्ण है कि जो विशेष रूप से विचाराधीन था वह एक मध्यस्थता खंड था जो केवल तभी सक्रिय होगा जब कोई बीमाकर्ता दायित्व स्वीकार करता है। चूँकि तथ्यों के आधार पर यह पाया गया कि बीमाकर्ता ने दावे को अस्वीकार कर दिया , हालांकि एक मध्यस्थता खंड "मौजूद" था, जैसा पॉलिसी में, यह विधि में मौजूद नहीं होगा, जैसा कि उस निर्णय में माना गया था, जब एक महत्वपूर्ण तथ्य पेश किया जाता है, अर्थात्, बीमाकर्ता ने दायित्व को स्वीकार नहीं किया है। इसी तरह, वर्तमान मामले के तथ्यों में, यह स्पष्ट है कि उप–संविदा में निहित मध्यस्थता खंड तब तक विधि के रूप में "मौजूद" नहीं होगा जब तक कि उप–संविदा पर विधिवत स्टाम्प नहीं लग जाती, जैसा कि हम ऊपर मान चुके हैं। यह तर्क कि धारा 11(6ए) "अस्तित्व" से संबंधित है, जबकि धारा 8, धारा 16 और धारा 45, जो मध्यस्थता करार की "वैधता" से संबंधित हैं, इसका उत्तर इस न्यायालय द्वारा हुंडई इंजीनियरिंग मामले में "अस्तित्व" की अभिव्यक्ति की समझ से मिलता है, जिसका हमने अनुसरण किया है।"

34. हम देख सकते हैं कि अधिनियम की धारा 45 में, 'जब तक यह नहीं पाता' शब्दों के स्थान पर, 2019 के अधिनियम 33 द्वारा, 'जब तक यह प्रथम दृष्टया नहीं पाता' शब्दों को प्रतिस्थापित किया गया था। यह *एसएमएस* टी एस्टेट्स (उपरोक्त) में न्यायमूर्ति बी. एन. श्रीकृष्ण द्वारा दिए गए निर्णय के माध्यम से इस न्यायालय द्वारा अपनाई गई स्थिति की विधायी मान्यता के बराबर है।

35. *मायावती ट्रेडिंग (पी) लिमिटेड बनामप्रद्युत देब बर्मन*[2], इस न्यायालय के तीन विद्वान न्यायाधीशों की पीठ ने अन्य बातों के साथ–साथ निम्नलिखित निर्णय दिया:

10. ऐसी स्थिति में, यह स्पष्ट है कि 2015 के संशोधन से पहले की विधि जो इस न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया है, जिसमें यह शामिल था कि करार और संतुष्टि हुई है, अब विधायी रूप से निष्प्रभावी कर दिया गया है। ऐसी स्थिति में, उपरोक्त निर्णय [यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम एंटीक आर्ट एक्सपोर्ट्स (पी) लिमिटेड, (2019) 5 एससीसी 362: (2019) 2 एससीसी (सिविल) 785] में निहित तर्क से सहमत होना मुश्किल है, चूंकि धारा 11(6–ए) मध्यस्थता करार के अस्तित्व की जांच तक ही सीमित है और

2 (2019) 8 एससीसी 714

इसे संकीर्ण अर्थ में समझा जाना चाहिए जैसा कि डूरो फेलगुएरा , एसए [डूरो फेलगुएरा, एसए बनाम गंगावरम पोर्ट लिमिटेड, (2017) 9 एससीसी 729: (2017) 4 एससीसी (सिविल) 764] के फैसले में निर्धारित किया गया है – पैरा 48 और 59 देखें।उक्त पैरा 48 और 59 ड्यूरो फेलगुएरा, एसए बनाम गंगावरम पोर्ट लिमिटेड, (2017) 9 एससीसी 729 :(2017) 4 एस. सी. सी. (सी. आई. वी.) 764, तैयार संदर्भ के लिए, निम्नानुसार पढ़िएः"48. 2015 के संशोधन द्वारा जोड़ी गई धारा 11 (6–ए) इस प्रकार हैः"11.(6–क) उच्चतम न्यायालय या, यथास्थिति, उच्च न्यायालय, उप–धारा (4) या उप–धारा (5) या उप–धारा (6) के तहत किसी भी आवेदन पर विचार करते हुए, किसी न्यायालय के किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के बावजूद, किसी न्यायालय के अस्तित्व की जांच तक सीमित रहेगा। मध्यस्थता करार।"(बल दिया गया) धारा 11 (6–ए) के पढ़ने से, विधायिका का इरादा स्पष्ट है अर्थात न्यायालय को केवल एक पहलू पर ध्यान देना चाहिए और उसकी आवश्यकता है– एक मध्यस्थता करार का अस्तित्व। अगला सवाल यह है कि यह तय करने के लिए कौन से कारक हैं कि मध्यस्थता करार है या नहीं।इसका समाधान सरल है–यह देखने की आवश्यकता है कि क्या करार में एक खंड है जो करार के पक्षों के बीच उत्पन्न हुए विवादों से संबंधित मध्यस्थता का प्रावधान करता है। ***59. 1996 के अधिनियम की धारा 11 (6) के तहत शक्ति का दायरा एस. बी. पी. एंड कंपनी बनाम में निर्णयों को देखते हुए काफी व्यापक था। पटेल इंजी.लिमिटेड, (2005) 8 एस. सी. सी. 618 और राष्ट्रीय बीमा कंपनी लिमिटेड बनाम बोघारा पॉलीफैब (पी) लिमिटेड, (2009) 1 एससीसी 267: (2009) 1 एस. सी. सी. (सी. वी.) 117. यह स्थिति 2015 में लाए गए संशोधन तक जारी रही। संशोधन के बाद, अदालतों को केवल यह देखने की आवश्यकता है कि क्या एक मध्यस्थता करार मौजूद है– कुछ भी अधिक नहीं, कुछ भी कम नहीं। विधायी नीति और उद्देश्य अनिवार्य रूप से मध्यस्थ की नियुक्ति के स्तर पर न्यायालय के हस्तक्षेप को कम करना है और धारा 11 (6–ए) में शामिल इस इरादे का सम्मान किया जाना चाहिए।"] .

36. गरवारे (ऊपर) [पैराग्राफ–22 और 29 (ऊपर)] में लिए गए दृष्टिकोण को विद्या द्रोलिया (ऊपर) में रिपोर्ट किए गए निर्णय में तीन विद्वान न्यायाधीशों की पीठ द्वारा विशेष रूप से अनुमोदित किया गया। इसमें, न्यायमूर्ति एन.वी. रमण ने अपना स्वयं का निर्णय भी प्रस्तुत किया। यह निर्णय दिनांक 28.02.2009 के संदर्भ पर दिया गया था और प्रश्न यह था कि क्या संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के प्रावधानों

द्वारा शासित मकान मालिक–किरायेदार विवाद मध्यस्थता योग्य थे या नहीं। उक्त मुद्दे के अलावा, दूसरी पहेली यह थी कि कौन फैसला करेगा। संदर्भ स्तर पर न्यायालय, या मध्यस्थता कार्यवाहियों में मध्यस्थ न्यायाधिकरण। न्यायालय ने संदर्भ स्तर पर अधिकार क्षेत्र के दायरे और परिधि के प्रश्न पर भी विचार करना उचित समझा । अपने निर्णय के दौरान उन्होंने विद्या द्रोलिया (उपरोक्त) के पैराग्राफ 146 और 147, 147.1 में निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:

> "146. अब हम इस प्रश्न की जांच करने के लिए आगे बढ़ते हैं कि क्या धारा 11 में "अस्तित्व" शब्द केवल संविदा गठन (क्या कोई मध्यस्थता करार है) को संदर्भित करता है और प्रवर्तन (वैधता) के प्रश्न को बाहर करता है और इसलिए पश्चातवर्ती निर्देश स्तर पर न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर आता है। न्यायशास्त्र और पाठ्यवाद पर मध्यस्थता करार के अस्तित्व और मध्यस्थता करार की वैधता के बीच अंतर करना संभव है। इस तरह की व्याख्या "अस्तित्व" शब्द के स्पष्ट अर्थ से समर्थन प्राप्त कर सकती है। हालाँकि , न्यायशास्त्र और प्रासंगिकता पर यह मानना भी समान रूप से संभव है कि किसी करार का कोई अस्तित्व नहीं है यदि वह प्रर्वतनीय नहीं है और बाध्यकारी नहीं है। एक मध्यस्थता करार का अस्तित्व एक वैध करार का अनुमान लगाता है जिसे न्यायालय द्वारा पक्षकारों को मध्यस्थता के लिए खारिज करके लागू किया जाएगा। विधिक और स्पष्ट अर्थ वाली व्याख्या परिभाषा खंड सहित प्रासंगिक पृष्ठभूमि के विपरीत होगी और इसके परिणामस्वरूप अप्रिय परिणाम होंगे। "अस्तित्व" की एक उचित और न्यायसंगत व्याख्या के लिए संदर्भ, उद्देश्य और एक बाध्यकारी और प्रर्वतनीय मध्यस्थता करार के लिए लागू प्रासंगिक कानूनी मानदंडों को समझना आवश्यक है। लिखित रूप में प्रमाणित एक करार का तब तक कोई अर्थ नहीं है जब तक कि पक्षों को शर्तों का पालन करने और उनका पालन करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता। एक पक्ष एक लागू न किए जा सकने वाले दस्तावेज़ के आधार पर मुकदमा नहीं कर सकता और अधिकारों का दावा नहीं कर सकता। इस प्रकार, यह मानने के अच्छे कारण हैं कि एक मध्यस्थता करार तभी मौजूद होता है जब यह वैध और कानूनी होता है। एक शून्य और लागू न किए जा सकने वाला करार, कोई संविदा नहीं है। मध्यस्थता संविदा के अस्तित्व का मतलब एक मध्यस्थता संविदा है जो मध्यस्थता अधिनियम और संविदा अधिनियम दोनों की वैधानिक आवश्यकताओं को पूरा करता है और संतुष्ट करता है जब विधि में प्रर्वतनीय होता है ।

147. हम विस्तार से आगे बढ़ेंगे और आगे के कारण देंगेः

147.1.गरवारे वॉल रोप्स लिमिटेड में [गरवारे वॉल रोप्स लिमिटेड बनाम.तटीय समुद्री निर्माण और इंजीनियरिंग लिमिटेड, (2019) 9 एससीसी 209:(2019) 4 एस. सी. सी. (सिविल.) 324], इस न्यायालय ने एक मध्यस्थता खंड के साथ एक अंतर्निहित संविदा में स्टाम्प शुल्क के प्रश्न की जांच की थी और इस संदर्भ में मध्यस्थता अधिनियम की धारा 7 (2) के पहले और दूसरे भाग के बीच अंतर किया था, यद्यपि मध्यस्थता करार के "अस्तित्व" और "वैधता" के संदर्भ में ऊपर की गई और उद्धृत टिप्पणियाँ उपयुक्त और अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, हम इसके पैरा 29 को पुनः प्रस्तुत करके इसे दोहराएंगेः(एस.सी.सी. पेज 238)

"29. हुंडई इंजीनियरिंग मामले में यह निर्णय [यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम हुंडई इंजीनियरिंग एंड कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड, (2018) 17 एससीसी 607: (2019) 2 एससीसी (सिविल) 530] महत्वपूर्ण है क्योंकि विशेष रूप से विचाराधीन एक मध्यस्थता खंड था जो केवल तभी सक्रिय होगा जब कोई बीमाकर्ता दायित्व स्वीकार करता है। तथ्यों के आधार पर यह पाया गया कि बीमाकर्ता ने दावे को अस्वीकार कर दिया, हालांकि एक मध्यस्थता खंड "मौजूद" था, इसलिए पॉलिसी में, यह विधि में मौजूद नहीं होगा, जैसा कि उस फैसले में माना गया था, जब एक महत्वपूर्ण तथ्य पेश किया जाता है, अर्थात्, बीमाकर्ता ने दायित्व को स्वीकार या स्वीकार नहीं किया है। इसी तरह, वर्तमान मामले के तथ्यों में, यह स्पष्ट है कि उप–संविदा में निहित मध्यस्थता खंड तब तक कानूनी मामले के रूप में "मौजूद" नहीं होगा जब तक कि उप –संविदा पर विधिवत स्टाम्प नहीं लग जाती, जैसा कि हम ऊपर मान चुके हैं। यह तर्क कि धारा 11(6–ए) "अस्तित्व" से संबंधित है, जबकि धारा 8, धारा 16 और धारा 45, जो मध्यस्थता करार की "वैधता" से संबंधित हैं, इसका उत्तर इस न्यायालय द्वारा हुंडई इंजीनियरिंग मामले [यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम हुंडई इंजीनियरिंग एंड कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड, (2018) 17 एससीसी 607: (2019) 2 एससीसी (सिविल) 530] में "अस्तित्व" अभिव्यक्ति की समझ से मिलता है, जैसा कि हमारे द्वारा अनुसरण किया गया है।"

अस्तित्व और वैधता आपस में जुड़े हुए हैं, और मध्यस्थता करार मौजूद नहीं है यदि यह अवैध है या अनिवार्य विधिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता है। शून्य संविदा कोई संविदा नहीं है।"

37. इसके बाद एन. एन. ग्लोबल (ऊपर) में न्यायालय ने उपरोक्त पैराग्राफ में लिए गए दृष्टिकोण की शुद्धता पर संदेह किया और गरवारे (ऊपर) में पैराग्राफ–22 और 29 में दिए गए निष्कर्षों का उल्लेख किया। जिसकी पुष्टि विद्या द्रोलिया (उपरोक्त) के पैराग्राफ–146 और 147 में की गई है। हम देख सकते हैं कि विद्या द्रोलिया (उपरोक्त) के पैराग्राफ–147 में पैराग्राफ–146 में कही गई बातों के संबंध में कारण बताए गए हैं। पैराग्राफ–147 के बाद पैराग्राफ–147.1 से 147.11 आते हैं। हालाँकि, जाहिर तौर पर, एन.एन. ग्लोबल (उपरोक्त) में न्यायालय ने जिस बात पर संदेह किया, वह पैराग्राफ–146 और 147 प्रतीत होता है, जिसे हम इस मामले के संदर्भ में समझते हैं, जिसे पैराग्राफ–147.1 तक सीमित रखा जाना चाहिए।

38. हम अधिनियम के सर्वेक्षण को उस हद तक फिर से शुरू कर सकते हैं जब तक यह प्रासंगिक हो। धारा 16 कॉम्पेटेंज़–कॉम्पेटेंज़ (सक्षमता–समक्षता) के सिद्धांत को स्थापित करती है। वह इस प्रकार हैः

> "16. माध्यस्थम न्यायाधिकरण की अपनी अधिकारिता पर निर्णय लेने की क्षमता.—
>
> (1) मध्यस्थ न्यायाधिकरण मध्यस्थता संविदा के अस्तित्व या वैधता के संबंध में किसी भी आपत्ति पर निर्णय सहित अपनी अधिकारिता पर निर्णय दे सकता है, और उस उद्देश्य के लिए, –
>
> (ए) एक मध्यस्थता खंड जो एक संविदा का हिस्सा है, उसे संविदा की अन्य शर्तों से स्वतंत्र करार के रूप में माना जाएगा; और
>
> (ख) मध्यस्थता न्यायाधिकरण का यह निर्णय कि संविदा शून्य है, न्यायिक रूप से मध्यस्थता खंड की अयोग्यता को लागू नहीं करेगा।
>
> (2) यह तर्क कि मध्यस्थ न्यायाधिकरण के पास क्षेत्राधिकार नहीं है, प्रतिरक्षा कथन प्रस्तुत किए जाने के बाद नहीं उठाई जाएगी; तथापि, किसी पक्ष को ऐसा तर्क उठाने से केवल इसलिए नहीं रोका जाएगा कि उसने मध्यस्थ की नियुक्ति की है, या उसकी नियुक्ति में भाग लिया है।
>
> (3) यह तर्क कि मध्यस्थ न्यायाधिकरण अपने प्राधिकार के दायरे से बाहर जा रहा है, मध्यस्थता कार्यवाही के दौरान उसके द्वारा कथित रूप से उसके प्राधिकार के दायरे से बाहर जाने वाला मामला उठाए जाने पर तुरंत उठाई जाएगी।

(4) मध्यस्थ न्यायाधिकरण उपधारा (2) या उपधारा (3) में निर्दिष्ट किसी भी मामले में, बाद में की गई दलील को स्वीकार कर सकेगा यदि वह विलंब को उचित समझता है।

(5) मध्यस्थ न्यायाधिकरण उपधारा (2) या उपधारा (3) में निर्दिष्ट दलील पर निर्णय लेगा और जहां मध्यस्थ न्यायाधिकरण दलील को खारिज करने का निर्णय लेता है, वहां मध्यस्थ कार्यवाही जारी रखेगा और मध्यस्थ आवार्ड देगा।

(6) ऐसे मध्यस्थता आवार्ड से व्यथित कोई पक्ष धारा 34 के अनुसार ऐसे मध्यस्थता आवार्ड को रद्द करने के लिए आवेदन कर सकता है।"

एच. <u>स्टाम्प अधिनियम की योजना</u>

39. धारा 2 (6) 'प्रभार्य' शब्द को निम्नानुसार परिभाषित करती हैः

"2(6) "प्रभार्य" — "प्रभार्य का अर्थ है, जैसा कि इस अधिनियम के प्रारंभ के बाद निष्पादित या पहली वर्जन निष्पादित किसी लिखत पर लागू होता है, जो इस अधिनियम के तहत प्रभार्य है, और जैसा कि किसी अन्य लिखत पर लागू होता है, जो भारत में लागू विधि के तहत प्रभार्य है जब ऐसा लिखत निष्पादित किया गया था या जहां कई व्यक्तियों ने अलग–अलग समय पर लिखत को निष्पादित किया था, पहली वर्जन निष्पादित किया गया थाः"

40. धारा 2 (11) 'विधिवत मुद्रांकित' शब्दों को निम्नानुसार परिभाषित करती हैः

"2(11) "विधिवत मुद्रांकित" — विधिवत मुद्रांकित, जैसा कि किसी लिखित पर लागू किया जाता है, इसका अर्थ है कि लिखत पर उचित राशि से कम की चिपकने वाली या छापी हुई स्टाम्प नहीं है और इस तरह की स्टाम्प को भारत में उस समय के लिए लागू विधि के अनुसार चिपकाया या उपयोग किया गया हैः"

41. धारा 2 (12) लिखतों के संदर्भ में 'निष्पादित' शब्द को परिभाषित करती है जिसका अर्थ है 'हस्ताक्षरित'।

42. धारा 2 (14) 'लिखत' शब्द को इस प्रकार परिभाषित करती है, 'इसमें प्रत्येक दस्तावेज शामिल है, जिसके द्वारा कोई अधिकार या दायित्व बनाया, हस्तांतरित, सीमित, विस्तारित, समाप्त या दर्ज किया जाता है या किया जाना अभिप्रेत है'।

43. धारा 3 में उन लिखतों के बारे में बताया गया है जो शुल्क के अधीन हैं, जो अनुसूची 1 में निहित छूट के माध्यम से प्रदान की गई हैं।

44. धारा 4 में ऐसी स्थिति पर विचार किया गया है, जहां एक से अधिक लिखत हैं।

45. अन्य प्रावधान भी हैं, जो अन्य हस्तांतरण से संबंधित हैं। धारा 17 लिखतों पर स्टाम्प लगाने के समय से संबंधित है। धारा 17 भारत में निष्पादित लिखतों के लिए प्रावधान करती है। यह घोषित करती है कि ऐसे लिखत, जिन पर शुल्क लगाया जा सकता है, निष्पादन से पहले या निष्पादन के समय स्टाम्प लगाए जाएंगे। धारा 31 उचित स्टाम्प के बारे में निर्णय से संबंधित है। निर्णय कलेक्टर द्वारा किया जाना है। अध्याय IV में धारा 33 शामिल है और अध्याय का शीर्षक है 'विधिवत स्टाम्प न किए गए लिखत'। स्टाम्प अधिनियम में, धारा 33 इस प्रकार है:

"33. लिखतों की परीक्षा और परिबद्ध किया जाना—

(1) हर व्यक्ति, जो विधि द्वारा या पक्षकारों की सम्मति से साक्ष्य लेने का प्राधिकार रखता है, और पुलिस अधिकारी के अलावा लोक कार्यालय का भारसाधक हर व्यक्ति जिसके समक्ष उसकी राय में शुल्क से प्रभार्य कोई लिखत उसके कृत्यों के पालन में पेश की जाती है या आ जाती है, उस दशा में उसे परिबद्ध करेगा जिसमें कि यह प्रतीत होता है कि ऐसी लिखत सम्यक् रूप से स्टाम्पित नहीं है।

(2) उस प्रयोजन के लिए ऐसा हर व्यक्ति ऐसे प्रभार्य और अपने समक्ष पेश की गई या आई हर लिखत की जांच यह अभिनिश्चित करने के लिए करेगा कि जब ऐसी लिखत निष्पादित की गई या प्रथम वर्जन निष्पादित की गई थी, तब क्या वह ' [भारत] में प्रवृत्त विधि द्वारा अपेक्षित मूल्य और विवरण की स्टाम्प से स्टाम्पित थीः

परन्तु–

(क) इसमें अन्तर्विष्ट कोई भी बात, किसी मजिस्ट्रेट या दाण्डिक न्यायालय के न्यायाधीश से यह अपेक्षा करने वाली नहीं समझी जाएगी कि वह दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) के अध्याय 12 या अध्याय 36 के अधीन की कार्यवाही से भिन्न किसी कार्यवाही के अनुक्रम में अपने समक्ष आने वाली किसी लिखत की परीक्षा करे या उसे परिबद्ध करे, यदि वह ऐसा करना ठीक नहीं समझताः

(ख) उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की दशा में, इस धारा के अधीन किसी लिखत की परीक्षा करने और परिबद्ध करने का कर्तव्य ऐसे अधिकारी को प्रत्यायोजित किया जा सकेगा जिसे वह न्यायालय इस निमित्त नियुक्त करे।

(3) शंका की दशा में इस धारा के प्रयोजनों के लिए–

(क) राज्य सरकार यह अवधारित कर सकेगी कि किन कार्यालयों को लोक कार्यालय समझा जाएगाः और

(ख) राज्य सरकार यह अवधारित कर सकेगी कि किन व्यक्तियों को लोक कार्यालयों का भारसाधक समझा जाएगा।

46. इसके बाद, हमें धारा 35 पर ध्यान देना चाहिए, जो इस प्रकार हैः"

35. सम्यक् रूप से स्टाम्पित न की गई लिखतें साक्ष्य, आदि में अग्राह्य हैं– शुल्क से प्रभार्य कोई भी लिखत जब तक कि ऐसी लिखत सम्यक् रूप से स्टाम्पित नहीं है किसी व्यक्ति द्वारा, जो विधि द्वारा या पक्षकारों की सम्मति से साक्ष्य लेने के लिए प्राधिकार रखता है, किसी भी प्रयोजन के लिए साक्ष्य में ग्राह्य नहीं होगी अथवा ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा या किसी लोक अधिकारी द्वारा उस पर कार्यवाही नहीं की जाएगी या वह रजिस्ट्रीकृत या अधिप्रमाणीकृत नहीं की जाएगीः

परन्तु–

(क) कोई ऐसी लिखत, ऐसे मुल्क के जिससे वह प्रभार्य है, अथवा उस लिखत की दशा में, जो अपर्याप्त रूप से स्टाम्पित है, ऐसे शुल्क को पूरा करने के लिए अपेक्षित रकम और साथ–साथ पांच रुपए की शास्ति अथवा जब उसके उचित शुल्क या कमी वाले भाग के दस गुनी रकम, पांच रुपए से अधिक हो तब ऐसे शुल्क या भाग के दस गुने के बराबर राशि, दे दिए जाने पर साक्ष्य में ग्राह्य होगी;

(ख) जहां कि किसी व्यक्ति ने, जिससे स्टाम्पित रसीद मांगी जा सकती थी, अस्टाम्पित रसीद दी है और यदि ऐसी रसीद स्टाम्पित होती तो उसके विरुद्ध साक्ष्य में ग्राह्य होती, वहां ऐसी रसीद उसे निविदत्त करने वाले व्यक्ति द्वारा एक रुपए की शास्ति दे दिए जाने पर उसके विरुद्ध, साक्ष्य में ग्राह्य होगी;

(ग) जहां कि किसी प्रकार की कोई संविदा या करार दो या अधिक पत्रों से मिलकर बने पत्र–व्यवहार द्वारा प्रभावी होता है और पत्रों में से किसी एक पर उचित स्टाम्प लगा है वहां उस संविदा या करार की बाबत यह समझा जाएगा कि वह सम्यक् रूप से स्टाम्पित है;

(घ) इसमें अन्तर्विष्ट कोई भी बात दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) के अध्याय 12 या अध्याय 36 के अधीन की कार्यवाही से भिन्न दांडिक न्यायालय की

किसी कार्यवाही में, किसी लिखत को साक्ष्य में ग्रहण किए जाने से निवारित नहीं करेगी;

(ङ) इसमें अन्तर्विष्ट कोई भी बात, किसी न्यायालय में किसी लिखत को ग्रहण किए जाने से तब निवारित नहीं करेगी, जब कि ऐसी लिखत सरकार द्वारा या उसकी ओर से निष्पादित की गई है या उस पर इस अधिनियम की धारा 32 या इसके किसी अन्य उपबन्ध द्वारा यथा उपबन्धित कलक्टर का प्रमाणपत्र लगा हुआ है।

47. समान रूप से, हमें धारा 36 को ध्यान में रखना चाहिए। यह निम्नलिखित प्रावधान है:

> 36. लिखत का ग्रहण कहां प्रश्नगत नहीं किया जाएगा – जहां कि कोई लिखत साध्य में गृहीत की गई है, वहां धारा 61 में यथा उपबन्धित के सिवाय ऐसा ग्रहण, इस आधार पर कि लिखत सम्यक् रूप से स्टाम्पित नहीं की गई है, उसी वाद या प्रक्रिया के किसी भी प्रक्रम में प्रश्नगत नहीं किया जाएगा।

48. धारा 38 इस बात से संबंधित है कि परिबद्ध किए गए लिखतों कैसे निपटाई जाना चाहिए। वह इस प्रकार हैः

> 38. परिबद्ध की गई लिखतें कैसे निपटाई जाएंगी (1) जहां कि धारा 33 के अधीन किसी लिखत को परिबद्ध करने वाले व्यक्ति को विधि द्वारा या पक्षकारों की सम्मति से साक्ष्य लेने का प्राधिकार है और ऐसी लिखत को वह धारा 35 द्वारा यथा उपबन्धित किसी शास्ति के या धारा 37 द्वारा यथा उपपन्धित किसी शुल्क के दिए जाने पर साक्ष्य में ग्रहण कर लेता है, वहां वह ऐसी लिखत की अधिप्रमाणीकृत एक प्रति और साथ–साथ उसकी बाबत उद्गृहीत शुल्क और शास्ति की रकम का कथन करते हुए एक लिखत प्रमाणपत्र कलेक्टर को भेजेगा और ऐसी रकम कलेक्टर को या ऐसे व्यक्ति को, जिसे वह इस निमित्त नियुक्त करे, भेजेगा।

49. धारा 42 प्रासंगिक है और यह इस प्रकार हैः–

> 42. उन लिखतों को पृष्ठांकित करना जिन पर धारा 35, 40 या 41 के अधीन शुल्क दिया जा चुका है (1) जब कि किसी लिखत की बाबत उग्रहणीय शुल्क और शास्ति (यदि कोई हो), धारा 35, धारा 40 या धारा 41 के अधीन दी जा चुकी है, तब, यथास्थिति, ऐसी लिखत को साक्ष्य में ग्रहण करने वाला व्यक्ति या कलक्टर उस पर पृष्ठांकन द्वारा, यह बात कि ऐसी लिखत की बाबत,

यथास्थिति, उचित शुल्क या उचित शुल्क और शास्ति उद्गृहीत की जा चुकी है (प्रत्येक की रकम वर्णित करते हुए) और उस व्यक्ति का, जिसने वह दी है नाम और निवास स्थान प्रमाणित करेगा।

(2) इस प्रकार पृष्ठांकित हर एक लिखत तब साक्ष्य में ग्राह्य होगी और ऐसे रजिस्ट्रीकृत की जा सकेगी और उस पर ऐसे कार्यवाही की जा सकेगी और वह ऐसे अधिप्रमाणित की जा सकेगी मानो वह सम्यक् रूप से स्टाम्पित थी और इस निमित्त आवेदन किए जाने पर ऐसे व्यक्ति को, जिसके कब्जे में से वह परिबद्ध करने वाले अधिकारी के पास पहुंची थी या जिसे वह व्यक्ति निदिष्ट करे, परिदत्त की जाएगीः

परन्तु–

(क) कोई भी ऐसी लिखत, जो धारा 35 के अधीन शुल्क और शास्ति दे दिए जाने पर साक्ष्य में ग्रहण कर ली गई है, ऐसे परिबद्ध करने की तारीख के एक मास का अवसान होने के पूर्व या उस दशा में जिसमें कि कलेक्टर ने यह प्रमाणित कर दिया है कि उसको और भी रोक रखना आवश्यक है और ऐसे प्रमाणपत्र को रद्द नहीं किया है, इस प्रकार परिदत्त नहीं की जाएगी;

(ख) इस धारा की कोई भी बात खण्ड 3 पर प्रभाव नहीं डालेगी।

50. धारा 62(1)(बी) शस्ति के साथ दंडनीय बनाती है, जो किसी व्यक्ति के लिए एक गवाह के रूप में, कर्तव्य के साथ प्रभार्य किसी भी लिखत को निष्पादित करने या हस्ताक्षर करने के अलावा अन्यथा हस्ताक्षर करने के लिए दंडनीय किया जा सकता है जो 500/– रूपये तक हो सकता है, बिना उसी पर विधिंवत स्टाम्प लगाए।इस परतुक में कोई संदेह नहीं है कि यदि धारा 35,40 या 61 के तहत कोई शास्ति दिया गया है, तो उसे कम कर दिया जाएगा।

आई. हिंदुस्तान स्टील लिमिटेड का विश्लेषण

51. हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड बनाम दिलीप कंस्ट्रक्शन कंपनी[3] में यह न्यायालय, निम्नलिखित तथ्यों पर विचार कर रहा थाः

भारतीय मध्यस्थता अधिनियम, 1940 के तहत एक पंचाट द्वारा एक निर्णय दिया गया था, जिसे न्यायालय में दाखिल किया गया था। अपीलकर्ता ने अन्य बातों के साथ–साथ यह तर्क देते हुए निर्णय को रद्द करने के लिए आवेदन किया

3 (1969) 1 SCC 597

कि यह अस्टाम्पित था। इसने तर्क दिया कि इस कारण यह शून्य, अवैध है और इसे रद्द किया जाना चाहिए। इसके बाद प्रतिवादी ने जिला न्यायालय में आवेदन किया कि पंचाट को परिबद्ध कर लिया जाए और स्टांप शुल्क तथा शास्ति लगाकर वैध बनाया जाए। पंचाट को परिबद्ध कर लिया गया और शुल्क तथा शास्ति लगाया गया, जिसका विधिवत भुगतान किया गया और उसे प्रमाणित किया गया। अपीलकर्ता का तर्क यह था कि न केवल अस्टाम्पित पंचाट को साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जा सकता, बल्कि इस पर कार्रवाई भी नहीं की जा सकती, क्योंकि विधि की नजर में इस लिखता का कोई अस्तित्व नहीं है। इसके बाद न्यायालय ने अन्य बातों के साथ–साथ यह अभिनिधारित किया:

> "5. एक लिखत जिस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगा है, उसे किसी भी व्यक्ति द्वारा साक्ष्य में प्राप्त नहीं किया जा सकता है जिसके पास साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार है, और उस व्यक्ति या किसी भी लोक अधिकारी द्वारा उस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है। धारा 35 में यह प्रावधान है कि साक्ष्य में एक वर्जन स्वीकार किए गए किसी दस्तावेज की स्वीकार्यता पर, धारा 61 में दिए गए प्रावधान के अलावा, उसी मुकदमे या कार्यवाही के किसी भी चरण में इस आधार पर सवाल नहीं उठाया जाएगा कि दस्तावेज पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई गई है।
>
> 6. धारा 35 और 36 के बीच शब्दावली में अंतर पर भरोसा करते हुए यह तर्क दिया गया कि जिस लिखत पर विधिवत स्टाम्प् नहीं लगा है, उसे शुल्क और शस्ति के भुगतान पर साक्ष्य में स्वीकार किया जा सकता है, लेकिन उस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती क्योंकि धारा 35 विधिवत स्टाम्प नहीं लगे लिखत को साक्ष्य में स्वीकार करने और उस पर कार्रवाई करने पर रोक लगाती है और विधानमंडल ने धारा 36 में निर्धारित शर्तों के तहत केवल लिखत को साक्ष्य में स्वीकार करने पर रोक हटाई है। यह तर्क धारा 36 के वास्तविक अर्थ को अनदेखा करता है। उस धारा के अनुसार साक्ष्य में स्वीकार किए गए लिखत को उसी मुकदमे या कार्यवाही के किसी भी चरण में इस आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा कि उस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगा है। धारा 36 किसी ऐसे दस्तावेज के विरुद्ध चुनौती देने पर रोक नहीं लगाती है कि उस पर कार्रवाई नहीं की जाएगी क्योंकि उस पर विधिवत स्टांप नहीं लगा है, लेकिन इस आधार पर अधिनियम द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार

स्टांप शुल्क और शास्ति अदा करने के बाद विधिवत स्टांप नहीं लगे दस्तावेज पर कार्रवाई करने पर कोई रोक नहीं है। यदि कोई संदेह है, तो धारा 42(2) के नियमों द्वारा उसे दूर कर दिया जाता है, जो स्पष्ट रूप से यह अधिनियमित करता है कि धारा 42(1) के तहत कलेक्टर द्वारा पृष्ठांकित प्रत्येक दस्तावेज साक्ष्य में स्वीकार्य होगा और उस पर कार्रवाई की जा सकती है जैसे कि उस पर विधिवत स्टांप लगा हो।"

हम लाभप्रद रूप से पैराग्राफ–8 का भी संदर्भ ले सकते हैं:"

8. हमारा ध्यान एम.सी. देसाई, जे. द्वारा एम.एस.टी. बिट्टन बीबी बनाम कुंटू लाल [आई.एल.आर. (1952) 2 इला. 984] में दिए गए विधि के कथन की ओर आकर्षित किया गया:

> "एक न्यायालय को साक्ष्य में एक दस्तावेज को स्वीकार करने से प्रतिबंधित किया गया है और एक न्यायालय और एक लोक अधिकारी दोनों को उस पर कार्रवाई करने से प्रतिबंधित किया गया है। इस प्रकार एक न्यायालय को इसे साक्ष्य में स्वीकार करने और उस पर कार्रवाई करने दोनों से प्रतिबंधित किया गया है। इस का अर्थ है कि उस पर कार्रवाई करना स्वीकृति में शामिल नहीं है और एक दस्तावेज़ को साक्ष्य में स्वीकार किया जा सकता है लेकिन उस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है। बेशक इसे स्वीकार किए बिना इस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती, लेकिन इसे स्वीकार किया जा सकता है और फिर भी इस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है। यदि प्रत्येक दस्तावेज, स्वीकार किए जाने पर, स्वतः ही कार्रवाई के लिए उत्तरदायी हो जाता है, तो धारा 35 में यह प्रावधान कि शुल्क के साथ प्रभार्य लेकिन विधिवत स्टाम्प नहीं लगाया गया कोई दस्तावेज, न्यायालय द्वारा कार्रवाई नहीं की जाएगी, इस प्रावधान द्वारा निरर्थक हो जाएगा कि इसे किसी भी उद्देश्य के लिए साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जाएगा। किसी लिखत पर कार्रवाई करने का अर्थ है उसे प्रभावी बनाना या उसे लागू करना।"
>
> "हमारे निर्णय में, विद्वान न्यायाधीश ने धारा 36 को एक ऐसा अर्थ दिया जिसका विधायिका का आशय नहीं था। विद्वान न्यायाधीश का ध्यान स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 42(2)

की ओर आकर्षित नहीं किया गया था, जो स्पष्ट रूप से एक लिखत प्रस्तुत करता है, जब पृष्ठांकन द्वारा प्रमाणित किया जाता है कि उसके संबंध में उचित शुल्क और शास्ति लगाया गया है, जिस पर कार्रवाई करने में सक्षम है जैसे कि उस पर विधिवत स्टाम्प लगाई गई थी।"

52. हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकालते हैं कि हिंदुस्तान स्टील (उपरोक्त) में तीन विद्वान न्यायाधीशों की पीठ द्वारा क्या अभिनिर्धारित किया गया हैः

i. मुद्रांक अधिनियम एक राजकोषीय उपाय है जिसका उद्देश्य राजस्व बढ़ाना है।

ii. अधिनियम के कड़े प्रावधान राजस्व के हितों की रक्षा के लिए हैं।

iii. इसका उद्देश्य किसी वादी द्वारा प्रतिद्वंद्वी के मामले को विफल करने के लिए हथियार के रूप में इसका उपयोग करना नहीं है;

iv. स्टाम्प अधिनियम की धारा 42(2) के तहत पृष्ठांकित किए जाने पर दस्तावेज साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य होगा और उस पर कार्रवाई की जा सकेगी।

हम केवल यह देख सकते हैं कि न्यायालय ने स्टाम्प अधिनियम की धारा 17 पर विचार नहीं है, जो उस सटीक समय का प्रावधान करता है, जिस पर लिखत पर स्टाम्प लगाई जानी है। इसी तरह, न्यायालय ने यह ध्यान में नहीं रखा कि स्टाम्प अधिनियम की धारा 62, अन्य बातों के साथ–साथ धारा 17 के उल्लंघन को दंडित करती है। इसके अलावा, न्यायालय एक दस्तावेज को परिबद्ध करने के बाद उस पर विचार कर रहा था, और भुगतान जो धारा 42(2) के तहत पृष्ठांकित किए गए थे।

यह सच है कि अमुद्रांकित लिखत स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के तहत अनिवार्य रूप से परिबद्ध किया जा सकता है। इसके बाद पालन की जाने वाली प्रक्रिया भी अधिनियम में प्रदान की गई है। प्रक्रिया का पालन करने और शुल्क और शास्ति का भुगतान करने के बाद, लिखत को धारा 42(2) के तहत पृष्ठांकन के साथ देखा जाएगा। इसके बाद, यह प्रवर्तन करने योग्य हो जाता है और इस पर कार्रवाई की जा सकती है, जैसा कि *हिंदुस्तान स्टील* (ऊपर) में माना गया है।

जे. भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 – एक सर्वेक्षण ; गरवारे, विद्या ड्रॉलिया और एन. एन. ग्लोबल का विश्लेषण

53. संविदा अधिनियम की धारा 2 (जी) में प्रावधान है कि एक करार, जो विधि द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है, को शून्य कहा जाता है, जबकि धारा 2 (एच) घोषणा करती है कि विधि द्वारा प्रवर्तनीय करार एक संविदा है। उसी अधिनियम की धारा 2 (जे) में प्रावधान है कि एक संविदा, जो विधि द्वारा प्रवर्तनीय नहीं रह जाता है, शून्य हो जाता है, जब वह प्रवर्तनीय नहीं रह जाती है। हम एक वर्जन में एक करार और एक संविदा के बीच के अंतर को देख सकते हैं।हर करार एक संविदा नहीं है। केवल वे करार, जो प्रर्वतनीय हैं, संविदा के रूप में माने जाते हैं। एक संविदा का परिणाम, प्रवर्तनीय होना बंद हो जाता है, अर्थात संविदा शून्य हो जाता है। आगे, हम धारा 10 पर ध्यान दे सकते हैं। वह इस प्रकार हैः

"कौन से करार संविदा हैं? – सब करार संविदाएँ यदि वे संविदा करने के लिए सक्षम पक्षकार की स्वातंत्र सम्मित से किसी विधिपूर्ण प्रतिफल के लिए और किसी विधिपूर्ण उद्देश्य से किए गए है और तद् द्वारा अभिव्यक्त रुप से शून्य घोषित नहीं किए गये है ।

इसमें अन्तर्विष्ट कोई भी बात भारत में प्रवृत और तद्द्वारा अभिव्यक्तः निरसित न की गई किसी ऐसी विधि पर, जिसक के द्वारा किसी संविदा का लिखित रुप में या साक्षियों की उपस्थिति में किया जाना अपेक्षित हो, या किसी ऐसी विधि पर जो दस्तावेजों के रजिस्ट्रीकरण से संबंधित हो, प्रभाव न डालेगी । "

धारा 10, को जब भागों में विभाजित किया जावे तो, प्रथम भाग में यह शामिल हैंः'करार पार्टियों की स्वतंत्र सहमति से किया जाना चाहिए'

54. धारा 14 'स्वतंत्र सहमति' को परिभाषित करती है जो निम्नानुसार हैः

"14. "स्वतंत्र सम्मति" की परिभाषा सम्मति स्वतन्त्र तब कही जाती है जब कि वह–

(1) न तो धारा 15 में यथापरिभाषित प्रपीड़न द्वारा कारित हो;

(2) न धारा 16 में यथापरिभाषित असम्यक् असर द्वारा कारित हो;

(3) न धारा 17 में यथापरिभाषित कपट द्वारा कारित हो;

(4) न धारा 18 में यथापरिभाषित दुर्व्यपदेशन द्वारा कारित हो;

(5) न भूल द्वारा कारित हो, किन्तु यह बात धाराओं 20, 21 और 22 के उपबंधों के अध्यधीन है।

सम्मति ऐसे कारित तब कही जाती है जब कि वह ऐसा प्रपीड़न, असम्यक् असर, कपट, दुर्व्यपदेशन या भूल न होती, तो न दी जाती।"

55. धारा 10 का अगला भाग व्यक्त करता है 'संविदा करने के लिए सक्षम पक्षकार'।संविदा अधिनियम की धारा 11 घोषणा करती है कि प्रत्येक व्यक्ति उस विधि के अनुसार संविदा करने के लिए सक्षम है, जिसके अधीन वह है, और जो स्वस्थचित्त का है और किसी भी विधि द्वारा संविदा करने के लिए अयोग्य नहीं है जिसके अधीन वह है। चूँकि धारा 11 में व्यक्ति के संविदा करने के लिए सक्षम होने के लिए मष्तिस्क की स्वस्थचित्ता की आवश्यकता होती है, इसलिए धारा 12 में स्पष्ट किया गया है कि संविदा अधिनियम के उद्देश्य के लिए स्वस्थचित्त क्या है। धारा 10 का अगला भाग यह है कि 'एक वैध प्रतिफल और एक वैध उद्देश्य' होना चाहिए। और इस पर धारा 23 में चर्चा की गई है। वह इस प्रकार हैः

"23. कौन से प्रतिफल और उद्देश्य विधिपूर्ण हैं और कौन से नहीं करार का प्रतिफल या उद्देश्य विधिपूर्ण है, सिवाय जब कि–

वह विधि द्वारा निषिद्ध हो; अथवा

वह ऐसी प्रकृति का हो कि यदि वह अनुज्ञात किया जाए तो वह किसी विधि के उपबंधों को विफल कर देगा; अथवा

वह कपटपूर्ण हो; अथवा

उसमें किसी अन्य के शरीर या सम्पत्ति को क्षति अन्तर्वलित या विवक्षित हो; अथवा

न्यायालय उसे अनैतिक या लोकनीति के विरुद्ध माने ।

इन दशाओं में से हर एक में करार का प्रतिफल या उद्देश्य विधिविरुद्ध कहलाता है। हर एक करार, जिसका उद्देश्य या प्रतिफल विधिविरुद्ध हो, शून्य है।

56. धारा 10 के पहले अंग के अंतिम भाग में यह प्रावधान है कि सभी करार संविदा हैं 'जो यहॉ शून्य घोषित नहीं किया गया है'। अध्याय 2 के शेष प्रावधान धारा 24 से 30 तक हैं, जो उन करारों से संबंधित हैं, जिन्हें धारा 10 के तहत् शून्य घोषित किया गया है। यह धारा 20 के अलावा है जैसा कि हम बाद में विचार करेगें। साथ ही धारा 10 के दूसरे भाग में यह प्रावधान है कि संविदा को विधिपूर्ण बनाने के लिए अभी भी आकस्मिक आवश्यकताओं को पूरा करना पड़ सकता है।

57. इसके अलावा, हम पहले ही विचार कर चुके हैं कि धारा 10 के तहत एक करार को संविदा बनाने के लिए स्वतंत्र सहमति अनिवार्य है। धारा 14 में स्वतंत्र सहमति को परिभाषित किया गया है और इसे धारा 15 से 18 के संयोजन में पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि धारा 15 से 18 क्रमशः प्रपीडन, असम्यक् असर, कपट और दुव्यर्पदेशन को परिभाषित करती है। अब, किसी पक्ष की सहमति प्राप्त करने में प्रपीडन, कपट या दुव्यर्पदेशन का परिणाम संविदा अधिनियम की धारा 19 में प्रदान किया गया है। इन तीन तत्वों की उपस्थिति के परिणामस्वरूप पक्ष के विकल्प पर शून्यकरणीय माना जाता है, जिसकी सहमति से ऐसा किया गया था । दुव्यर्पदेशन के प्रभाव को इस न्यायालय ने रिपोर्टेड निर्णय गंगा रिट्रीट एंड टावर्स लिमिटेड बनाम राजस्थान राज्य[4] में इस प्रकार से व्यवहृत किया है:

> "28. संविदा अधिनियम की धारा 19 के अनुसार जब किसी करार के लिए सहमति दुव्यर्पदेशन के कारण की जाती है, तो करार उस पक्ष के विकल्प पर एक शून्यकरणीय संविदा है, जिसकी सहमति उक्त कारण से प्राप्त हुई थी। पश्चात्, यदि वह उचित समझता है, तो इस बात पर बल दे सकता है कि संविदा का पालन किया जाएगा और उसे उस स्थिति में रखा जाएगा जिसमें वह होता यदि किए गए व्यपदेशन सही होते। धारा 2 खंड (i) के अनुसार, एक ऐसा करार जो विधि द्वारा एक या अधिक पक्षों के विकल्प पर लागू किया जा सकता है, लेकिन दूसरे या अन्य के विकल्प पर नहीं, एक शून्यकरणीय संविदा है। हमारे लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम एक स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज करें कि क्या उत्तरदाताओं की ओर से कोई दुर्व्यपदेशन किया गया था या नहीं। यह देखने के लिए पर्याप्त है कि एक शून्यकरणीय संविदा प्रभावित पक्ष को संविदा द्वारा बनाए गए कानूनी संबंधों से बचने या संविदा के साथ खड़े होने और उसके प्रर्वतन पर बल देने के अपने विकल्प का उपयोग करने के लिए चुनाव का अधिकार प्रदान करता है। हालांकि, एक वर्जन प्रयोग किए गए संविदा के साथ खड़े होने के लिए उनके चुनाव का प्रभाव दूसरे पक्ष की ओर से दुर्व्यपदेशन की जानकारी के साथ संविदा के अनुसमर्थन का होगा और यह उससे बचने की उसकी शक्ति को समाप्त कर देगा। प्रभावित पक्ष को प्रदान किए गए अधिकार की प्रकृति में, विधि यह उम्मीद करता है कि वह अपने विकल्प का तुरंत प्रयोग करेगा और इसे विरोधी पक्ष को बताएगा; क्योंकि जब तक बचने के अधिकार का प्रयोग नहीं किया जाता है, तब तक संविदा वैध है, और इसके तहत की गई चीजों को उसके बाद पूर्ववत नहीं किया जा सकता है।

---

4 (2003) 12 एससीसी 91

29. दुर्व्यपदेशन के कारण निरस्तीकरण का अधिकार कई तरीकों से खोया जा सकता है, कुछ चुनाव के अधिकार पर निर्भर करता है। एक प्रतिनिधि सत्य की खोज करने पर निरस्त करने का अपना अधिकार खो देता है यदि एक वर्जन उसने निरस्त नहीं करने का फैसला किया है। लेकिन वह कोई भी चुनाव करने से पहले ही हार सकता है, जहां उसके आचरण या अन्य परिस्थितियों के कारण उसका अधिकार बनाए रखना अन्यायपूर्ण या असमान होगा।उदाहरण के लिए, जहां तीसरे पक्ष ने संविदा के तहत अधिकार हासिल कर लिए हैं; फिर से जहां यह प्रतिनिधि के लिए अन्यायपूर्ण होगा क्योंकि उसे उसकी मूल स्थिति में बहाल करना असंभव है।समाकलन में स्थिरता न केवल विघटन का परिणाम है, बल्कि इसकी संभावना रद्द करने के अधिकार के लिए अपरिहार्य है।एक वर्जन फिर, चुनाव में देरी यह अन्यायपूर्ण बना सकती है कि चुनाव का अधिकार जारी रहना चाहिए।इस कारण से सामान्य रूप से गलत तरीके से प्रस्तुत करने के अधिकार का तुरंत प्रयोग किया जाना चाहिए।(भारतीय संविदा और विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, पोलक और मुल्ला, 11 वां संस्करण, खंड 1 देखें। पृष्ठ. 269–70)"

धारा 19 ए अनुचित प्रभाव से प्राप्त किसी पक्ष की सहमति के कारण कोई स्वतंत्र सहमति नहीं होने से संबंधित है। उक्त दूषित करने वाला कारक भी, एक शून्य करार में नहीं बल्कि एक शून्यकरणीय संविदा में परिणित होता है। धारा 14, 'स्वतंत्र सहमति' को परिभाषित करते हुए, यह प्रावधान करती है कि सहमति को स्वतंत्र कहा जाता है, जब यह गलती से नहीं होती है, तो धारा 20, 21 और 22 के प्रावधानों के अधीन, अन्य चार पहलुओं का उल्लेख करने के बाद, जो स्वतंत्र सहमति से अलग हैं। हम देखते हैं कि धारा 20 क्या प्रावधान करती है। धारा 20 घोषणा करती है कि जहां किसी करार के दोनों पक्ष करार के लिए आवश्यक तथ्य के रूप में गलती कर रहे हैं, तो करार शून्य है। हम देख सकते हैं कि यह फिर से एक करार का मामला है, जिसे धारा 24 से 30 के अलावा धारा 10 के अर्थ के भीतर शून्य घोषित किया गया है। धारा 21 में यह प्रावधान है कि भारत में लागू किसी भी विधि की त्रुटि, संविदा को शून्य नहीं करेगा। इस प्रकार, जबकि धारा 10 एक करार के संविदा बनने के लिए मुख्य तत्व निर्धारित करती है, गैर–अनुरूपता का प्रभाव भिन्न होता है। इसलिए, योग्यता की कमी और स्वस्थ दिमाग की अनुपस्थिति एक 'संविदा' के गठन से पूरी तरह से अलग हो जाती है।हालाँकि, प्रपीडन, अनुचित प्रभाव, दुर्व्यपदेशन और यहाँ तक कि कपट से उत्पन्न स्वतंत्र सहमति की अनुपस्थिति के परिणामस्वरूप एक करार होगा जो एक 'संविदा' है, हालांकि शून्यकरणीय है (संविदा अधिनियम की धारा

19 और 19 ए देखें)। त्रुटि का प्रभाव, धारा 22 में फिर से लिखा गया है, क्योंकि यह प्रावधान करता है कि एक संविदा केवल इसलिए शून्यकरणीय नहीं है क्योंकि एक पक्ष ने संविदा के लिए तथ्य की त्रुटि के कारण सहमति दी है। धारा 37 अध्याय IV के तहत आती है जो अनुबंधों और अनुबंधों के अनुपालन से संबंधित है जिन्हें अनुपालन किया जाना चाहिए। धारा 37 में कहा गया हैः

> "37. संविदाओं के पक्षकारों की बाध्यता– संविदा के पक्षकारों को या तो अपने–अपने वचनों का पालन करना होगा या करने की प्रस्थापना करनी होगी जब तक कि ऐसे पालन से इस अधिनियम के या किसी अन्य विधि के उपबंधों के अधीन अभिमुक्ति या माफी न दे दी गई हो।
>
> वचन, उनके पालन के पूर्व वचनदाताओं की मृत्यु हो जाने की दशा में, ऐसे वचनदाताओं के प्रतिनिधियों को आबद्ध करते हैं, जब तक कि तत्प्रतिकूल आशय संविदा से दर्शित न हो ।"

58. हमने देखा किया है कि धोखाधड़ी, मिथ्या व्यपदेशन या प्रपीडन के मामले में, वह व्यक्ति जिसकी सम्मति उक्त आधार पर ली गई है, वह इस बात का आग्रह कर सकता है कि संविदा का पालन किया जाए और उसे उस स्थिति में रखा जाए, जिसमें वह हो सकता था, अगर व्यपदेशन नहीं किया गया होता। इस संदर्भ में, हम संविदा अधिनियम की धारा 64 पर देख सकते हैंः

> 64. शून्यकरणीय संविदा के विखंडन के परिणाम जबकि कोई व्यक्ति, जिसके विकल्प पर कोई संविदा शून्यकरणीय है, उसे विखण्डित कर देता है तब उसके दूसरे पक्षकार को, उसमें अन्तर्विष्ट किसी वचन का, जिसका वह वचनदाता है, पालन करने की आवश्यकता नहीं है। शून्यकरणीय संविदा को विखंडित करने वाले पक्षकार ने, यदि ऐसी संविदा के किसी दूसरे पक्षकार से इसके तहत् कोई फायदा प्राप्त किया है, तो वह ऐसा फायदा, उस व्यक्ति को, जिससे वह प्राप्त किया गया था, यथासंभव प्रत्यावर्तित कर देगा । "

59. क्या होगा यदि, कोई करार शून्य पाया जाता है या शून्य हो जाता है, इस बारे में धारा 65 में प्रावधान किया गया है। जो यह घोषणा करता है कि जब ऐसी घटना होती है, तो कोई भी व्यक्ति, जिसने इस तरह के करार या संविदा के तहत कोई लाभ प्राप्त किया है, उसे उस व्यक्ति को वापस करने के लिए बाध्य है जिससे उसने इसे प्राप्त किया है या इसके लिए मुआवजा देने के लिए बाध्य है। धारा 65 के संदर्भ में, हम धारा धारा 2(जे) के साथ संबंध देख सकते हैं, संविदा अधिनियम की धारा 2(जे),

जैसा कि हमने देखा है, यह प्रावधान करती है कि, जब संविदा प्रवर्तनीय नहीं रह जाती है, तो वह शून्य हो जाती है। इस प्रकार, जो करार हो सकता है और जो इस आवश्यकता को पूरा करता है कि वह प्रवर्तनीय है और इसलिये वह संविदा बना जाता है, वह प्रवर्तनीय न रह जाने पर शून्य हो सकता है । हालांकि, यहां हमें महंत सिंह बनाम यू बा यी[5] में दिए गए फैसले में प्रिवी काउंसिल द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोण पर गौर करना चाहिए। इसमें न्यायालय ने अन्य बातों के साथ –साथ निम्नलिखित निर्णय दिए:

> "हालांकि, इस निर्वचन से और भी अधिक चौंकाने वाला परिणाम यह है कि यदि धारा 2(जे) को भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 65 के साथ पढ़ा जाए, तो ऐसी स्थिति में न केवल प्रत्येक अप्रवर्तनीय संविदा शून्य हो जाएगा, बल्कि प्रत्येक पक्षकार किसी भी प्राप्त लाभ को पुर्नःप्राप्त करने या उसके लिये मुआवजा देने के दायित्व के अधीन होगा, चाहे किसी भी पक्ष द्वारा पालन के लिए कितना भी किया गया हो।
>
> पंरतु ऐसे आश्चर्यजनक परिणामों की ओर ले जाने वाले निर्वचन को अपनाना आवश्यक नहीं है।
>
> समाधान, न्यायमूर्ति के दृष्टिकोण में, धारा 2(जे) के शब्दों में पाया जाना है। प्रत्येक अप्रवर्तनीय संविदा को शून्य घोषित नहीं किया जाता है, लेकिन केवल वे जो विधि द्वारा अप्रवर्तनीय हैं, और उन शब्दों का अर्थ कुछ प्रक्रियात्मक विनियमन के कारण अप्रवर्तनीय नहीं है, लेकिन मूल विधि द्वारा अप्रवर्तनीय है। उदाहरण के लिए, एक संविदा जो प्रांरभ से ही अवैध था, जैसे कि एक विदेशी शत्रु के साथ संविदा धारा 2(छ) द्वारा टाला जाएगा, और जो अपने पालन के दौरान अवैध हो गया, जैसे कि एक ऐसे व्यक्ति के साथ संविदा जो एक विदेशी मित्र था लेकिन बाद में एक विदेशी शत्रु बन गया था, उसे धारा 2(जे) द्वारा टाला जाएगा। परिसीमा के क़ानून द्वारा निर्दिष्ट समय के भीतर मुकदमा करने में विफलता या सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत आदेशों में से किसी एक के प्रावधानों के कारण मुकदमा करने में असमर्थता एक संविदा को शून्य नहीं करेगी।"

60. इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने अन्य संपत्तियों के साथ गैर – हस्तांतरणीय अधिभोग अधिकारों को शामिल करने के प्रभाव पर विचार करते हुए, जो एक पंजीकृत बंधक विलेख में हस्तांतरणीय थे और संविदा अधिनियम की धारा

5 AIR 1939 PC 110

23 का उल्लेख करने के बाद, *दीप नारायण सिंह बनाम नागेश्वर प्रसाद* और अन्य[6], में अभिनिर्धारित किया जो इस प्रकार हैं:

> "एक करार के बीच एक स्पष्ट अंतर है जिसे विधि द्वारा निषिद्ध किया जा सकता है और जिसे केवल शून्य घोषित किया जाता है। पहले मामले में विधायिका इसे दंडित करती है या प्रतिबंधित करती है। बाद के मामले में, यह केवल इसे लागू करने से इनकार करता है। यदि कोई शून्य संविदा किया गया है और प्रतिफल प्रदान किया जा चुका है, तो वचनदाता को प्राप्त लाभ को बहाल किए बिना उस पर वापस जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। लेकिन अगर वचन इसे लागू करने के लिए न्यायालय में आता है तो उसे न्यायालय से कोई मदद नहीं मिलेगी। जैसा कि ऊपर बताया गया है, अधिभोग किरायेदारी का हस्तांतरण वास्तव में विधि द्वारा निषिद्ध नहीं है, लेकिन इसे शून्य घोषित किया गया है।"
>
> (बल दिया गया)

61 जिस हद तक *एन. एन. ग्लोबल* (उपरोक्त) इस आधार पर आगे बढ़ता है कि स्टाम्प अधिनियम एक राजकोषीय अधिनियम है और इसका उद्देश्य राजस्व बढ़ाना है, आपत्ति के लिए कोई गंभीर गुंजाइश नहीं हो सकती है।

जहां तक *एन. एन. ग्लोबल* (उपरोक्त) के पैराग्राफ–28 में यह निष्कर्ष है कि एस.एम.एस. टी एस्टेट (उपरोक्त) में निर्णय सही विधि निर्धारित नहीं करता है, जब यह माना जाता है कि एक अमुद्रांकित वाणिज्यिक संविदा में एक मध्यस्थता करार पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है या इसे अप्रवर्तनीय माना जाता है, तो हमारा विचार है कि एन. एन. ग्लोबल (उपरोक्त) में निष्कर्ष सही नहीं प्रतीत होता है। पैराग्राफ–29 के अवलोकन से पता चलेगा कि *एन. एन. ग्लोबल* (उपरोक्त) में न्यायालय इस आधार पर आगे बढ़ा कि मध्यस्थता करार, एक स्वतंत्र संविदा होने के नाते स्टाम्प शुल्क के भुगतान के लिए प्रभार्य नहीं है और यह मध्यस्थता खंड को शून्य या अप्रवर्तनीय नहीं बनाएगा, क्योंकि इसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व था, हमारे सामने स्वीकार की गई स्थिति को देखते हुए अच्छा नहीं हो सकता है कि एक मध्यस्थता करार, अपने आप में, स्टाम्प शुल्क के लिए उपयुक्त है। *एन. एन. ग्लोबल* (उपर्युक्त) में न्यायालय का पूरा आधार यह है कि मध्यस्थता करार, कर्तव्य के लिए बाध्यकारी नहीं होने के कारण और इसका एक अलग अस्तित्व होने के कारण, वाणिज्यिक संविदा जिसमें मध्यस्थता करार निहित है, बिना स्टाम्प के होने के कारण, मध्यस्थता करार को प्रभावित नहीं करेगा, अच्छा नहीं हो सकता है। पैराग्राफ–22 में *एन. एन. ग्लोबल*

6 AIR 1930 ALL 1 (FB) / 1929 SCC OnLine ALL 1

(उपरोक्त) में गरवारे (उपरोक्त) को अस्वीकार करने के लिए तर्क, कि मध्यस्थता खंड विधि में अस्तित्व में नहीं होगा और तब तक अप्रवर्तनीय होगा जब तक कि निर्णय में स्टाम्प शुल्क और मूल संविदा पर भुगतान नहीं किया जाता है, फिर से इस आधार पर है कि मध्यस्थता करार स्टाम्प अधिनियम के तहत एक अलग करार है, जो स्टाम्प शुल्क के लिए अपरिहार्य नहीं है, जो हमने पाया है कि विधि में मामला नहीं है। इस संबंध में, हम स्टाम्प अधिनियम के अनुच्छेद 5 का उल्लेख कर सकते हैंः

लिखत का विवरण	उचित स्टाम्प–डयूटी
[5. करार या करार ज्ञापन– (ए) यदि विनिमय बिल की बिक्री से संबंधित है; (बी) यदि किसी निगमित कंपनी या अन्य निकाय कॉर्पोरेट में सरकारी सुरक्षा या शेयर की बिक्री सेसंबंधित है; (सी) <u>यदि अन्यथा प्रदान नहीं किया गया है</u> छूट करार या करार ज्ञापन– (ए) विशेष रूप से माल या माल की बिक्री के लिए या उससे संबंधित, जो संख्या 43 के तहत प्रभार्य नोट या ज्ञापन नहीं है; (बी) किसी ऋण के लिए या उससे संबंधित केंद्र सरकार को निविदाओं के रूप में किया गया;	दो आने. अधिकतम दस रुपये, एक आना के अधीन प्रत्येक रुपये के लिए सुरक्षा या शेयर के मूल्य का 10,000 या उसका हिस्सा। आठ आने.

(बल दिया गया)

62. जबकि स्टाम्प अधिनियम राजस्व बढ़ाने के उद्देश्य से बनाया गया एक राजकोषीय अधिनियम है, यह एक ऐसी विधि है, जिसके पास पालन के लिये अधिकार है। स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने का समय स्पष्ट रूप से स्टाम्प अधिनियम की धारा 17 में दिया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसे राजकोषीय

अधिनियम कहा जा सकता है, इसका उद्देश्य है कि इसे पूरी शक्ति के साथ लागू किया जाए। न्यायालय का कतव्य ऐसी व्याख्या अपनाना होना चाहिए , जिसके परिणामस्वरूप विधि का प्रवर्तन हो, न कि विधि को दंड से मुक्त होने की अनुमति देना। एक वर्जन जब यह सिद्धांत ध्यान में आ जाता है, तो न्यायालय का कार्य कम कठिन हो जाता है। स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 के साथ धारा 33 में निहित विधि के परिणामस्वरूप निम्नलिखित निष्कर्ष निकलेंगे:

i. प्रत्येक व्यक्ति, जिसके पास विधि या पक्षकारो की सहमति से, साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार है, जिसके सामने एक दस्तावेज प्रस्तुत किया जाता है, उसे तुरंत परिबद्ध करने के लिए कर्तव्यबद्ध है। ऐसा उसके द्वारा यह राय बनाने पर होता है कि दस्तावेज पर विधिवत् स्टाम्प नहीं लगा है। ऐसे मामले में, जहां दस्तावेज पर कोई स्टाम्प नहीं लगा है, जब वह स्टाम्प शुल्क के लिए योग्य है, तो व्यक्ति द्वारा यह राय बनाने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती है कि दस्तावेज पर विधिवत् स्टाम्प नहीं लगा है। निस्संदेह, धारा 33(2) के तहत, अस्पष्टता के मामलों में, व्यक्ति दायित्व पर पहुंचने के लिए लिखत की जांच करेगा। साक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्राधिकार रखने वाले व्यक्ति के अलावा, जिसमें निस्संदेह, एक न्यायालय और एक मध्यस्थ शामिल होंगे, प्रत्येक व्यक्ति जो किसी सार्वजनिक कार्यालय का प्रभारी है, जिसके समक्ष ऐसा लिखत प्रस्तुत किया जाता है या उसके कार्यों के निष्पादन में आता है, का कर्तव्य है कि वह बिना स्टाम्प लगे या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगे दस्तावेज़ को परिबद्ध करे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि लिखत की 'जांच' करने और यह पता लगाने के बाद कि दस्तावेज़ को निष्पादित करते समय या पहली वर्जन निष्पादित करते समय लिखत पर आवश्यकतानुसार स्टाम्प लगी थी या नहीं [धारा 33(2) देखें]। धारा 33 में एक अपवाद पुलिस अधिकारी है। दूसरे शब्दों में, पुलिस अधिकारी के पास उसके समक्ष प्रस्तुत बिना स्टाम्प लगे या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगे दस्तावेज़ को परिबद्ध करने का कोई अधिकार नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक आपराधिक न्यायालय प्रावधान के अनुसार बाध्य नहीं है। धारा 33, निस्संदेह, शक्ति के प्रत्यायोजन को अधिकृत करती है।

ii. धारा 35 के तहत, विधि–दाता ने किसी भी उद्देश्य के लिए किसी ऐसे लिखत के साक्ष्य में स्वीकार को अयोग्य कर दिया है जिस पर स्टाम्प नहीं लगी है या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगी है। इसमें एक संपार्श्विक उद्देश्य भी शामिल होगा। यह एक दस्तावेज़ के बिल्कुल विपरीत है, जो अनिवार्य रूप से पंजीकृत है

लेकिन पंजीकृत नहीं है। पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 49 के तहत, संपार्श्विक लेनदेन को साबित करने के लिए एक अपंजीकृत दस्तावेज का उपयोग किया जा सकता है। यदि दस्तावेज़ पर स्टाम्प नहीं लगाई गई है या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प नहीं लगाई गई है, तो यह अस्वीकार्य है। धारा 35 यह घोषणा करने के लिए आगे बढ़ती है कि इस तरह के बिना स्टाम्प वाले या अपर्याप्त स्टाम्प वाले दस्तावेज़ पर कार्रवाई नहीं की जाएगी। संविदा अधिनियम की धारा 2 (एच) के साथ ऊपर बताए गए बिना स्टाम्प वाले दस्तावेज़ पर लगाए गए प्रतिबंध को जोड़ना महत्वपूर्ण है। संविदा अधिनियम की धारा 2 (एच) में प्रावधान है कि एक करार, जो विधि में प्रर्वतनीय है, एक संविदा है जबकि धारा 2 (जी), एक करार जो प्रर्वतनीय नहीं है, शून्य है। स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 के संदर्भ में समझे जाने वाले 'विधि में प्रवर्तनीय' या 'विधि में प्रवर्तनीय नहीं' शब्दों का अर्थ होगा कि कोई ऐसा अवसर होने पर, जो करार के किसी एक पक्ष को विधि में उपलब्ध प्रतिबंधों का सहारा लेकर इसे लागू करने की आवश्यकता बनाता है, उसे आश्वासन दिया जाना चाहिए। आम तौर पर, करारों को दीवानी अदालतों में कार्रवाई के माध्यम से लागू किया जाता है। सार्वजनिक प्राधिकरणों के समक्ष उपचार माँगा जा सकता है । दीवानी अदालतों और सार्वजनिक प्राधिकरणों दोनों को एक बिना स्टाम्प वाले दस्तावेज को लागू करने से वर्जित किया जाता है। धारा 33 उस व्यक्ति को, जिसे विधि द्वारा या सहमति से, साक्ष्य लेने का अधिकार है, या किसी लोक अधिकारी को, करार को परिबद्ध करने के अलावा कोई विकल्प नहीं देती है। बिना स्टाम्प वाले या अपर्याप्त स्टाम्प वाले दस्तावेज़ का उपयोग किसी भी उद्देश्य के लिए सबूत के रूप में नहीं किया जा सकता है। यह अकल्पनीय होगा कि यह एक ही सांस में कैसे पाया जा सकता है कि एक अस्टाम्पित दस्तावेज़ अभी भी विधि में प्रर्वतनीय है या यह विधि में प्रर्वतनीय नहीं है। यह एक और मामला है कि पक्ष इस पर कार्रवाई कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, किसी दस्तावेज़ के तहत वस्तु या सेवाएँ का स्वामित्व बदल सकता हैं, जो अन्यथा मुद्रांक शुल्क के लिए उपयुक्त हो सकती हैं। हालाँकि, जो सुसंगत है वह यह है कि राज्य उचित प्रतिबंधों द्वारा अपनी सुरक्षा का विस्तार नहीं करेगा। अधिकार, जो अन्यथा उपलब्ध होते, अगर करार पर स्टाम्प लगा दी जाती, तो वे स्थिर रहते या वे मौजूद नहीं होते। इसलिए हम अपने विचार को और मजबूत करते हैं कि एस. एम. एस. टी एस्टेट्स (ऊपर) के बाद पैराग्राफ–22 में गरवारे (ऊपर) में इस

न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचार विधि में सही स्थिति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

iii. इसके बाद, हमें गरवारे (ऊपर) के पैराग्राफ–29 में व्यक्त किए गए विचारों की शुद्धता की ओर बढ़ना चाहिए। न्यायालय ने यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस में निर्णय पर ध्यान आकर्षित किया कंपनी लिमिटेड और एक अन्य बनाम हुंडई इंजीनियरिंग एंड कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड और अन्य[7].

63. न्यायमूर्ति हृषिकेश रॉय ने अपने मसौदा निर्णय के पैराग्राफ–84 में पाया कि गरवारे (ऊपर) के पैराग्राफ–29 में, इस न्यायालय ने यूनाइटेड पर भरोसा किया था। इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम हुंडई इंजीनियरिंग और कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड[8].हमारे विद्वान भाई पैराग्राफ–84.1 में आगे लिखते हैं कि हुंडई (ऊपर) में, मुद्रांकन का मुद्दा विचाराधीन नहीं था और सवाल यह था कि क्या मामला अपवादात्मक मामले के भीतर आता है क्योंकि मध्यस्थता खंड इस बात पर निर्भर था कि बीमाकर्ता ने दायित्व स्वीकार किया है या नहीं।न्यायमूर्ति हृषिकेश रॉय ने आगे पाया कि गरवारे (ऊपर) में हुंडई (ऊपर) पर भरोसा करने का दृष्टिकोण गलत था। ऐसा इसलिए है क्योंकि हुंडई (उपरोक्त) का मुद्रांकन से कोई लेना–देना नहीं है। और इसे अलग किया जाना चाहिए था।हमारे विद्वान भाई विद्वान न्यायमित्र के इस तर्क पर ध्यान देते हैं कि हुंडई (ऊपर) इस पर भरोसा करती थी ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी बनाम नरभेरम पावर एंड स्टील प्राइवेट सीमित[9], जिस मामले में, न्यायालय के पास अधिनियम की धारा 11 (6) (ए) की व्याख्या करने का अवसर नहीं था।

64. यह सच है कि हुंडई (ऊपर) में, यह न्यायालय स्टाम्प अधिनियम के प्रभाव पर विचार नहीं कर रहा था। इसके बजाय न्यायालय उस खंड के प्रभाव के मुद्दे पर विचार कर रहा था, जिसमें यह सहमति हुई थी कि कोई मध्यस्थता नहीं होगी, यदि बीमाकर्ता पॉलिसी के तहत या उसके बावजूद विवाद करता है या दायित्व स्वीकार नहीं करता है। उक्त खंड के संदर्भ में, इस न्यायालय ने हुंडई (उपरोक्त) में, अन्य बातों के साथ–साथ यह अभिनिर्धारित किया कि बीमाकर्ता द्वारा अपने दायित्व के बारे में याचिका को अस्वीकार करने से 'मध्यस्थता खंड को अप्रभावी और लागू करने में असमर्थ, यदि अस्तित्व में नहीं है'। इसमें कोई संदेह नहीं है कि गरवारे (ऊपर) के पैराग्राफ–29 में, इस न्यायालय ने पाया कि 'इसी तरह वर्तमान मामले के तथ्यों में,

---

7 (2018) 17 SCC 607

8 (2018) 17 SCC 607

9 (2018) 6 SCC 534

यह स्पष्ट है कि उप–संविदा में निहित मध्यस्थता खंड, यानी, तब तक' विधि के मामले 'के रूप में मौजूद नहीं होगा जब तक कि उप–संविदा पर विधिवत स्टाम्प नहीं लग जाती है जैसा कि हमने ऊपर अभिनिर्धारित किया है। 'इसलिए, यह पता लगाने के लिए कि एक अनस्टैम्प्ड उप–संविदा में एक मध्यस्थता करार मौजूद नहीं होगा, पैराग्राफ–22 में पहले से ही प्रस्तुत किया गया था। यह न्यायालय केवल 'विधि में' लिखत के अस्तित्व के बारे में प्रस्ताव के लिए हुंडई (उपरोक्त) से समर्थन प्राप्त कर रहा था। जबकि हुंडई (ऊपर) का संबंध स्टाम्प अधिनियम से नहीं था, और यहां तक कि हुंडई (ऊपर) के संदर्भ को हटाते हुए, अस्टाम्पित करार का अस्तित्व न होने के बारे में निष्कर्ष इस तर्क पर समर्थित होगा कि धारा 11(6)(ए) में जो विचार किया गया है वह केवल सतही अस्तित्व या तथ्य में अस्तित्व ही नहीं, बल्कि विधि में भी अस्तित्व है।

65. गरवारे (ऊपर) में इस न्यायालय ने यह विचार रखा कि जब तक उप संविदा पर स्टाम्प नहीं लगाया जाता, तब तक उसमें निहित मध्यस्थता खंड विधि के मामले के रूप में मौजूद नहीं होगा। यह निष्कर्ष स्पष्ट रूप से धारा 11 (6ए) को शामिल करने वाले संशोधन के प्रभाव के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। गरवारे (ऊपर) में न्यायालय ने वास्तव में भारत के विधि आयोग की दो सौ छियालिसवीं रिपोर्ट के आधार पर संशोधन से पहले विधि निर्धारित करने के बाद पैराग्राफ–19 में पाया कि विधि आयोग की रिपोर्ट में एस .एम.एस. चाय संपदा (ऊपर) के बारे में उल्लेख नहीं किया गया है। यह आगे पाया गया है कि यह बहुत उचित कारण है कि न्यायालय धारा 11 के तहत एक आवेदन पर निर्णय करते समय किसी प्रांरभिक विवा्रक पर निर्णय नहीं करता है। न्यायालय ने आगे पाया कि वह एक अनिवार्य अधिनियम के प्रावधानों को प्रभावी बना रहा था, जो न्यायालय को स्टाम्प अधिनियम के प्रावधानों के तहत पहले करार को परिबद्ध करने का आदेश देता है, और यदि उसके बाद केवल शास्ति और शुल्क का भुगतान किया जाता है, तो उस पर कार्रवाई करने का आदेश देता है। न्यायालय ने यह भी पाया था कि मध्यस्थता खंड को विभाजित करना संभव नहीं था। जैसा कि हमने पाया है, बिना स्टाम्प या अपर्याप्त स्टाम्प के कारण, करार तब तक लागू नहीं होगा जब तक कि इसे 'मान्य' नहीं कर दिया जाता है, जो कि केवल स्टाम्प अधिनियम में दिए गए तरीके से ही स्वीकार्य है और तब तक यह 'विधि में' मौजूद नहीं होगा।

66. परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 136 के संदर्भ में, डॉ. चिरंजी लाल(मृत) बनाम.हरि दास (डी) एल. आर. एस.[10] द्वारा विधिक प्रतिनिधि मामले में

10 (2005) 10 SCC 746

तीन विद्वान न्यायाधीशों की एक पीठ ने को इस तर्क पर विचार पड़ा कि 07.08.1981 का पारित विभाजन के लिए एक अंतिम डिक्री केवल 25.05.1982 को प्रवर्तनीय हो गई, जिस दिन डिक्री पर स्टाम्प पेपरों अदा कर दिया गया। अनुच्छेद 136 के तहत, वर्जनह साल की अवधि तब शुरू होती है जब 'डिक्री या आदेश' अन्य बातों के साथ–साथ 'प्रवर्तनीय' हो जाता है। न्यायालय ने अन्य बातों के साथ–साथ इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

"23. भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 के उद्देश्य और योजना को ध्यान में रखते हुए ऐसे निर्वचन की अनुमति नहीं है। स्टाम्प एक्ट एक राजकोषीय उपाय है जिसे कुछ वर्गों के लिखतों पर राज्य के लिए राजस्व सुरक्षित करने के उद्देश्य से लागू किया गया है। यह अपने प्रतिपक्षी के मामले का सामना करने के लिए एक वादी को तकनीकी हथियार से लैस करने के लिए अधिनियमित नहीं किया गया है। अधिनियम के कड़े प्रावधानों की कल्पना राजस्व के हित में की गई है। एक वर्जन जब वह वस्तु विधि के अनुसार सुरक्षित हो जाती है, तो लिखत पर अपना दावा करने वाले पक्ष को लिखत में प्रारंभिक दोष के आधार पर पराजित नहीं किया जाएगा। (हिंदुस्तान स्टील लिमिटेड बनाम.दिलीप कंस्ट्रक्शन कं. [(1969) 1 एससीसी 597])...."

XXX XXX XXX

25. विभाजन के मुकदमे में अंतिम डिक्री को शामिल करना डिक्री की तारीख से संबंधित होगा। ऐसी डिक्री को निष्पादित करने के लिए परिसीमा की अवधि की शुरुआत स्टाम्प पेपर पर ऐसी डिक्री के शामिल होने की तारीख पर निर्भर नहीं की जा सकती है। स्टाम्प पेपर प्रस्तुत करने की तिथि एक पक्ष के अधिकार क्षेत्र, दायरे और नियंत्रण के भीतर एक अनिश्चित कार्य है। स्टाम्प पेपर प्रस्तुत करने के लिए कोई तिथि या अवधि निर्धारित नहीं है। हमें ऐसा कोई नियम नहीं दिखाया गया है जिसके तहत न्यायालय को स्टाम्प पेपर प्रस्तुत करने के लिए बुलाने या समय देने की आवश्यकता हो । एक पक्ष अपने स्वयं के स्टाम्प पेपर प्रस्तुत नहीं करने के कार्य से परिसीमा की अवधि के संचालन को नहीं रोक सकता है। कोई भी अपनी गलती का फायदा नहीं उठा सकता। यह प्रस्ताव कि सीमा की अवधि तब तक निलंबित रहेगी जब तक कि स्टाम्प पेपर प्रस्तुत नहीं किया जाता है और उस पर डिक्री लिखी जाती है और उसके बाद ही वर्जनह साल की अवधि चलना शुरू होगी, बेतुकी बात होगी। यसवंत देवराव देशमुख बनाम वालचंद रामचंद कोठारी [1950 एससीसी] 766 :1950 एससीआर

852:ए. आई. आर. 1951 एस. सी. 16] में यह कहा गया था कि देय राशि पर न्यायालय शुल्क का भुगतान पूरी तरह से डिक्री धारक की शक्ति में था और उसे तब और वहां भुगतान करने से रोकने के लिए कुछ भी नहीं था; यह एक डिक्री थी जो उसी तारीख से निष्पादित करने में सक्षम थी जब इसे पारित किया गया था।

26. परिसीमा के नियम यह देखने के लिए हैं कि पक्षकार विलम्बकारी रणनीति का सहारा नहीं ले, बलिक तुरंत अपना उपचार चाहते हैं। जैसा कि लिखा गया है, स्टाम्प पेपर पर डिक्री को शामिल करने के लिए डिक्री या समय–सीमा को शामिल करने के लिए स्टाम्प पेपर प्रस्तुत करने के लिए कोई समय–सीमा निर्धारित करने वाला कोई वैधानिक प्रावधान नहीं है और डिक्री पारित करने के लिए न्यायालय पर कोई वैधानिक दायित्व नहीं है कि वह पक्षकारों को डिक्री को शामिल करने के लिए स्टाम्प पेपर प्रस्तुत करने का निर्देश दे।वर्तमान मामले में न्यायालय ने पक्षकारों को आदेश देने के उद्देश्य से स्टाम्प पेपर प्रस्तुत करने का निर्देश देते हुए कोई आदेश पारित नहीं किया है। केवल इसलिए कि न्यायालय द्वारा डिक्री को शामिल करने के लिए स्टाम्प पेपर प्रस्तुत करने का कोई निर्देश नहीं है या विधि द्वारा कोई समय–सीमा निर्धारित नहीं है, इसका मतलब यह नहीं है कि पार्टी अपनी इच्छानुसार स्टाम्प पेपर प्रस्तुत कर सकती है और दावा करती है कि अधिनियम के अनुच्छेद 136 के तहत प्रदान की गई सीमा की अवधि उसके बाद ही शुरू होगी जब डिक्री को शामिल किया जाएगा। विभाजन डिक्री के निष्पादन के लिए परिसीमा की अवधि की शुरुआत को स्टाम्प पेपर पर डिक्री के शामिल होने पर आकस्मिक नहीं बनाया जा सकता है।... ”

(बल दिया गया)

67. हालाँकि, उक्त दृष्टिकोण को अनुच्छेद 136 के अर्थ के भीतर एक डिक्री या आदेश की 'प्रवर्तनीयता' द्वारा पूरी तरह से पराजित होने के खतरे में खड़े सीमा विधि के संदर्भ में समझा जाना चाहिए, जो आवश्यक स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने के लिए एक पक्ष की इच्छा के कार्य पर निर्भर है। यहाँ, हमारे समक्ष मामले में, यहां, हमारे सामने मौजूद मामले में, हम अन्य बातों के साथ–साथ स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 के तहत एक न्यायालय के कर्तव्य और एक मध्यस्थता खंड वाले बिना स्टाम्प वाले या अपर्याप्त स्टाम्प करार पर इसके प्रभाव से चिंतित हैं। यह अधिनियम की धारा 11 (6ए) में 'मध्यस्थता करार का अस्तित्व' शब्दों के लिए जिम्मेदार माने जाने वाले अर्थ से अलग है। हमने संविदा अधिनियम के संदर्भ में 'प्रवर्तनीयता' की अवधारणा को

समझाया है। तथ्यों के करीब जो है वह प्रवर्तनीयता की अवधारणा है या बल्कि प्रवर्तनीयता की कमी है जिसके परिणामस्वरूप हमारे द्वारा बताए गए अर्थ में संविदा की शून्यता होती है।

के. द स्टैम्प एक्ट – क्या एक प्रक्रिया संबंधी विधि है?

68. इस संदर्भ में, न्यायशास्त्र पर सैल्मंड, वर्जनहवें संस्करण से निम्नलिखित चर्चा पर ध्यान देना लाभदायक होगा। प्रक्रिया की विधि पर चर्चा के लिए, यह कहा गया हैः

> "तो फिर, विभेद की वास्तविक प्रकृति क्या है? प्रक्रिया की विधि को विधि की उस शाखा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो प्रकरणों की प्रक्रिया को नियंत्रित करती है।यह प्रक्रिया की विधि है – jus quod ad actiones pertinent – कार्रवाई शब्द का व्यापक उपयोग करना जिसमें, दीवानी या आपराधिक सभी कानूनी कार्यवाही को शामिल करता है। शेष सभी मूल विधि हैं, और प्रकरण की प्रक्रिया से नहीं, बल्कि इसके उद्देश्यों और विषय–वस्तु से संबंधित हैं। मूल विधि उन उद्देश्यों से संबंधित है जो न्याय प्रशासन चाहता है; प्रक्रियात्मक विधि उन साधनों और लिखतों से संबंधित है जिनके द्वारा उन उद्देश्यों को प्राप्त किया जाना है। पश्चात वाला प्रकरण के संबंध में न्यायालयों और वादियों के आचरण और संबंधों को नियंत्रित करता है; पूर्व प्रकरण के मामलों के संबंध में उनके आचरण और संबंधों को निर्धारित करता है।"
>
> (बल दिया गया)

69 स्टाम्प टिकट अधिनियम, हालांकि यह एक राजकोषीय उपाय हो सकता है, यह प्रक्रियात्मक विधि के दायरे में नहीं आ सकता है। केवल यह तथ्य कि धारा 33 और 35 एक स्तर पर लागू हो सकती है, जब व्यक्ति किसी न्यायालय का दरवाजा खटखटाता है, अन्य बातों के साथ–साथ, इसका मतलब यह नहीं होगा कि धारा 17 में घोषित किए गए समय पर दस्तावेज पर स्टाम्प लगाने के लिए निष्पादकों पर कर्तव्य का प्रावधान करने वाला स्टाम्प अधिनियम, और इससे भी अधिक, धारा 62 के तहत एक विचलन को दंडित करना, प्रक्रियात्मक विधि के दायरे में आता है। उल्लेखनीय है कि हम पोलक और मुल्ला द्वारा भारतीय संविदा और विशिष्ट अनुतोष अधिनियमों के चौदहवें संस्करण में निम्नलिखित नोट कर सकते हैंः

> "अप्रवर्तनीय संविदा

अप्रवर्तनीय संविदा सभी मामलों में मान्य हैं, लेकिन पक्षकारों द्वारा उन पर मुकदमा नहीं किया जा सकता है। पंजीकरण के आभाव में ऐसी अयोग्यता उत्पन्न हो सकती है; या क्योंकि मुकदमा दायर करने के लिए निर्धारित समय समाप्त हो गया है; या क्योंकि वादी फर्म पंजीकृत नहीं है; या दस्तावेज़ या लिखत आवश्यक स्टाम्प शुल्क वहन नहीं करता है; या क्योंकि धन के ऋणदाता के पास धन–ऋण कानूनों के तहत लाइसेंस नहीं है।"

(बल दिया गया)

70. हम पायेंगे कि एक करार, जो एक मूल विधि के कारण अप्रवर्तनीय है, जिसमें स्टाम्प अधिनियम शामिल होगा, संविदा अधिनियम की धारा 2 (एच) को लागू करने वाला संविदा नहीं होगा। यह केवल तभी होगा जब कोई करार प्रर्वतनीय हो, तो यह एक संविदा बन जाएगा। यह केवल एक 'संविदा' है, जो 'मध्यस्थता करार' होगा, जिस पर अधिनियम की धारा 11 (6ए) में विचार किया गया है। केवल एक अनस्टैम्प्ड आर्बिट्रेशन एग्रीमेंट को 'उपचार योग्य दोष' के रूप में वर्णित करना उचित नहीं हो सकता है। जब तक यह एक अस्टाम्पित लिखत बना रहता है, तब तक इसे किसी भी उद्देश्य के लिए विचार में नहीं लिया जा सकता है, जैसा कि स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 में विचार किया गया है। यह अप्रवर्तनीय बना हुआ है। धारा 17 उस समय की घोषणा करती है जब भारत में निष्पादित किसी लिखत पर स्टाम्प लगाई जानी चाहिए। उक्त प्रावधान में विचार किया गया है कि इस तरह के लिखत की मुद्रांकन दस्तावेज़ के निष्पादन से पहले या उसके समय होनी चाहिए। कोई भी लोक अधिकारी, न ही न्यायालय और न ही मध्यस्थ, किसी भी व्यक्ति को इस पर कार्रवाई करने या इसे सबूत के रूप में प्राप्त करने के लिए कहने की अनुमति नहीं दे सकता है। विधि में, यह जीवन से रहित है। यह 'विधि में प्रर्वतनीय नहीं है'। उक्त अर्थ में, यह विधि में भी मौजूद नहीं हो सकता है। यह शून्य होगा। इस संबंध में हमारा विचार है कि शून्यता को अप्रवर्तनीयता से जोड़ा जाता है, संविदा अधिनियम की धारा 2 (जे) से सुदृढ़ीकरण प्राप्त होता है जो एक संविदा को प्रदान करता है जो प्रर्वतनीय शून्य नहीं है।

71. धारा 11 (6ए) जिस पर विचार करती है वह एक संविदा है और यह एक ऐसा करार नहीं है जिसे संविदा के रूप में नहीं माना जा सकता है। यह धारा 11 (6ए) में 'मध्यस्थता करार' शब्दों के उपयोग के बावजूद है। दूसरे शब्दों में, संविदा

अधिनियम की धारा 7 के अनुरूप होना चाहिए। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह संविदा अधिनियम की आवश्यकताओं को भी पूरा करता है।

72. धारा 19 और 19ए के अर्थ के भीतर एक शून्यकरणीय संविदा, निस्संदेह शून्य अनुबंधों के बिल्कुल विपरीत है। हालाँकि, उदाहरण के लिए, शून्य अनुबंधों की श्रेणियों में भी, संविदा अधिनियम की धारा 20 में प्रावधान है कि यदि किसी भौतिक बिंदु पर, पक्षों ने गलत समझा गया, तो संविदा शून्य हो जाएगा। यदि किसी दिए गए मामले में जहां यह धारा 11 के तहत किसी कार्यवाही में किसी पक्ष द्वारा उठाया गया विवाद है, जब करार अन्यथा एक मध्यस्थता करार के रूप में मौजूद होने के लिए एक करार की आवश्यकता को पूरा करता है, तो न्यायालय को इस मामले में उचित ठहराया जाएगा। करार को एक ऐसा करार मानते हुए जो मौजूद है और इसे मध्यस्थ के लिए प्रश्न में जाने के लिए खुला छोड़ दें, जो अभिवचन रखे जाने और उसके सामने साक्ष्य सामने आने के बाद किया जा सकता है। जब एक मध्यस्थता करार को इस आधार पर संदेह के दायरे में लाने की मांग की जाती है कि यह एक शून्य संविदा है जिसे टाला गया है, तो फिर से यह एक ऐसा मामला हो सकता है जहां कॉम्पेटेंज़–कॉम्पेटेंज़(Kompetenz–Kompetenz) का सिद्धांत उपयुक्त हो सकता है और फिर से धारा 11 के तहत न्यायालय को इस आधार पर कार्यवाही में उचित ठहराया जाएगा कि एक मध्यस्थता करार मौजूद है। इस प्रश्न को निस्संदेह त्वरित प्रारंभ, प्रगति और मध्यस्थता के समापन के उदात्त उद्देश्य को आगे बढ़ाने के दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए। जब संसद ने अधिनियम में संशोधन करके हस्तक्षेप किया, जबकि धारा 8 में उसने प्रथम दृष्टया शब्दों का उपयोग किया है, तो उसने धारा 11 (6ए) में मध्यस्थता करार के अस्तित्व के बारे में पता लगाने के लिए 'जांच' शब्द का उपयोग किया है। इसी तरह, धारा 8 में विधि निर्माता ने 'वैध' शब्द का उपयोग किया है जो धारा 11 (6ए) में नहीं है। क्या यह कहा जा सकता है कि धारा 11 (6ए) के उद्देश्य के लिए एक शून्य करार को विधि में मौजूद कहा जा सकता है?

73. शून्य दस्तावेज़ या करार क्या है? यह एक ऐसी अभिव्यक्ति है जो अक्सर शून्य शब्द के साथ जुड़ी होती है। हम पहले ही धारा 20 को एक उदाहरण के रूप में देख चुके हैं जहां किसी भौतिक विषय पर पक्षों की एक सामान्य गलती करार को शून्य कर देती है।हमने यह भी देखा है कि शून्यता की प्रकृति को देखते हुए, धारा 11 के तहत एक न्यायालय, धारा 11 के तहत आवेदन की अनुमति दे सकती है जब प्रतिवादी द्वारा संविदा अधिनियम की धारा 20 के तहत आश्रय लिया जाता है। यह तथ्यों पर निर्भर करेगा। शून्यता पर आते हुए, एक संविदा शून्य होगा उदाहरण के

लिए यदि इसे अस्वस्थ चित्त वाले व्यक्ति द्वारा निष्पादित किया जाता है। यह समान रूप से ऐसा मामला होगा जहां यह पाया जाता है कि एक पक्ष नाबालिग था। जहाँ तक 'शून्य' शब्द का संबंध है, इसके अलग–अलग अर्थ हैं। एक संविदा के संदर्भ में, हम कर्नाटक उच्च न्यायालय के एक निर्णय में निम्नलिखित कथन को नोटिस करते हैं जो इमाम्बी बनाम खाजा हुसैन उर्फ खज़ासाब[11] में रिपोर्ट किया गया है।

> "इस संदर्भ में कि शब्दों का उपयोग किया जाता है, इसका अर्थ जोन्स बनाम बैंक ऑफ गमिंग में निम्नानुसार निर्धारित किया गया है:–
>
> "जैसा कि एक संविदा पर लागू "शून्य" शब्द का अर्थ हमेशा एक पूर्ण शून्य नहीं होता है, क्योंकि एक संविदा इतना अपूर्ण हो सकता है कि इसे लागू नहीं किया जा सकता है, लेकिन ऐसा पूर्ण शून्य नहीं है कि इसे पूर्ण नहीं किया जा सकता है।"

(शब्दों और वाक्यांशों के माध्यम से – स्थायी संस्करण – वेस्ट पब्लिशिंग कंपनी वॉल्यूम 22 ए) "

74. उपरोक्त कथन एक ऐसे लिखत के संदर्भ में उपयुक्त प्रतीत होता है जिस पर बिना स्टाम्प लगी हो या जिस पर अपर्याप्त स्टाम्प लगी हो। इसका कारण यह है कि एक ओर जब तक इस पर स्टाम्प नहीं लगी है या पर्याप्त रूप से स्टाम्प नहीं लगी है, तब तक यह स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के तहत परिबद्ध किया जा सकता है और इसका उपयोग सबूत के रूप में या पंजीकृत नहीं किया जा सकता है। यह इस तरह के लिखत पर 'कार्य' करने के खिलाफ स्पष्ट प्रतिबंध से अलग है। दूसरी ओर, यदि ऐसे लिखत को परिबद्ध करने और शुल्क और शस्ति का भुगतान करने के बाद और धारा 42 (2) के अर्थ के भीतर उस पर एक प्रमाण पत्र का पृष्ठांकन किया जाता है, तो यह संकेत मिलता है कि लिखत फिर से जीवित हो जाता है, तो स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 में लगी रोक को स्थायी रूप से हटा दिया जाता है। समान रूप से, धारा 36 के तहत एक लिखत (लिखत का द्वितीयक साक्ष्य नहीं) के मामले में जिसे बिना किसी आपत्ति के साक्ष्य में प्रस्तुत करने की अनुमति है, तो यह एक अधिकार स्थापित करने वाले साक्ष्य के रूप में योग्य होगा। लेकिन यह उस नियम का अपवाद है जो स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 में पाया जाता है। इस प्रकार, एक अस्टाम्पित या अपर्याप्त रूप से स्टाम्पित लिखत एक करार के मामले का प्रतिनिधित्व करता है जो प्रर्वतनीय नहीं है, इस अर्थ में कि एक सिविल कार्रवाई के माध्यम से विधि में प्रतिबंध अस्वीकार्य है, उक्त अर्थों में शून्य है। यह इस अर्थ में

---

11 AIR 1988 Karnataka 51

शून्य या शून्य नहीं है कि यह अभी भी पैदा हुआ है या इस अर्थ में शून्य और शून्य है कि इसमें जीवन नहीं डाला जा सकता है। हम संक्षेप में बता सकते हैं। एक करार जिस पर स्टाम्प नहीं लगी है या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगी है, तब तक लागू नहीं किया जा सकता है, जब तक कि यह उक्त स्थिति में रहता है। ऐसा दस्तावेज शून्य होगा क्योंकि यह प्रर्वतनीय नहीं है [संविदा अधिनियम की धारा 2 (जी) देखें]। उक्त अर्थ में यह विधि में मौजूद नहीं होगा। इसे केवल धारा 33 और स्टाम्प अधिनियम के अन्य प्रावधानों में विचार की गई प्रक्रिया द्वारा "मान्य" किया जा सकता है। हम हरिओम अग्रवाल बनाम प्रकाश चंद मालवीय[12] में इस न्यायालय के फैसले में प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'सत्यापन' पाते हैं। जिसका हम अधिक विस्तार सें बाद में उल्लेख करेंगे। इसका अनिवार्य रूप से मतलब है कि न्यायालय इसे प्रर्वतनीय के रूप में नहीं देखेगी, और इसलिए, विधि में मौजूद है। व्याख्या किए गए अर्थ में , इसे 'शून्य नहीं' और इसलिए 'शून्य नहीं' के रूप में नहीं पाया जाएगा। इस प्रकार, अधिनियम, स्टाम्प अधिनियम और संविदा अधिनियम के संदर्भ में, हमारा विचार है कि एस. एम. एस. टी एस्टेट्स (ऊपर) में इस न्यायालय की राय, जैसा कि गरवारे (ऊपर) में दोहराया गया है और विद्या द्रोलिया (ऊपर) में अनुमोदित है, सही है।

75. धारा 11(6ए) को केवल शाब्दिक रूप से मौजूद मध्यस्थता करार के लिए पूर्वानुमान के रूप में नहीं समझा जा सकता है। इसका मतलब है कि केवल सभी आशय और उद्देश्यों के लिए मध्यस्थता करार का अस्तित्व, जिसका उद्देश्य विधिवत निष्पादित संविदा को प्रस्तुत करना है, कुछ स्थितियों में धारा 11 के तहत अपर्याप्त हो सकता है। यदि स्पष्ट रूप से स्टाम्प लगाने की आवश्यकता होने पर इसे हटा दिया जाता है, तो इसे ऐसा मामला नहीं कहा जा सकता है जहां करार मौजूद है क्योंकि इसका विधि में कोई अस्तित्व नहीं होगा। जबकि हम सहमत हैं , न्यायालय को अनुबंधों का चयन करने में सावधानी बरतनी चाहिए जहां एक मध्यस्थता करार जो प्रस्तुत किया गया है उस पर इस कारण से कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए कि वह विधि में मौजूद नहीं है , हम केवल यह मानते हैं कि एक मध्यस्थता करार, जो अस्टाम्पित है, मौजूद नहीं है और एक अस्टाम्पित संविदा, जिसमें एक मध्यस्थता करार है, मौजूद नहीं होगा क्योंकि इसका विधि में कोई अस्तित्व नहीं है।

एल. अधिनियम की धारा 7 – इसका प्रभाव

76. हमारे विद्वान भाई, न्यायमूर्ति हृषिकेश रॉय, यह ध्यान में रखते हुए सही हैं कि अधिनियम की धारा 7 में भाग । के उद्देश्य के लिए मध्यस्थता करार का क्या

12 (2007) 8 SCC 514

अर्थ है, इसके लिए प्रावधान है। हालांकि, बहुत सम्मान के साथ, हम इस बात से सहमत होने में अपनी असमर्थता व्यक्त करते हैं कि अधिनियम की धारा 7 का एक सादा अध्ययन, यह स्पष्ट कर देगा कि एक मध्यस्थता करार गैर–संविदात्मक भी हो सकता है।स्पष्टता के उद्देश्य से, हम इस समय अधिनियम की धारा 7 (1) को पुनः प्रस्तुत कर सकते हैं:

डी.

"7(1) मध्यस्थता करार।(1) इस भाग में, "मध्यस्थता करार" का अर्थ है पक्षकारों द्वारा मध्यस्थता को उन सभी या कुछ विवादों को प्रस्तुत करने के लिए एक करार जो उत्पन्न हुए हैं या जो एक परिभाषित कानूनी संबंध के संबंध में उनके बीच उत्पन्न हो सकते हैं, चाहे वे संविदात्मक हों या नहीं।"

(बल दिया गया)

77. हम यह मानने के लिए इच्छुक हैं कि धारा 7(1) जिस पर विचार करता है वह एक मध्यस्थम् करार है। हम यह भी सोचने के लिए इच्छुक हैं कि विधि बनाने वाले का आशय यह है कि मध्यस्थम् करार के तहत, पक्षकारों को उन विवादों को प्रस्तुत करना चाहिए, जो उनके बीच उत्पन्न हुए हैं या जो उनके बीच उत्पन्न हो सकते हैं। विवाद उत्पन्न हो सकते हैं या एक परिनिश्चित विधिक संबंध के संबंध में उत्पन्न हो सकते हैं। परिनिश्चित विधिक संबंध, बदले में, या तो संविदात्मक या अन्यथा हो सकता है। इसलिए, जो विवाद उत्पन्न कर सकता है वह एक विधिक संबंध हो सकता है, जो गैर–संविदात्मक है। विधिक संबंध एक संविधि से उत्पन्न हो सकता है। यह एक अपकृत्य के संबंध में उत्पन्न हो सकता है परंतु एक मध्यस्थम् करार का अर्थ हमेशा एक करार होना चाहिए। यह वास्तव में एक संविदा है जिसका आशय वह करार है जो विधित: प्रवर्तनीय हो, संविदा है। मध्यस्थम् हेतु एक करार में मध्यस्थम् करार एक खण्ड के रुप में हो सकता है । यह एक पृथक या स्वतंत्र करार के रुप में हो सकता है (अधिनियम की धारा 7 (2))। एक मध्यस्थम् करार लिखित होना चाहिए [अधिनियम की धारा 7 (3) देखें]। इस आवश्यकता के भीतर कि मध्यस्थम् करार लिखित रूप में होना चाहिए, धारा 7 (4) (क) से 7 (4) (ग) में निर्धारित किया गया है। इसमें एक दस्तावेज शामिल है जिस पर पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं [धारा 7 (4) (क) देखें]। एक मध्यस्थम् करार को लिखित रुप से अंतर्विष्ट माना जाएगा, यदि वह पत्रों के आदान–प्रदान, टेलेक्स, तार या दूरसंचार के ऐसे अन्य साधनों में जिसमें इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से संचार शामिल हैं जो करार के अभिलेख की व्यवस्था करते हैं [धारा 7 (4) (ख) देखें]। इसके बाद, हम देख

सकते हैं कि एक मध्यस्थम् करार को लिखित रुप से अंतर्विष्ट माना जाएगा, यदि वह दावे और प्रतिरक्षा के कथनों के आदान–प्रदान में, जिनमें करार की विद्यमानता का एक पक्षकार द्वारा अभिकथन किया गया है और दूसरे पक्षकार द्वारा उसमें इंकार नहीं किया गया है [धारा 7 (4) (ग) देखें]। अंत में, धारा 7 (5) निगमन द्वारा एक मध्यस्थम् करार पर विचार करती है अर्थात् एक मध्यस्थम् खण्ड वाले किसी दस्तावेज का एक संविदा में संदर्भ, मध्यस्थम् करार का गठन करेगा, यदि संविदा लिखित रुप में है और संदर्भ ऐसा है जो उस मध्यस्थम् खण्ड को संविदा का भाग बनाता है। *एम.आर. इंजीनियर्स एंड कॉन्ट्रैक्टर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम सोम दत्त बिल्डर्स लिमिटेड* [31] में अधिनियम की धारा 7 (5) के वास्तविक दायरे के संबंध में विस्तृत रुप से विचार किया गया है।

78. स्टाम्प अधिनियम की धारा 3 (क) के अंतर्गत नि:संदेह यह निहित है कि अनुसूची में वर्णित हर लिखित जो किसी व्यक्ति के द्वारा पहले ही निष्पादित नहीं की गयी है, बल्कि 1899 की जुलाई के प्रथम दिन को या उसके पश्चात भारत में निष्पादित की गयी, शुल्क से प्रभार्य है। धारा 3 के खंड (ग) के अंतर्गत भारत से बाहर किसी दस्तावेज़ का 'निष्पादन' भी शुल्क से प्रभार्य है। स्टाम्प अधिनियम की धारा 17 के अंतर्गत भारत में निष्पादित दस्तावेजों के संबंध में, उन पर निष्पादन से पहले या उसी समय स्टाम्पित किये जाएगें। न्यायमूर्ति हृषिकेश रॉय का तर्क है कि अधिनियम की धारा 7 में परिभाषित मध्यस्थम् करार को स्टाम्प शुल्क के लिए प्रभार्य होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि स्टाम्प शुल्क केवल स्टाम्प अधिनियम के तहत लिखतों पर देय है, जिन्हें निष्पादित किया जाता है। स्टाम्प अधिनियम में 'निष्पादित' शब्द को 'हस्ताक्षरित' अर्थ के रुप में परिभाषित किया गया है ।

79. अधिनियम की धारा 7 (3) (ख) के अंतर्गत पत्रों के आदान–प्रदान, टेलेक्स, तार या दूरसंचार के ऐसे अन्य साधनों में जिसमें इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से संचार शामिल हैं जो करार के अभिलेख की व्यवस्था करते हैं, अधिनियम की धारा 7(3) के अंतर्गत एक लिखित रूप में मध्यस्थम् करार का गठन करेगा। हम देख सकते हैं कि स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 का परंतुक (ग) इस प्रकार हैः

> "(ग) जहां कि किसी प्रकार कोई संविदा या करार दो या अधिक पत्रों से मिलकर बने पत्र व्यवहार द्वारा प्रभावी होता है और पत्रों में से किसी एक पर उचित स्टाम्प लगा है, वहां उस संविदा या करार की बाबत यह समझा जाएगा कि वह सम्यक रुप से स्टाम्पित है ;"

80. इस प्रकार, स्टाम्प अधिनियम के अंतर्गत दो या दो से अधिक पत्रों के माध्यम से पत्राचार के माध्यम से बनाए जाने वाले संविदा या करार आता है। फिर

3131 (2009) 7 एस सी सी 696

यह पर्याप्त है कि किसी भी पत्र पर उचित स्टाम्प लगा हो। यहां तक कि इस आधार पर भी आगे बढ़ना कि एक मध्यस्थम् करार पत्रों में निहित है और उस पर हस्ताक्षर किए गए हैं और इसलिए, स्टाम्प अधिनियम के अर्थ के भीतर निष्पादित किया जाता है, तो वह स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 की परिधि में आएगा।

81. हम ध्यान देते हैं कि दो विद्वान न्यायाधीशों की एक पीठ ने *गोविंद रबर लिमिटेड बनाम लूइड्स ड्रेफस कमोडिटीज एशिया प्राइवेट लिमिटेड* [32] में दिए गए निर्णय में एक मध्यस्थम् करार के हस्ताक्षरित होने की आवश्यकता के बारे में कहा गया ;

> 15. उपरोक्त प्रावधानों के अवलोकन से पता चलेगा कि मध्यस्थम् करार का गठन करने के लिए, सभी पक्षों द्वारा हस्ताक्षर किए जाने की आवश्यकता नहीं है। अधिनियम की धारा 7 (3) में प्रावधान है कि मध्यस्थम् करार लिखित रूप में होगा, जो एक अनिवार्य आवश्यकता है। धारा 7 (4) में कहा गया है कि मध्यस्थम् करार लिखित रूप में होगा, यदि यह सभी पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित दस्तावेज है। लेकिन धारा 7 (4) के खंड (ख) और (ग) के अवलोकन से पता चलेगा कि एक लिखित दस्तावेज जिस पर पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए जा सकते हैं, वह मध्यस्थम् करार हो सकता है। धारा 7 (4) (ख) में प्रावधान है कि एक मध्यस्थम् करार वह भी हो सकता है जो पत्रों के आदान–प्रदान, टेलेक्स, तार या दूरसंचार के ऐसे अन्य साधनों में जिसमें इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से संचार शामिल हैं जो करार के अभिलेख की व्यवस्था करते हैं।
>
> 16. प्रावधानों को पढ़ने पर यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि एक मध्यस्थम् करार पर भले ही लिखित रूप में पक्षों द्वारा हस्ताक्षर करने की आवश्यकता न हो, यदि करार के अभिलेख की व्यवस्था पत्रों के आदान–प्रदान, टेलेक्स, तार या दूरसंचार के अन्य साधनों में किया गया हो । धारा 7 (4) (ग) में प्रावधान है के तहत एक मध्यस्थम् करार हो सकता है जिसमें दावे और प्रतिरक्षा के कथनों के आदान–प्रदान में, जिनमें करार की विद्यमानता का एक पक्षकार द्वारा अभिकथन किया गया है और दूसरे पक्षकार द्वारा उसमें इंकार नहीं किया गया है। यदि यह प्रथम दृष्टया दिखाया जा सकता है कि पक्षकार सहमति में हैं, तो केवल एक पक्ष द्वारा करार पर हस्ताक्षर नहीं करने का तथ्य उसे करार के तहत दायित्व से मुक्त नहीं कर सकता है। ई–कॉमर्स के वर्तमान दिन में, इंटरनेट खरीदी, टेली खरीद, इंटरनेट पर और संविदा के मानक रूपों में टिकट बुकिंग के मामलों में, नियम और शर्तों पर सहमति होती है। ऐसे करार में, यदि पक्षों की पहचान स्थापित हो जाती है, और करार का एक अभिलेख होता है तो यह एक मध्यस्थम् करार बन जाता है यदि पक्षों के बीच सहमति दर्शित करने के संबंध में एक मध्यस्थता खंड होता है। इसलिए, हस्ताक्षर धारा

32 32(2015) 13 एससीसी 477

7 (4) (ख) या 7 (4) (ग) या अधिनियम की धारा 7 (5) के तहत एक औपचारिक आवश्यकता नहीं है।

82. जब धारा 7 (4) (ग) की बात आती है, तो लिखित रूप में एक मध्यस्थम् करार के रूप में जो गठित किया जाता है, वह दावे और प्रतिरक्षा के कथनों के आदान–प्रदान में, जिनमें करार की विद्यमानता का एक पक्षकार द्वारा अभिकथन किया गया है और दूसरे पक्षकार द्वारा उसमें इंकार नहीं किया गया है। हालाँकि 'एक ऐसा करार' होना चाहिए, जिसके अस्तित्व का आरोप निराधार है। चूंकि, धारा 7 (1) एक मध्यस्थम् करार को एक के रूप में परिभाषित करती है, जिसके तहत पक्षकार 'सभी' या 'कुछ विवाद' प्रस्तुत करते हैं, जो उत्पन्न हुए हैं या उत्पन्न होंगे, ऐसे करार का अस्तित्व होने का आरोप लगाया जाना चाहिए और आरोप को अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। इस तरह के करार के गठन का परीक्षण अनिवार्य रूप से अनिवार्य आवश्यकताओं के संदर्भ में किया जाना चाहिए, जैसे कि संविदा करने की क्षमता और स्वस्थचित्त की उपस्थिति।

83. हम जो कुछ भी अभिनिर्धारित कर रहे हैं, वह यह है कि एक मध्यस्थम् करार को धारा 7 (1) की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए और इसलिए, यह एक करार होना चाहिए। एक करार के बिना, मध्यस्थम् का कोई संदर्भ नहीं हो सकता है। जबकि न्यायमूर्ति हृषिकेश रॉय का यह कहना सही है कि संविदा अधिनियम की धारा 10 मौखिक करार को मान्यता देती है और एक लिखित करार एक वैध मध्यस्थम् करार के लिए एक अनिवार्य शर्त है, संविदा अधिनियम की धारा 10 के दूसरे भाग में यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि पहले भाग में निहित कुछ भी, किसी भी विधि को प्रभावित नहीं करेगा, जिसके लिए, अन्य बातों के साथ–साथ, किसी भी संविदा को लिखित रूप में करने की आवश्यकता होती है। अधिनियम की धारा7 (3) जो इस बात पर जोर देती है कि एक मध्यस्थम् करार लिखित रूप में होना चाहिए, संविदा अधिनियम की धारा 10 के अनुरूप है।

84. हम सोचते हैं कि जब भी कोई मध्यस्थम् करार, जैसा कि अधिनियम की धारा 7 में परिभाषित किया गया है, स्टाम्प अधिनियम के तहत स्टाम्प शुल्क को आकर्षित करता है, तो स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 के प्रावधान आकर्षित होते हैं। जैसा कि *एस. एम. एस. टी एस्टेट्स प्राइवेट लिमिटेड* (उपरोक्त) में अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि एक मध्यस्थम् खंड मध्यस्थम् करार का गठन करता है और लिखत अर्थात जिस लिखत या संविदा में मध्यस्थम् खंड निहित है, वह स्टाम्पित नहीं है, जब यह अन्यथा स्टाम्प शुल्क के लिए उपयुक्त है, तो धारा 33 के प्रावधान और स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 उपयोग में आएगें। अधिनियम की धारा (11) के तहत कार्य करने वाला न्यायालय उनके आवश्यकताओं की अवहेलना करने के लिए स्वतंत्र नहीं है।

85. एक मध्यस्थम् करार, एक लिखत में एक खंड हो सकता है, जो स्टाम्प शुल्क को आकर्षित करता है। ऐसे मामले में न्यायालय धारा 11 के तहत कार्य करते हुए, स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 के तहत कार्य करने के लिए बाध्य है, यदि लिखत स्टाम्पित नहीं है या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगाई गई है। यदि एक मध्यस्थम् करार एक स्वतंत्र करार है और जो स्टाम्प अधिनियम के तहत स्टाम्प शुल्क आकर्षित करता है, तो भी वही स्थिति प्राप्त होती है।

एम. वैल्पिक दृष्टिकोण

86. *गरवारे* (उपरोक्त) में, न्यायालय ने *ड्यूरो फेलगुएरा* (उपरोक्त) के पैराग्राफ–59 को यह पता लगाने के लिए संदर्भित किया कि, उक्त मामले में न्यायालय इस आधार पर आगे बढ़ा कि धारा 11 (6ए) को शामिल करके जिस गड़बड़ी को दूर करने की मांग की गई थी, वह *एस. बी. पी.* (उपरोक्त) और *नेशनल इंश्योरेंस* (उपरोक्त) में निहित थी। हालाँकि, हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि *गरवारे* (उपरोक्त) के पैराग्राफ–18 में, अदालत ने *एस. बी. पी.* (उपरोक्त) के पैराग्राफ–12 का उल्लेख किया है, जिसे हम पहले ही देख चुके हैं और उसके बाद, न्यायालय ने अन्य बातों के साथ–साथ निम्नलिखित रूप में निर्णय दिया है:

> "19. यह देखा जाएगा कि न तो उद्देश्यों और कारणों के विवरण में और न ही विधि आयोग की रिपोर्ट में *एस एम एस टी एस्टेट्स [एस एम एस टी एस्टेट्स (पी) लिमिटेड v.चांदमारी टी कंपनी (पी) लिमिटेड, (2011) 14 एस सी सी 66:(2012) 4 एस सी सी (सिविल) 777]* का कोई उल्लेख है। यह बहुत अच्छे कारण के लिए है कि उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय, धारा 11 के आवेदन पर निर्णय लेते समय, किसी भी तरह से, पक्षों के बीच उत्पन्न होने वाले किसी भी प्रारंभिक प्रश्न का अवधारण नहीं करता है। उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय केवल एक अनिवार्य अधिनियम के प्रावधानों को प्रभावी बना रहा है, जो निःसंदेह राजस्व की रक्षा के लिए है। एस एम एस टी एस्टेट्स [एस एम एस टी एस्टेट्स (पी) लिमिटेड v.चांदमारी टी कंपनी (पी) लिमिटेड, (2011) 14 एस सी सी 66: (2012) 4 एस सी सी (सिविल) 777] ने स्टाम्प अधिनियम में निहित अनिवार्य प्रावधानों को ध्यान में रखा है और उन्हें न्यायिक अधिकारियों पर लागू किया है, जिसमें उच्चतम न्यायालय और धारा 11 के तहत कार्य करने वाला उच्च न्यायालय शामिल होगा। धारा 11 (6–क) पर बारीकी से नज़र डालने से पता चलेगा कि जब उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के द्वारा धारा 11 (4) से 11 (6) के तहत एक आवेदन पर विचार किया जाता है, और एक करार या हस्तांतरण में एक मध्यस्थम् खंड सामने आता है जो स्टाम्पित नहीं है, यह स्टाम्प अधिनियम के प्रावधानों द्वारा आदेश दिया जाता है कि पहले करार या हस्तांतरण पत्र को परिबद्ध किया जाए और यह देखा जाए कि स्टाम्प शुल्क और शास्ति (यदि कोई हो) का भुगतान करार से पहले किया जाता है, तो समग्र रूप से कार्रवाई की जा सकती है। यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि स्टाम्प अधिनियम समग्र रूप से करार या हस्तांतरण पर

लागू होता है। इसलिए, ऐसे करार या हस्तांतरण में निहित मध्यस्थम् खंड को विभाजित करना संभव नहीं है ताकि इसे एक स्वतंत्र अस्तित्व दिया जा सके, जैसा कि प्रतिवादी द्वारा तर्क दिया गया है। रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 और 1996 अधिनियम के सामंजस्यपूर्ण अध्ययन पर कुछ सीमित उद्देश्यों के लिए दिए जा सकने वाले स्वतंत्र अस्तित्व का उल्लेख रवींद्रन, जे. ने एस एम एस टी एस्टेट्स [एस एम एस टी एस्टेट्स (पी) लिमिटेड v.चांदमारी टी कंपनी (पी) लिमिटेड, (2011) 14 एस सी सी 66:(2012) 4 एस सी सी (सिविल) 777] में किया है कि जब किसी अपंजीकृत करार या हस्तांतरण की बात आती है। तथापि, स्टाम्प अधिनियम, जिसमें ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 49 में निहित है, उक्त निर्णय द्वारा समग्र रूप से करार या हस्तांतरण पर लागू होने के लिए अभिनिर्धारित किया गया है, जिसमें उसमें निहित मध्यस्थम् खंड शामिल होगा। अतः यह स्पष्ट है कि धारा 11 (6–क) का प्रवर्तन किसी भी तरह से एस एम एस टी एस्टेट्स में [एस एम एस टी एस्टेट्स (पी) लिमिटेड बनाम चांदमारी टी कंपनी (पी) लिमिटेड, (2011) 14 एस सी सी 66:(2012) 4 एस सी सी (सिविल) 777] के निर्णय के आधार प्रभावित नहीं करता है और ना ही उससे संबंधित है या उससे आगे नहीं जाता है, जो धारा 11 (6–क) के संशोधन के बाद भी लागू है।"

(जोर दिया गया)

87. इसके अलावा, न्यायालय के द्वारा संविदा अधिनियम की धारा 2 (छ) और 2 (ज) का उल्लेख करने के बाद, पैराग्राफ–22 और अंत में, पैराग्राफ–29 पर टिप्पणियां कर रहा है, जिन पर हमने ध्यान दिया है। वास्तव में, पैराग्राफ–30 में, न्यायालय ने उच्च न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों को अस्वीकार कर दिया , जिसमें बॉम्बे उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ का निर्णय *गौतम लैंडस्केप्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम शैलेश एस. शाह*[33] भी शामिल थी, जहां तक कि उच्च न्यायालय के द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अधिनियम की धारा 11 (6 क) को शामिल करने के बाद, धारा 11 (6) के तहत कार्य करने वाले न्यायालय को दस्तावेज़ पर स्टाम्प नहीं लगाने से संबंधित पहलू पर बाध्य होने की आवश्यकता नहीं है।

88. अधिनियम की धारा 11 (6 क), निस्संदेह, न्यायालय को उन क्षेत्रों में भटकने से रोकने पर विचार करती है जो पहले की व्यवस्था के तहत अनुमेय थे, जिसे *नेशनल इंश्योरेंस* (उपरोक्त) में वर्णित *एस बी पी* (उपरोक्त) में निर्धारित किया गया था। यह समझना चाहिए कि जब विधि बनाने वाला विधि में संशोधन करता है तो यह वास्तव में एक बुद्धिमान दृष्टिकोण होगा और विधायिका जिस गड़बड़ी से निपट रही थी, उस गड़बड़ी का पता लगाने के लिए विधि में पूरी तरह से सराहना की

33 33(2019) एससीसी ऑनलाईन बॉम 563

जाएगी। समान रूप से, न्यायालय स्वाभाविक रूप से यह जांच करेगी कि विधि बनाने वाले ने गड़बड़ी के संबंध में क्या अनुतोष दिया है । जैसा कि हम समझते हैं कि गड़बड़ी के संबंध में यह धारणा थी कि न्यायालय, अधिनियम की धारा 5 में निहित सिद्धांत के अनुरूप न्यूनतम हस्तक्षेप की सीमाओं को पार कर रही थीं। दूसरे शब्दों में, यदि हम *नेशनल इंश्योरेंस कंपनी* (उपरोक्त) की कंडिका 22.2 और 22.3 को ध्यान में रखते हैं, तो ऐसा प्रतीत होगा कि वे मध्यस्थम् करार के अस्तित्व से संबंधित प्रश्न से बाहर थे। स्टाम्प अधिनियम एक ही विधि प्रदाता द्वारा पारित एक विधि है। यह एक ऐसी विधि है जिसका उद्देश्य जीवन है और इसलिए इसे लागू किया जाना चाहिए। विधायिका ने जब धारा 11 (6क) को शामिल किया था, तो संभवतः इस बात पर विचार नहीं किया होगा कि न्यायालयों को किसी विधि के निषेधाज्ञा पर आंखें मूंद लेनी चाहिए और उसे पराजित करने की अनुमति देनी चाहिए। हमारे मत अनुसार इस प्रकार एक ऐसी व्याख्या को अपनाना शामिल है जो कानूनों के सामंजस्यपूर्ण निर्माण के सिद्धांत की अनदेखी करेगी।

89. जहां तक *ग्रेट ऑफशोर लिमिटेड* (उपरोक्त) के पैराग्राफ 55 में यह निष्कर्ष है कि चूंकि अधिनियम की धारा 7 मुद्रांकन के लिए निर्धारित नहीं करती है, इसलिए स्टाम्प अधिनियम के तहत स्टाम्पित किये जाने की आवश्यकता नहीं हो सकती है, यह हमारे लिए विधि में सही स्थिति नहीं है। हम इस विचार को स्वीकार करने में समान रूप से असमर्थ हैं कि स्टाम्प शुल्क , अन्य बातों के साथ, एक 'तकनीकी आधार' के रूप में माना जाना चाहिए। हमारा यह भी विचार है कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अन्यथा उक्त पैराग्राफ में लिया गया दृष्टिकोण फिर से सही स्थिति का प्रतिनिधित्व नहीं करता है।

90. इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 5 एक गैर–अस्थिर खंड का प्रावधान करती है। यह अधिनियम में दिए गए प्रावधानों को छोड़कर न्यायिक हस्तक्षेप के खिलाफ प्रावधान करती है। गैर–अस्थिर खंड किसी भी विधि की उपस्थिति के बावजूद ऐसा घोषित करने का इरादा रखता है जो अन्यथा हस्तक्षेप के लिए प्रावधान कर सकता है। हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि स्टाम्प अधिनियम, विशेष रूप से, धारा 33 और 35 के संचालन में कोई भूमिका नहीं होगी। हमारा स्पष्ट मत है कि धारा 5 का उद्देश्य स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 के प्रभाव को हटाना नहीं है। धारा 33 और 35 को प्रभावी बनाने वाली धारा 11 के तहत न्यायालय पर अधिनियम की धारा 5 के विपरीत न्यायिक हस्तक्षेप का आरोप नहीं लगाया जा सकता है।

91. यह किसी का मामला नहीं है कि यदि संविदा जिसमें मध्यस्थम् खंड शामिल है, स्टाम्प अधिनियम के तहत एक लिखत है, तो अधिनियम की धारा 11 के तहत न्यायालय के समक्ष पेश किया जाता है, और यह पाया जाता है कि वह प्रथम दृष्टया स्टाम्पित नहीं है तो धारा 33 और 35 और स्टाम्प अधिनियम के अन्य संबद्ध

प्रावधानों का कोई लाभ नहीं होगा। वास्तव में, *एन. एन. ग्लोबल* (उपरोक्त) में, इस न्यायालय ने कार्य आदेश (मध्यस्थम् खंड वाले संविदा) को परिबद्ध करने का निर्देश दिया गया था। अधिनियम की धारा 11 (6क) जिसमें न्यायालय को यह जांचने की आवश्यकता होती है कि क्या कोई मध्यस्थम् करार मौजूद है, यह आवश्यकता संसद द्वारा *नेशनल इंश्योरेंस* (उपरोक्त) में उजागर किए गए अन्य क्षेत्रों में न्यायालय को भटकने से रोकने के लिए महसूस की गई थी और व्यक्त की गई थी। दूसरे शब्दों में, इस आधार पर कि एक 'अस्टाम्पित करार' मौजूद है तो यह न्यायालय को स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 के तहत विधि के प्रावधानों का पालन करने के अपने वैधानिक कर्तव्य से विचलित नहीं करेगा।

एन. न्यायमित्र आश्चर्य चकित करते हैं

92. इस न्यायालय ने धारा 11 (10) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उच्चतम न्यायालय द्वारा तैयार की गई योजना के अस्तित्व की ओर इशारा किया। योजना की कंडिका 2 (क), अन्य बातों के साथ, इस प्रकार हैः

> "2. अनुरोध प्रस्तुत करना– धारा 11 की उप–धारा (4) या उप–धारा (5) या उप–धारा (6) के तहत मुख्य न्यायाधीश से अनुरोध लिखित रूप में किया जाएगा और इसके साथ संलग्न की जाएगी –
>
> (क) मूल मध्यस्थम् करार या उसकी विधिवत प्रमाणित प्रति;"

93. इसके बाद, जब सुनवाई का अंत होने ही वाला था, तो विद्वान न्यायमित्र ने निम्नलिखित पहलू को न्यायालय के ध्यान में लाया। उन्होंने बताया कि योजना के तहत, आवेदक को केवल मध्यस्थम् करार की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। वह इस न्यायालय के निर्णयों *जुपुडी केशव राव v. पुलवर्थी वेंकट सुब्बाराव और अन्य* [3434] और *हरिओम अग्रवाल* (उपरोक्त) में यह तर्क देने के लिए कि अधिनियम की धारा 11 के स्तर पर न्यायालय द्वारा धारा 33 और 35 को लागू करने पर भी, प्रमाणित प्रति को परिबद्ध नहीं किया जा सकता है, से समर्थन प्राप्त करेंगे। इस प्रकार, उन्होंने यह तर्क देते हुए अपीलार्थी के तर्क को निष्फल करने का प्रयास किया कि अधिकांश मामलों में, चूंकि केवल प्रमाणित प्रतियां दाखिल की जा रही हैं और उन्हें परिबद्ध नहीं किया जा सकता है, और प्रमाणित प्रतिलिपि के आधार पर मध्यस्थ के संदर्भ के बाद, मध्यस्थ कानूनी रूप से, स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 के तहत आवश्यक कार्य करने के लिए सक्षम है, न्यायालय इस पहलू को ध्यान में रख सकता है। इसके बाद, श्री गगन सांघी इंगित करेंगे कि प्रमाणित प्रति में भी, स्टाम्प शुल्क के भुगतान का तथ्य दर्ज किया जाना चाहिए। उक्त पहलू ने वास्तव में *एस एम एस टी एस्टेट* (उपरोक्त) में इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया।

---

34 3434 (1971) 1 एससीसी 545

94. *जुपुडी केशव राव* (उपरोक्त) को यह तर्क देने के लिए संदर्भित किया गया है कि किसी लिखत की प्रति को स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 के उद्देश्य के लिए स्टाम्प अधिनियम के तहत एक लिखत के रूप में नहीं माना जा सकता है। यह बताया गया है कि धारा 33 के तहत एक प्रति को परिबद्ध नहीं किया जा सकता है। इसलिए, धारा 33, जो एक अस्टाम्पित लिखत को परिबद्ध करने का आदेश देती है, एक प्रमाणित प्रति पर लागू नहीं होगी, जिसे योजना के तहत प्रस्तुत करने की अनुमति है। *जुपुडी केशव राव* (उपरोक्त) कंडिका 13 एवं 14 पर निर्भरता प्रस्तुत की गयी है–

> "13. धारा 35 का पहला अंग स्पष्ट रूप से शुल्क के साथ प्रभार्य किसी भी लिखत को साक्ष्य से बाहर कर देता है जब तक कि उस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई जाती है। इसका दूसरा अंग जो लिखत पर कार्रवाई करने से संबंधित है, स्पष्ट रूप से ऐसे लिखत के किसी भी द्वितीयक साक्ष्य को बाहर कर देगा, क्योंकि इस तरह के साक्ष्य को तब ग्राह्य करने की अनुमति दी जाएगी जब मूल रूप से शुल्क के साथ प्रभार्य लिखत पर स्टाम्प नहीं लगाई गई थी या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगाई गई थी, यह उस दस्तावेज के समान होगा जिस पर विधि अनुसार या साक्ष्य प्राप्त करने हेतु अधिकृत व्यक्ति द्वारा कार्यवाई की जा रही थी। परंतुक (क) केवल तभी लागू होता है जब मूल लिखित वास्तव में न्यायालय के समक्ष होता है और दस्तावेज़ पर निर्भर करने की इच्छा रखने वाले पक्ष द्वारा शस्ति के साथ स्टाम्प शुल्क में कमी का भुगतान किया जाता है। स्पष्ट रूप से अस्टाम्पित दस्तावेज़ की सामग्री के मौखिक साक्ष्य के रूप में या भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 के तहत आने वाली इसकी प्रति से द्वितीयक साक्ष्य उस परंतुक की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करेगा जो प्राधिकरण को दस्तावेज के अलावा साक्ष्य में कुछ और प्राप्त नहीं करने का आदेश देता है। धारा 25 किसी लिखत की किसी भी प्रति से संबंधित नहीं है और एक पक्ष को केवल उस दस्तावेज़ पर भरोसा करने की अनुमति दी जा सकती है जो धारा 35 के उद्देश्य के लिए एक लिखत है। "धारा 2 (14) में "लिखत" को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि उसके अंतर्गत ऐसा प्रत्येक दस्तावेज है, जिसके द्वारा कोई अधिकार या दायित्व सृष्ट, अंतरित, सीमित, विस्तारित या अभिलेखबद्ध किया जाता है या किया जाना तात्पर्यित है । दस्तावेज की एक प्रति को स्टाम्प अधिनियम के उद्देश्य के लिए एक लिखत के रूप में शामिल करने की कोई गुंजाइश नहीं है ।
>
> 14. यदि धारा 35 केवल मूल लिखतों से संबंधित है और प्रतियों से नहीं हैं, तो धारा 36 की व्याख्या इस तरह से नहीं की जा सकती है कि किसी लिखत के द्वितीयक साक्ष्य को स्वीकार कर इसका लाभ दिया जाए। धारा 36 में शब्द "एक लिखत" का वही अर्थ होना चाहिए जो धारा 35 में है। विधायिका केवल उन मामलों में धारा 35 के सख्त प्रावधानों से पीछे हटती है, जहां किसी वाद

या कार्यवाही के प्रारंभिक चरण में मूल लिखत को बिना किसी आपत्ति के साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया था। दूसरे शब्दों में, हालांकि आपत्ति दस्तावेज़ पर अपर्याप्त स्टाम्प पर आधारित है, एक पक्ष जिसे इसके प्रस्तुत करने पर आपत्ति करने का अधिकार है, उसे दस्तावेज़ के पहली वर्जन पेश करने पर ऐसा करना चाहिए। एक वर्जन दस्तावेजी साक्ष्य पर आपत्ति उठाने का समय निकल जाने के बाद, उसी समान आधार पर कार्यवाही के बाद के स्तर पर कोई आपत्ति नहीं उठाई जा सकती है। लेकिन यह किसी भी तरह से धारा 36 की प्रयोज्यता को किसी ऐसे दस्तावेज़ के तथ्यों के प्रमाण में प्रस्तुत या प्रस्तुत किए जाने की मांग वाले द्वितीयक साक्ष्य पर लागू नहीं करता है, जो अस्टाम्पित हो या अपर्याप्त रूप से स्टाम्पित हो।"

(जोर दिया गया)

95. *जुपुडी केशव राव* (उपरोक्त) में, अपीलार्थी ने पट्टे के दस्तावेज़ को साबित करने के लिए मौखिक साक्ष्य पर भरोसा किया, जिस पर अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगी थी। उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि पट्टा के करार को साबित करने के लिए मौखिक साक्ष्य पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है। मुख्य प्रश्न, जो उत्पन्न हुआ, वह यह था कि क्या पट्टा देने के लिए किये गये लिखित करार के द्वितीयक साक्ष्य को स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 और 36 के तहत प्रतिबंधित किया गया था। न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम के एक सर्वेक्षण पर पाया कि यह साक्ष्य में दस्तावेजों की स्वीकार्यता से निपटने के लिए अभिप्रेत नहीं है, जिन पर स्टाम्प अधिनियम के तहत स्टाम्प लगाने की आवश्यकता थी। इसके बाद न्यायालय ने निर्णय की कंडिका–13 और 14 में जो किया गया था, उस पर रोक लगा दी। अधिनियम की धारा 35 पर विचार करते हुए, न्यायालय ने अन्य बातों के साथ–साथ यह अभिनिर्धारित किया कि 'स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 का दूसरा अंग, जो लिखत पर कार्य करने से संबंधित है, स्पष्ट रूप से ऐसे लिखत के किसी भी द्वितीयक साक्ष्य को बंद कर देगा, ताकि इस तरह के साक्ष्य को प्रवेश करने की अनुमति दी जा सके, जब मूल, जो शुल्क के साथ स्वीकार्य रूप से प्रभार्य था, उस पर स्टाम्प नहीं लगाई गई थी या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगाई गई थी, तो यह उस दस्तावेज के समान होगा जिस पर विधि या प्राधिकरण द्वारा साक्ष्य प्राप्त करने के लिए कार्रवाई की जा रही थी। परंतुक (क) केवल तभी लागू होता है जब मूल दस्तावेज वास्तव में न्यायालय के समक्ष होता है और दस्तावेज़ पर भरोसा करने की इच्छा रखने वाले पक्ष द्वारा शास्ति के साथ स्टाम्प की कमी का भुगतान किया जाता है। इस प्रकार, न्यायालय ने कहा कि 'स्टाम्प अधिनियम के उद्देश्य के लिए एक दस्तावेज की प्रति को एक लिखत के रूप में शामिल करने की कोई गुंजाइश नहीं है'। न्यायालय ने कंडिका–14 में यह भी पाया कि स्टाम्प अधिनियम की धारा 36, जो एक पक्ष को साक्ष्य में बाद में आपत्ति उठाने से प्रतिबंधित करती है, जिसने बिना स्टाम्प वाले या

अपर्याप्त रूप से स्टाम्प वाले दस्तावेज को स्वीकार किये जाने पर आपत्ति नहीं उठाई थी, वह द्वितीयक साक्ष्य पर लागू नहीं होता है।

96. *हरिओम अग्रवाल* (उपरोक्त) मामले में, तीन विद्वान न्यायाधीशों की एक पीठ, उच्च न्यायालय के विवादित आदेश पर विचार कर रही थी, जिसके द्वारा, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि मूल करार की छायाप्रति को न तो परिबद्ध किया जा सकता है और न ही इसे द्वितीयक साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। *जुपुडी केशव राव* (उपरोक्त) का अनुसरण करने के बाद, न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया:

> "10. इस न्यायालय के निर्णयों और अधिनियम की धारा 33,35 और 2 (14) के एक साधारण पठन से यह स्पष्ट है कि एक लिखत जिस पर सम्यक रुप से स्टाम्प नहीं लगाई गई है, उसे परिबद्ध किया जा सकता है और जब ऐसे लिखत के लिए आवश्यक शुल्क और शास्ति का भुगतान किया गया है तो इसे स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 के तहत साक्ष्य के रूप में लिया जा सकता है। धारा 33 या 35 लिखत की किसी भी प्रति से संबंधित नहीं हैं और पक्ष को केवल उस दस्तावेज़ पर भरोसा करने की अनुमति दी जा सकती है जो धारा 2 (14) के अर्थ के भीतर एक लिखत है। स्टाम्प अधिनियम के प्रयोजनों के लिए दस्तावेज़ की प्रति को शामिल करने की कोई गुंजाइश नहीं है। विधि अब बिना किसी संदेह के सुस्थापित हैं कि दस्तावेज़ की प्रति को परिबद्ध करके मान्य नहीं किया जा सकता है और इसे स्टाम्प अधिनियम, 1899 के तहत द्वितीयक साक्ष्य के रूप में ग्राह्य नहीं किया जा सकता है।"
>
> (जोर दिया गया)

97. ऐसा प्रतीत होता है कि योजना, मध्यस्थम् करार की एक प्रमाणित प्रति के संबंध में है और यदि मध्यस्थम् करार संविदा का एक हिस्सा है, जिस पर या तो स्टाम्प नहीं लगाई गई है या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगाई गई है और चूंकि, इसे स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के तहत परिबद्ध नहीं किया जा सकता है, तो इसे मान्य नहीं किया जा सकता है। न्यायालय को केवल इस बात पर गौर करना है कि क्या कोई मध्यस्थम् करार मौजूद है।

98. इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस योजना के तहत एक आवेदक मूल या प्रमाणित प्रति प्रस्तुत कर सकता है। प्रमाणित प्रतिलिपि क्या है? एक प्रमाणित प्रति को भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 76 (इसके बाद संक्षेप में 'साक्ष्य अधिनियम' के रूप में संदर्भित) के आलोक में समझा जाना चाहिए। वह इस प्रकार है:

> "76. लोक दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियां – हर लोक ऑफिसर, जिसकी अभिरक्षा में कोई ऐसी लोक दस्तावेज है, जिसके निरीक्षण करने का किसी भी

व्यक्ति को अधिकार है, मांग किये जाने पर उस व्यक्ति को उसी प्रति उसके लिए विधिक फीस चुकाये जाने पर, प्रति के नीचे इस लिखित प्रमाण–पत्र के सहित देगा कि वह, यथास्थिति, ऐसी दस्तावेज की या उसके भाग की शुद्ध प्रति है तथा ऐसा प्रमाण–पत्र ऐसे ऑफिसर द्वारा दिनांकित किया जायेगा और उसके नाम और पदाभिधान से हस्ताक्षरित किया जायेगा तथा जब कभी ऐसा ऑफिसर विधि द्वारा किसी मुद्रा का उपयोग करने के लिए प्राधिकृत है तब मुद्रायुक्त किया जायेगा, तथा इस प्रकार प्रमाणित ऐसी प्रतियां प्रमाणित प्रतियां कहलायेंगी । – हर लोक ऑफिसर, जिसकी अभिरक्षा में कोई ऐसी लोक दस्तावेज है, जिसके निरीक्षण करने का किसी भी व्यक्ति को अधिकार है, मांग किये जाने पर उस व्यक्ति को उसी प्रति उसके लिए विधिक फीस चुकाये जाने पर, प्रति के नीचे इस लिखित प्रमाण–पत्र के सहित देगा कि वह, यथास्थिति, ऐसी दस्तावेज की या उसके भाग की शुद्ध प्रति है तथा ऐसा प्रमाण –पत्र ऐसे ऑफिसर द्वारा दिनांकित किया जायेगा और उसके नाम और पदाभिधान से हस्ताक्षरित किया जायेगा तथा जब कभी ऐसा ऑफिसर विधि द्वारा किसी मुद्रा का उपयोग करने के लिए प्राधिकृत है तब मुद्रायुक्त किया जायेगा, तथा इस प्रकार प्रमाणित ऐसी प्रतियां प्रमाणित प्रतियां कहलायेंगी ।" स्पष्टीकरण – जो कोई ऑफिसर पदीय कर्तव्य के मामूली अनुक्रम में ऐसी प्रतियां परिदान करने के लिए प्राधिकृत है, वह इस धारा के अर्थ के अंतर्गत ऐसी दस्तावेजों की अभिरक्षा रखता है, यह समझा जाएगा ।"

99. यह अनिवार्य रूप से हमें साक्ष्य अधिनियम की धारा 74 पर ले जाएगा, जो परिभाषित करता है कि ' 'लोक दस्तावेज' क्या है। धारा 74 इस प्रकार हैः

"74. लोक दस्तावेज – निम्नलिखित दस्तावेज लोक–दस्तावेज हैं–

(1) वे दस्तावेज जो–

(i) प्रभुत्व संपन्न प्राधिकारी के;

(ii) शासकीय निकायों और अधिकरणों के ; तथा

(iii) भारत के किसी भाग के या कामनवेल्थ के या किसी विदेश के विधायी, न्यायिक तथा कार्यपालक लोक आफिसरों के ; कार्यों के रुप में या कार्यों के अभिलेख के रुप में हैं ।

(2) किसी राज्य में रखे गये निजी दस्तावेजों के लोक अभिलेख । "

100. हम पहले ही देख चुके हैं कि स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 किसी लिखत के पंजीकरण पर तब तक रोक लगाती है जब तक कि उस पर विधिवत स्टाम्प न लग जाए।

101. साक्ष्य अधिनियम, स्टाम्प अधिनियम और रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के एक दूसरे पर पड़ने वाले प्रभाव को निम्नानुसार समझा जाना चाहिएः

एक लिखत के संबंध में, जिसे भारत में निष्पादित किया जाता है और जिस पर स्टाम्प लगाई जा सकती है, तो स्टाम्पित किये जाने की कार्यवाही लिखत के निष्पादन के समय या उसके पहले की जाना चाहिए । लिखत पर स्टाम्प लगने के बाद इसे रजिस्ट्रीकरण के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17 दस्तावेजों के लिए प्रावधान करती है, जो अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरण योग्य हैं। धारा 18 संबंधित व्यक्तियों के विकल्प पर अन्य दस्तावेजों के रजिस्ट्रीकरण की अनुमति देती है। एक लिखत, जो पंजीकृत है, अनिवार्य रूप से शामिल है, इस तरह से पंजीकृत होने से पहले उस पर विधिवत स्टाम्प लगाई जानी चाहिए। स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए यह परिणाम अपरिहार्य है। वास्तव में, एक लिखत, जिस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई गई है और जिसे रजिस्ट्रीकरण प्राधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया गया है, उसे स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के तहत परिबद्ध किया जा सकता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 74 सहपठित धारा 76 में प्रमाणित प्रतियां जारी करने का प्रावधान है। प्रमाणित प्रतियां केवल लोक दस्तावेजों के संबंध में जारी की जा सकती हैं। साक्ष्य अधिनियम की धारा 62 अन्य बातों के साथ–साथ प्राथमिक साक्ष्य को न्यायालय के निरीक्षण के लिए प्रस्तुत किए गए दस्तावेज़ के रूप में परिभाषित करती है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 के आधार पर 'द्वितीयक साक्ष्य' से अभिप्रेत है और उसके अंतर्गत आते हैं, इसमें अन्य बातों के साथ–साथ 'एतस्मिन पश्चात अंतर्विष्ट उपबंधों के अधीन दी हुई प्रमाणित प्रतियां'। धारा 63 में निर्दिष्ट 'एतस्मिन पश्चात अंतर्विष्ट' उपबंधों को धारा 74 सहपठित धारा 76 के रूप में समझा जाना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि 'किसी राज्य में रखे गये निजी दस्तावेजों के लोक अभिलेख' की एक प्रमाणित प्रति दी जा सकती है। इस प्रकार, यदि दो निजी पक्षों के बीच एक विक्रय विलेख पंजीकृत होने के लिए आता है, तो मूल दस्तावेज प्रस्तुत करने के बजाय, विक्रय विलेख की एक प्रमाणित प्रति, द्वितीयक साक्ष्य के रूप में स्वीकार हो सकती है और साक्ष्य अधिनियम की धारा 76 के तहत उसकी एक प्रमाणित प्रति मांगी जा सकती है और जारी की जा सकती है। धारा 74 में "किसी राज्य में रखे गये निजी दस्तावेजों के लोक अभिलेख' केवल उन दस्तावेजों तक ही सीमित नहीं है, जो रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के तहत पंजीकृत हैं। एक निजी दस्तावेज़, जिसे लोक अभिलेख के रूप में रखा जाता है, एक लोक दस्तावेज़ के रूप में हो सकता है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 को ध्यान में रखते हुए, एक लिखत, जिस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई गई है, यदि इसे किसी लोक अधिकारी के समक्ष पेश किया जाता है, तो यह स्टाम्प अधिनियम में दिए गए प्रावधानों के अनुसार परिबद्ध करने और उससे निपटने के लिए उत्तरदायी होगा। आइए हम एक ऐसे मामले को मान लें जिसमें एक संविदा, जिसमें एक मध्यस्थम् खंड शामिल है, पंजीकृत है। जैसा कि हमने देखा है, यदि संविदा, जिसमें मध्यस्थम् खंड निहित है, स्टाम्प शुल्क

के लिए उपयुक्त है, तो दस्तावेज का रजिस्ट्रेशन विधिवत स्टाम्प लगाए बिना नहीं किया जा सकता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए *एस एम एस टी एस्टेट्स* (उपरोक्त) में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि 'यदि प्रस्तुत किया गया दस्तावेज करार/संविदा/लिखत की प्रमाणित प्रति है, जिसमें मध्यस्थम् खंड है, तो उसे यह खुलासा करना चाहिए कि स्टाम्प शुल्क का भुगतान मूल पर किया गया है'। यह फिर से इस कारण से है कि एक प्रमाणित प्रतिलिपि दस्तावेज़ की एक वास्तविक प्रतिलिपि है। दस्तावेज़ को प्रमाणित करने वाले अधिकारी को लोक दस्तावेज़ की अभिरक्षा रखने वाला व्यक्ति होना चाहिए। निजी दस्तावेज़ों के लोक अभिलेख के मामले में लोक दस्तावेज़, एक पंजीकृत दस्तावेज़ के मामले में, अनिवार्य रूप से दस्तावेज़ पर पंजीकरण से पहले स्टाम्प लगाना शामिल होगा। मुख्य न्यायाधीश द्वारा बनाई गई योजना, पक्षकार को मूल प्रस्तुत करने के बोझ से राहत देने के लिए एक विधिवत प्रमाणित प्रति पेश करने की अनुमति देती है, लेकिन केवल प्रमाणित प्रति पेश करने पर विचार किया जाता है, जो स्टाम्प शुल्क के भुगतान के तथ्य को विधिवत प्रकट करता है। योजना की कंडिका–5 पर भी ध्यान देना उचित होगा। इसमें लिखा हैः

> "5. अधिक जानकारी की मांग – मुख्य न्यायाधीश या कंडिका 3 के तहत उनके द्वारा नामित व्यक्ति या संस्था इस योजना के तहत अनुरोध करने वाले पक्ष से आगे की जानकारी या स्पष्टीकरण मांग सकती है।"

102. इसलिए, ऐसा नहीं है कि अधिनियम की धारा 11 के तहत किसी आवेदन पर विचार करने वाले न्यायाधीश के पास जानकारी या स्पष्टीकरण मांगने का अधिकार नहीं है ताकि यह संतुष्ट किया जा सके कि प्रमाणित प्रति *एस एम एस टी एस्टेट* (उपरोक्त) में निर्धारित आवश्यकता को पूरा करती है कि देय स्टाम्प शुल्क का भुगतान किया गया है।

103. हम पहले ही साक्ष्य अधिनियम की योजना का संकेत दे चुके हैं जहाँ तक यह द्वितीयक साक्ष्य की ग्राह्यता से संबंधित है। हमने यह भी पाया है कि यह योजना बिना किसी और चीज के, द्वितीयक साक्ष्य के एक प्रकार को प्रस्तुत करने के लिए कहती है, अर्थात् मध्यस्थम् करार की प्रमाणित प्रति। भले ही दोनों पक्षों के बीच एक मध्यस्थम् करार साक्ष्य अधिनियम की धारा 74 (सी) के तहत एक लोक दस्तावेज बन जाता है, इस आधार पर कि यह एक लोक अभिलेख है, एक पंजीकृत दस्तावेज होने के अलावा और इस आधार पर कि इसे किसी भी लोक अधिकारी के सामने पेश किया गया था और यह एक निजी दस्तावेज का लोक अभिलेख बन गया था, स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के प्रावधान और अन्य संबंधित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, इस तरह के दस्तावेज़ को फिर से परिबद्ध कर लिया जाता, जब तक कि इसे मूल रूप से विधि अनुसार स्टाम्प नहीं लगाई गई होती। दूसरे शब्दों में, यदि अधिनियम की धारा 11 के तहत अनुरोध के साथ एक प्रमाणित प्रति प्रस्तुत की

जाती है, जिसे एक दस्तावेज के रूप में माना जाता है, जिस पर धारा 11 के तहत आवेदन को बनाए रखा जा सकता है, तो इसे अनिवार्य रूप से इस आवश्यकता का पालन करना चाहिए कि वह मूल के संबंध में भुगतान किए गए स्टाम्प शुल्क की घोषणा करे।

104. किसी लिखत की प्रति को प्रस्तुत करने से, धारा 33 के तहत प्रतिलिपि को परिबद्ध नहीं किया जा सकता है, जो परिबद्ध करने को अनिवार्य करती है, केवल मूल के संबंध में लागू होती है, जिसे अकेले लिखत के रूप में स्टाम्प अधिनियम की धारा 2 (14) के तहत माना जाता है। हमें *जुपुडी केशव राव* (उपरोक्त) और *हरिओम अग्रवाल* (ऊपर) के फैसले के संदर्भ को समझना चाहिए कि एक पक्ष एक प्रति पेश करके और उसे परिबद्ध करके और शुल्क और शस्ति का भुगतान करके किसी दस्तावेज को 'मान्य' नहीं कर सकता है। वास्तव में, जैसा कि *जुपुडी केशव राव* (उपरोक्त) के कंडिका–13 में देखा गया है, न्यायालय को किसी दस्तावेज की प्रति पर कार्रवाई करने के लिए आग्रह नहीं किया जा सकता है, जिस पर अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगी हो। इस प्रकार, ऐसी प्रति, जबकि इसे धारा 33 के तहत परिबद्ध नहीं किया जा सकता है, इस पर धारा 35 के तहत भी कार्रवाई नहीं की जा सकती है।

ओ. स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35; कार्यवाही करने के लिए न्यायालय या मध्यस्थ ?

105. स्टाम्प शुल्क के भुगतान से संबंधित मुद्दे को मध्यस्थ को सौंपने के विवेक के संबंध में वर्जन में काफी बहस हुई थी। एक ओर, प्रत्यर्थी के विद्वान वकील द्वारा समर्थित विद्वान न्यायमित्र यह प्रचार करेंगे कि अधिनियम के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, और विशेष रूप से, अधिनियम की धारा 5, न्यायिक हस्तक्षेप को प्रतिबंधित करती है, सिवाय इसके कि स्टाम्प शुल्क का भुगतान न करने और भुगतान की जाने वाली राशि से संबंधित प्रश्न, मध्यस्थ द्वारा निपटाए जाने में सक्षम हैं। न्यायालय की यह चिंता कि राजस्व के हित की रक्षा की जाती है, मध्यस्थम् कार्यवाही को तेज करने की अत्यधिक आवश्यकता के साथ सबसे अच्छी तरह से संतुलित है और यह सुनिश्चित करके कि मध्यस्थ मामले को देखेगा और यह सुनिश्चित करेगा कि राजस्व का हित खतरे में न पड़े। दूसरी ओर, अपीलार्थी और मध्यस्थ यह इंगित करेंगे कि न्यायालय स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 में निहित विधि के आदेश की उपेक्षा नहीं कर सकता है और उक्त तर्ज पर इस न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण केवल विधि की अवहेलना को प्रोत्साहित करेगा, जबकि, यदि न्यायालय स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 के आदेश का पालन करता है और *गरवारे* (उपरोक्त) में जो निर्धारित किया गया है उसका पालन करता है, तो न केवल विधि का पालन किया जाता है, बल्कि जब मामला मध्यस्थ

तक पहुंचता है, तो मुद्दे को शांत कर दिया जाता है। इस तरह का दृष्टिकोण स्टाम्प अधिनियम के अनुरूप आने वाले व्यक्तियों को भी प्रोत्साहित करेगा।

106. हम अपीलार्थी के तर्क में योग्यता देखते हैं। विधि के अनुरूप कार्य करने वाले न्यायालय के अलावा, जब वह स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 का पालन करता है, जहां यह लागू होता है, हमारे विचार में, न्यायालय की निगरानी में, चाहे वह उच्च न्यायालय हो या उच्चतम न्यायालय, स्टाम्प शुल्क से संबंधित मुद्दा, ऐसे मामले में जहां कोई स्टाम्प शुल्क का भुगतान नहीं किया जाता है, सबसे अच्छा समाधान है।

107. सवाल इस प्रकार उठेगाः

i. मध्यस्थम् खंड वाले एक दस्तावेज़ पर कोई स्टाम्प शुल्क नहीं हो सकता है। हम पहले ही देख चुके हैं कि एक मध्यस्थम् करार पर भी, अपने आप, स्टाम्प लगाने की आवश्यकता हो सकती है, जैसा कि विद्वान न्यायमित्र द्वारा प्रस्तुत किया गया है। लेकिन फिर न्यायालय इस आधार पर आगे बढ़ सकता है कि स्टाम्प शुल्क की राशि, जो एक मध्यस्थम् खंड में निहित मध्यस्थम् करार में बहुत कम होगी, इस तरह के करार पर स्टाम्प नहीं लगने की बहुत कम संभावना है। इसलिए, न्यायालय को इस बात पर विचार करना है कि क्या जब संविदा, जिसमें मध्यस्थम् खंड निहित है, पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगी है, तो स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 के तहत कार्य करना न्यायालय का कर्तव्य बन जाता है।

ii. हम पहले ही धारा 11 के तहत की गई समीक्षा की प्रकृति के बारे में इस न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचारों से युक्त पृष्ठभूमि का संकेत दे चुके हैं, जिसके कारण धारा 11 (6क) को शामिल किया गया। संसद का स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 11 (6) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए अत्यधिक समीक्षा करने वाले न्यायालय से निपटने का इरादा था। यह अत्यधिक न्यायिक हस्तक्षेप को रोकने के लिए था, जो अधिनियम की धारा 5 में निहित सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए था कि संसद ने हस्तक्षेप किया और संशोधन को अधिनियमित किया जिसके परिणामस्वरूप धारा 11 (6क) को जोड़ा गया। संसद *एस एम एस टी एस्टेट्स* (उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से अवगत थी, अर्थात्, यदि मध्यस्थम् करार पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई गई थी, तो इसे परिबद्ध किया जाना था और उसमें दिए गए प्रावधान के अनुसार निपटा जाना था। स्टाम्प अधिनियम का आदेश धारा 11 (6क) में निहित विधायी आदेश के साथ विरोधाभाषी नहीं था, अर्थात् यह जांचने के लिए कि क्या कोई मध्यस्थम् करार मौजूद था। वास्तव में, इस आधार पर कार्यवाही करते हुए कि मध्यस्थम् करार वाले संविदा, जिस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगी है, को विधि में मौजूद कहा जा सकता है, यह अभी

भी स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 के आदेश का पालन करने के लिए धारा 11 के तहत न्यायालय पर डाले गए कर्तव्य को समाप्त नहीं करेगा। दूसरे शब्दों में, उपरोक्त दृष्टिकोण पर, धारा 11 (6क) के तहत आदेश का पालन करते हुए, न्यायालय भी उसी समय स्टाम्प अधिनियम में निहित समान रूप से बाध्यकारी आदेश का पालन करने से विचलित नहीं हो सकता था।

iii. यह प्रश्न आगे उठता है कि क्या धारा 11 के तहत न्यायालय की शक्ति को देखते हुए, केवल प्रथम दृष्टया, मध्यस्थम् करार के अस्तित्व का पता लगाने के लिए, यह न्यायालय को एक संदर्भ और नियुक्ति करने में सक्षम बनाएगा और दस्तावेज़ को परिबद्ध करने के मुद्दे को मध्यस्थ के पास भेज देगा।

iv. न्यायालय द्वारा धारा 11 के तहत स्टाम्प अधिनियम के आकस्मिक वैधानिक आदेश के अनुरूप कार्य करने के लिए वैधानिक कर्तव्य का कोई भी उल्लंघन, हमें अनुचित प्रतीत होता है।अपने सामान्य कर्तव्य के इस तरह के त्याग पर न तो विधि बनाने वाले द्वारा सोचा गया है और न ही यह धारा 11 (6क) के उल्लंघन के रूप में उचित होगा।

v. यह विचार कि अधिनियम की धारा 11 के तहत मामलों में अधिक समय लगेगा और मध्यस्थम् की समय पर प्रगति में बाधा आएगी और मामले को स्थगित किया जाना चाहिए ताकि मध्यस्थ इससे अधिक उपयुक्त तरीके से निपट सके, हमें सही नहीं लगता है। जबकि स्टाम्प अधिनियम का उद्देश्य मुख्य रूप से राजस्व एकत्र करना है और इसका उद्देश्य किसी पक्ष को 'तकनीकी आधारों' को उठाने के लिए हथियार देना नहीं है, यह शायद ही न्यायालय के लिए विधानमंडल की आवाज को स्पष्ट शब्दों में नजरअंदाज करने का औचित्य प्रदान करेगा। हम पाते हैं कि धारा 11 (6क) को शामिल किए जाने के बावजूद, *एस एम एस टी एस्टेट्स* (उपरोक्त) में व्यक्त विचार को दोहराया जा रहा है, जो स्टाम्प अधिनियम के उद्देश्य को बढ़ावा देगा और फिर भी धारा 11 (6क) के प्रावधान के साथ सामंजस्यपूर्ण होगा। हालाँकि, हमने जो कहा है उसे हम एक चेतावनी के साथ स्वीकार कर सकते हैं। ऐसे मामले हो सकते हैं, जहां कोई स्टाम्प शुल्क का भुगतान नहीं किया जाता है। यह स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 के तहत कर्तव्य के स्पष्ट निर्वहन का मार्ग प्रशस्त करता है। हालाँकि, ऐसे मामले हो सकते हैं, जहाँ इस पर स्टाम्प लगाई गयी है, लेकिन पक्षकार द्वारा आपत्ति ली जाती है कि इस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई गई है। ऐसे मामलों में, इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 33 (2) के तहत कर्तव्य के संदर्भ में मामले की जांच करना आम तौर पर न्यायालय का कर्तव्य है। यदि यह दावा कि उस पर अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगी है, न्यायालय के सामने ऐसा प्रतीत होता है कि वह पूरी तरह से बिना

किसी आधार के है, तो वह अन्यथा मध्यस्थम् करार के अस्तित्व के आधार पर संदर्भ बना सकता है और फिर धारा 33 के तहत शक्ति का प्रयोग करने के लिए मध्यस्थ को खुला छोड़ सकता है, यदि वह आवश्यक है। यह दृष्टिकोण अधिनियम की धारा 11 (6क) के आदेश की अनदेखी नहीं करते हुए स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 (2) में 'जांच' शब्द के साथ न्याय करता है। प्रथम दृष्टया जांच करने के कर्तव्य के साथ भ्रमित नहीं होना चाहिए कि क्या अधिनियम की धारा 11 (6क) के तहत एक 'मध्यस्थम् करार' मौजूद है, लेकिन स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 (2) के तहत मामले की जांच करने के कर्तव्य से संबंधित है।

vi. साक्ष्य अधिनियम के तहत, केवल मूल दस्तावेज को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करने की अनुमति है (धारा 62 देखें)। हालांकि, धारा 63 के तहत द्वितीयक साक्ष्य की अनुमति है और प्रमाणित प्रतियों को द्वितीयक साक्ष्य के रूप में माना जाता है। योजना के तहत, धारा 11 के तहत एक कार्यवाही में, साक्ष्य अधिनियम में प्रक्रिया का पालन किए बिना, प्रमाणित प्रति के रूप में द्वितीयक साक्ष्य की अनुमति है। यह सच हो सकता है कि चूंकि

धारा 11 के तहत एक आवेदन को बनाए रखने के लिए प्रमाणित प्रतियों की अनुमति है और विधि में, एक प्रमाणित प्रति को परिबद्ध नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह एक लिखत नहीं है, इसलिए स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के दृष्टिकोण से मामले की जांच करने का न्यायालय का कर्तव्य मौजूद नहीं हो सकता है। हालांकि, हमने समझाया है कि एक प्रमाणित प्रति क्या है, और यह कि, *एस एम एस टी एस्टेट* (उपरोक्त) को देखते हुए, भुगतान किए गए स्टाम्प शुल्क को प्रमाणित प्रति में इंगित किया जाना चाहिए और उचित मामले में, न्यायालय के पास योजना के कंडिका–5 के तहत, जानकारी मंगाये जाने की शक्तियां है। यह न्यायालय का कर्तव्य बन जाता है, उन मामलों में, जहां एक प्रमाणित प्रति प्रस्तुत की जाती है, यह संतुष्ट होना कि प्रमाणित प्रति को पेश किया जाना, विधि की आवश्यकता को पूरा करता है। जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, जबकि प्रमाणित प्रति जो यह नहीं दर्शाती है कि स्टाम्प शुल्क का भुगतान किया गया है, धारा 33 के तहत परिबद्ध नहीं किया जा सकता है, इस पर स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 के तहत कार्रवाई नहीं की जा सकती है।

पी. मध्यस्थम करार, एक विशिष्ट करार और इसका प्रभाव ?

i. अंतिम प्रश्न, जो शेष रहता है, वह यह है कि क्या, यदि संविदा, जिसमें मध्यस्थम् खंड स्थित है, पर अस्टाम्पित है, लेकिन मध्यस्थम् खंड पर स्टाम्प लगा दी गई है, तो न्यायालय इस तथ्य को नजरअंदाज कर सकता है कि

संविदा में निहित लिखत पर स्टाम्प नहीं लगाई गई है। सबसे पहले, ऐसी संभावना उत्पन्न नहीं हो सकती है। यह इस कारण से है कि जब तक गलत निरूपण या धोखाधड़ी नहीं की जाती है, तब तक यह समझ से बाहर है कि संविदा कब प्रस्तुत किया जाता है, इसे अन्य प्रावधानों के साथ–साथ स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के तहत कैसे नहीं निपटाया जाएगा।

ii. विद्वान न्यायमित्र, वास्तव में, इंगित करते हैं कि निश्चित रूप से मध्यस्थम् करार एक बड़े करार में एक खंड के रूप में निहित है। संविदा में मध्यस्थम् करार वाला दस्तावेज शामिल होगा। यह हमें इस सवाल पर लाता है कि क्या मध्यस्थम् करार को एक अलग संविदा के रूप में माना जा सकता है, और भले ही मुख्य संविदा पर स्टाम्प नहीं लगी हो, यह पर्याप्त है अगर अकेले मध्यस्थम् करार पर स्टाम्प लगी हो।

iii. *एन. एन. ग्लोबल* (उपरोक्त) में, वास्तव में, न्यायालय ने मुख्य संविदा को परिबद्ध करने के लिए आगे बढ़ाया जो कार्य आदेश था। मध्यस्थम् करार का सिद्धांत एक विशिष्ट और एक अलग करार होने के कारण, अच्छी तरह से स्थापित है।

> कोम्पेटेंज़–कोम्पेटेंज़ का सिद्धांत अधिनियम की धारा 16 में निहित किया गया है। धारा 16, नि:संदेह, इस सिद्धांत को स्पष्ट करती है कि मध्यस्थ प्राधिकरण मध्यस्थम् करार की वैधता और उसके अस्तित्व से संबंधित आपत्तियों सहित अपने अधिकार क्षेत्र पर निर्णय ले सकता है और उस उद्देश्य के लिए, संविदा का हिस्सा बनने वाले मध्यस्थम् खंड को संविदा की अन्य शर्तों से स्वतंत्र करार के रूप में माना जाना है। समान रूप से, धारा 16 (1) (ख) घोषणा करती है कि प्राधिकरण के यह निष्कर्ष निकालने के बावजूद कि संविदा शून्य एवं अमान्य था, यह मध्यस्थम् खंड को अमान्य नहीं करेगा। इस सिद्धांत का विकास कि एक मध्यस्थम् करार संविदा से एक अलग और विशिष्ट करार है, यह इंगित करेगा कि स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 के अर्थ के भीतर, न्यायालय के कर्तव्य के संदर्भ में इसके अनुरूप कार्य करने में कोई भूमिका नहीं होगी। एक संविदा में मध्यस्थम् खंड की प्रभावशीलता को संरक्षित किया जाता है ताकि समाप्ति या गैर–प्रदर्शन या कथित प्रदर्शन द्वारा संविदात्मक दायित्वों को समाप्त करने से पक्षकारों को उनके अधिकारों और मध्यस्थ की विवाद पर निर्णय लेने की शक्ति से वंचित न किया जाए, जो अन्यथा मध्यस्थता खंड के दायरे में आते हैं।

मध्यस्थम् करार को एक अलग करार के रूप में मानने के पीछे अंतर्निहित सिद्धांत एक ऐसा तंत्र बनाना है, जो संविदा में बना रहे ताकि मध्यस्थम् करार के भीतर आने वाले विवादों का समाधान किया जा सके। इस प्रकार, मुख्य संविदा को निरस्त करने के परिणामस्वरूप मध्यस्थम् खंड खतम नहीं होगा। हम इस बात से सहमत हैं कि मध्यस्थम् खंड एक संपार्श्विक भाग हो सकता है [हेमैन विरुद्ध डार्विन्स लिमिटेड[35] देखें]। मध्यस्थम् करार, जो *एन. एन. ग्लोबल* (उपरोक्त) में पाया गया है, 'मौजूद है और उस पर कार्रवाई की जा सकती है, भले ही मुख्य मूल संविदा वैध हो या नहीं' [एन. एन. ग्लोबल (उपरोक्त) के कंडिका–4.10 को देखें]। यह सच हो सकता है कि, आम तौर पर, मुख्य करार की अयोग्यता मध्यस्थम् खंड को प्रभावित नहीं कर सकती है [एन. एन. ग्लोबल (उपरोक्त) का कंडिका–4.12 देखें]। हालांकि, इस आधार पर कि मुख्य संविदा में एक खंड के रूप में निहित एक मध्यस्थ म् करार एक अलग करार है और यह स्वतंत्र रूप से मौजूद हो सकता है, स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 35 के संदर्भ में इस तरह के तर्क के पीछे की भ्रांति को निम्नानुसार प्रदर्शित किया जा सकता हैः

विद्वान न्यायमित्र तर्क करेंगे कि *एन. एन. ग्लोबल* (उपरोक्त) में न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालने में गलती की कि मध्यस्थम् करार पर स्टाम्प लगाने की आवश्यकता नहीं है। यदि ऐसा है, तो मध्यस्थम् करार होने के कारण मध्यस्थता खंड पर स्टाम्प लगाने की आवश्यकता होगी। क्या यह कल्पना की जा सकती है कि मध्यस्थम् खंड वाले संविदा पर केवल मध्यस्थम् करार के संबंध में दायित्व को पूरा करने के लिए स्टाम्प लगाई जाएगी और जब उस पर स्टाम्प लगाने की आवश्यकता होगी तो मुख्य करार पर स्टाम्प नहीं लगाई जाएगी? क्या इस तरह के दृष्टिकोण को स्वीकार करने के लिए न्यायालय को एक ऐसी व्याख्या अपनाने की आवश्यकता नहीं होगी जो पक्षकारों को स्टाम्प अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करने के लिए स्पष्ट रूप से प्रोत्साहित करेगी। हमें डर है कि, इसलिए, इस आधार पर आगे बढ़ना भी कि एक मध्यस्थम् करार एक अलग करार है, ऐसे मामले में कोई लाभ नहीं होगा जहां मध्यस्थता खंड और मुख्य करार दोनों स्टाम्प शुल्क लगाने के लिए उपयुक्त हैं।

108. जैसा कि एस एम एस टी एस्टेट्स (उपरोक्त) में पाया गया है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि किसी लिखत के उपयोग के लिए एक प्रतिबंध है, जिस पर

35 3535(1942) एसी 356 एचएल

किसी भी उद्देश्य के लिए स्टाम्प नहीं लगाई गई है या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगाई गई है (पंजीकरण अधिनियम की धारा 49 के विपरीत, जो एक अपंजीकृत दस्तावेज को संपार्श्विक लेनदेन को साबित करने के लिए उपयोग करने की अनुमति देता है), एक अस्टाम्पित लिखत, जिसमें एक मध्यस्थम् खंड है, का उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, क्योंकि यह एक संपार्श्विक लेनदेन स्थापित करने के लिए लिखत का उपयोग करने की अनुमति देगा। यह इस आधार पर आगे बढ़ रहा है कि एक मध्यस्थम् करार एक संपार्श्विक भाग है और इसका अस्तित्व मुख्य करार से अलग हो सकता है।

क्यू. निष्कर्ष

109. *एस एम एस टी एस्टेट्स* (ऊपर) में लिया गया दृष्टिकोण जिसका अनुशरण *गरवारे* (उपरोक्त) और पीठ द्वारा *धर्मरत्नाकर राय बहादुर आर्कोट नारायणस्वामी मुदलियार छत्रम और अन्य धमार्थ संगठनों बनाम भास्कर राजू और ब्रदर्स और अन्य* [3636] में किया गया है जैसे कि एक मध्यस्थम् करार रखने वाले अस्टाम्पित संविदा का प्रभाव और न्यायालय द्वारा उठाए जाने वाले

कदम, विधि में सही स्थिति का प्रतिनिधित्व करते हैं जैसा कि हमारे द्वारा पहले बताया गया है। *एन. एन. ग्लोबल* (उपरोक्त) को गलत तरीके से निर्णीत किया गया था, जब उसमें *एस एम एस टी एस्टेट* (ऊपर) और *गरवारे* (उपरोक्त) के विरुद्ध अभिनिर्णीत किया गया और उसे नामंजूर कर दिया।

110. एक लिखत, जो स्टाम्प शुल्क के लिए अपेक्षित है, में एक मध्यस्थम् खंड हो सकता है और जिस पर स्टाम्प नहीं लगाई गई है, उसे एक संविदा नहीं कहा जा सकता है, जो संविदा अधिनियम की धारा 2 (ज) के तहत विधितः प्रवर्तनीय हो और संविदा अधिनियम की धारा 2 (छ) के तहत प्रवर्तनीय नहीं हो। एक अस्टाम्पित लिखत, जब उस पर स्टाम्प लगाने की आवश्यकता होती है, जो एक संविदा नहीं है और विधितः प्रवर्तनीय नहीं है, तो वह विधि में अस्तित्व–विहीन है। इसलिए, हम *गरवारे* (उपरोक्त) के कंडिका–22 और 29 को स्वीकार करते हैं। जहाँ तक *गरवारे* (उपरोक्त) के कंडिका–22 और 29 में तर्क को मंजूरी दी गई है, हम इस हद तक *विद्या द्रोलिया* (उपरोक्त) को भी मंजूरी देते हैं।

111. अधिनियम में धारा 11 (6क) को शामिल करने के पीछे वास्तविक आशय धारा 11 के तहत कार्य करने वाले न्यायालय को मध्यस्थम् करार के अस्तित्व की जांच और पता लगाने के लिए सीमित करना था।

112. अधिनियम की धारा 11 के तहत योजना न्यायालय को मूल करार के आधार पर या प्रमाणित प्रति पर कार्य करने की अनुमति देती है। हालाँकि, प्रमाणित

---

36 3636(2020) 4 एससीसी 612

प्रतिलिपि को स्पष्ट रूप से *एस एम एस टी एस्टेट* (उपरोक्त) के अनुसार स्टाम्प शुल्क अदा किए जाने के संबंध में स्पष्ट उल्लेख करना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करता है, तो न्यायालय को ऐसी प्रमाणित प्रति पर कार्रवाई नहीं करनी चाहिए।

113. यदि लिखत का मूल प्रस्तुत किया जाता है और वह अस्टाम्पित है, तो न्यायालय, धारा 11 के तहत कार्य करते हुए, स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के तहत कार्य करने के लिए कर्तव्यबद्ध है जैसा कि पहले बताया गया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जब यह ऐसा करता है, तो अन्य प्रावधान, जो शुल्क और शस्ति के भुगतान के मामले में स्टाम्प अधिनियम की धारा 42 (2) के तहत प्रमाण पत्र में समाप्त होंगे, भी लागू होंगे। जब ऐसा कोई चरण उत्पन्न होता है, तो न्यायालय विधि के अनुसार आवेदन को संसाधित करने के लिए स्वतंत्र होगा।

114. अधिनियम की धारा 7 के तहत एक मध्यस्थम् करार, जो स्टाम्प शुल्क के लिए देय है और जिस पर स्टाम्प नहीं लगाया गया है या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगाया गया है, उस पर स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 को देखते हुए कार्रवाई नहीं की जा सकती है, जब तक कि आवश्यक शुल्क को परिबद्ध करने और भुगतान करने के बाद, स्टाम्प अधिनियम की धारा 42 के तहत आवश्यक प्रमाण पत्र प्रदान नहीं किया जाता है।

115. हम आगे यह मानते हैं कि धारा 33 के प्रावधान और स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 के तहत प्रतिबंध, जो स्टाम्प अधिनियम की अनुसूची के साथ पठित धारा 3 के तहत स्टाम्प शुल्क के लिए प्रभार्य लिखतों पर लागू होता है, ऐसे लिखत में निहित मध्यस्थम् करार को विधि में अस्तित्वहीन बना देगा जब तक कि लिखत स्टाम्प अधिनियम के तहत मान्य नहीं किया जाता है।

116. किसी मामले में, न्यायालय के पास योजना के कंडिका–5 के तहत किसी पक्ष से जानकारी लेने की शक्ति है, यहां तक कि स्टाम्प शुल्क के संबंध में भी।

117. हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमने अधिनियम की धारा 9 के संदर्भ में इस मामले पर कुछ नहीं कहा है। संविधान पीठ को निर्देश का जवाब उसी के अनुसार दिया जाएगा।

118. हम श्री गौरव बनर्जी, विद्वान वरिष्ठ वकील, जिन्होंने न्यायमित्र के रूप में इस न्यायालय की कुशलता से सहायता की है, द्वारा किए गए प्रयासों के लिए अपनी गहरी प्रशंसा दर्ज करते हैं।

सी. टी. रविकुमार जे.

1. मुझे अपने विद्वान साथी न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ की अपने और विद्वान साथी न्यायमूर्ति अनिरुद्ध बोस के लिए विद्वान राय और विद्वान साथी न्यायमूर्ति हृषिकेश रॉय की अलग राय पढ़ने का लाभ मिला है, जो विद्वान साथी न्यायमूर्ति

अजय रस्तोगी की राय से सहमत हैं, लेकिन विद्वान साथी न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ की राय से असहमत हैं। अफसोस की बात है कि मैं विद्वान साथी न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी की राय और विद्वान साथी न्यायमूर्ति हृषिकेश रॉय की समवर्ती राय से सहमत होने में अपनी असमर्थता दर्ज करता हूं। विद्वान साथी न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ की राय का पूरी तरह से समर्थन करते हुए, जिस पर मेरे विद्वान साथी न्यायमूर्ति अनिरुद्ध बोस ने सहमति व्यक्त की है, मैं कुछ मुद्दों के संबंध में एक संक्षिप्त परिशिष्ट जोड़ना चाहता हूं, निश्चित रूप से, केवल उन पर वापस किए गए निष्कर्षों के समर्थन में।

2. मेरे विद्वान साथी न्यायमूर्ति के.एम. जोसेफ के विद्वतापूर्ण मसौदा निर्णय में संदर्भ के तहत मुद्दे, संदर्भित प्रश्न का संशोधन और विचार के लिए रखे गए संबद्ध प्रश्नों पर विस्तृत रूप से विचार किया गया है और उनका उत्तर दिया गया है और इसलिए, उन्हें संदर्भित करना बिल्कुल अनावश्यक है। मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6) के तहत न्यायालय की शक्ति पर विचार करते हुए यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि संशोधन से पहले और बाद में धारा 11 (6) की स्थिति और 2016 के अधिनियम 2 द्वारा अंतःस्थापित धारा 11 (6क) का उल्लेख तीनों रायों में किया गया है। इसलिए, मुझे नहीं लगता कि पुनरावृत्ति के जोखिम से बचने के लिए उन प्रावधानों का उल्लेख करना आवश्यक है। निश्चित रूप से, अधिनियम की धारा 16 के तहत प्रदत्त शक्तियां जिन्हें अक्सर 'कॉम्पेटेंज़–कॉम्पेटेंज़' के रूप में संदर्भित किया जाता है, यह स्पष्ट करती हैं कि मध्यस्थम् अधिकरण सशक्त है और अपने स्वयं के अधिकार क्षेत्र पर शासन करने की क्षमता प्राप्त है, जिसमें सभी अधिकार क्षेत्र के मुद्दों और मध्यस्थम् करार के अस्तित्व या वैधता सम्मिलित हैं। इस प्रावधान की पूर्ण भूमिका तब होगी जब मध्यस्थ की नियुक्ति, सर्वसम्मति पर, पक्षकारों द्वारा, मध्यस्थम् करार की शर्तों के अनुसार या नामित मध्यस्थता संस्थान द्वारा, न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना की जाती है। लेकिन फिर, अधिनियम की धारा 11 (6) के तहत प्रावधान तब लागू होता है जब मध्यस्थम् करार के तहत परिकल्पित प्रक्रियाएं काम नहीं करती हैं और मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए न्यायालय के समक्ष उसके तहत शक्ति के प्रयोग के लिए एक आवेदन दायर किया जाता है। धारा 11 (6) के तहत किए जाने वाले कार्य की प्रकृति के संबंध में विवाद को ***एस बी पी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड*** [1] में सात न्यायाधीशों की पीठ के फैसले से यह निर्धारित कर खतम किया गया कि यह 'न्यायिक' है । उक्त धारा में लाए गए संशोधन के बावजूद और अधिनियम में धारा 11 (6क) को शामिल करने के बाद भी यह 'न्यायिक' बना हुआ है। 'मध्यस्थ की नियुक्ति' के लिए आवेदन एक पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया जाता है जो एक मध्यस्थम् करार अथवा संबंधित पक्षों के बीच निष्पादित 'लिखत' में एक मध्यस्थम् खंड के अस्तित्व पर जोर देता है। इसलिए, हमेशा उक्त शक्तियों का प्रयोग कर जो निर्णय लिया जाना है, वह मध्यस्थम् करार अथवा उक्त लिखत में मध्यस्थम् खंड के अस्तित्व का दावा किया गया तथ्य है और

1 11(2005) 8 एससीसी 618

निश्चित रूप से, इस संबंध में जिस पक्ष ने धारा 11 (6) के तहत उक्त शक्ति का उपयोग किया है, उसे निरीक्षण के लिए बहुत अधिक निर्भर किये जाने वाले लिखत को प्रस्तुत करना पड़ता है। सवाल यह है कि क्या आदेश पारित करते समय धारा 11 (6) के तहत शक्ति का प्रयोग करने वाले न्यायालय को इस दावे की सच्चाई का पता लगाने के सीमित उद्देश्य के लिए कोई साक्ष्य लेता है कि इस प्रकार प्रस्तुत किया गया दस्तावेज़ एक मध्यस्थम् करार है या मध्यस्थम् खंड वाला एक लिखत है। इस संबंध में केवल 'साक्ष्य' शब्द के उस अर्थ को संदर्भित करना उचित है जो इसके लिए निर्धारित किया जा सकता है। **पीटर मर्फी** के अनुसार **'ए प्रैक्टिकल अप्रोच टू एविडेंस (दूसरा संस्करण), 1985,** में 'साक्ष्य' को किसी भी 'सामग्री' के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो न्यायालय को उसके समक्ष प्रतिपादित उसी तथ्य की सच्चाई या प्रमाणिकता के बारे में समझाता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, धारा 11 (6) के तहत ऐसे आवेदन में, निश्चित रूप से दावा किया जाने वाला तथ्य 'मध्यस्थम् करार' का अस्तित्व और उसके प्रमाण में सामग्री अर्थात् दस्तावेज़ प्रस्तुत किया जाएगा। मैं वैधानिक योजना में प्रासंगिक प्रावधान का उल्लेख बाद में करूंगा अर्थात् भारत के मुख्य न्यायाधीश योजना, 1996 द्वारा मध्यस्थों की नियुक्ति। अब, जब वह प्राप्त होता है, तो वह इस सवाल को तय करने के लिए सीमित उद्देश्य के लिए साक्ष्य प्राप्त करने के अलावा और कुछ नहीं है कि क्या प्रस्तुत किया गया 'लिखत' पक्षकारों के बीच निष्पादित किया गया एक मध्यस्थम् करार है अथवा लिखत में मध्यस्थम् खंड है। आवश्यक रूप से, यदि उत्तर सकारात्मक है, तो मध्यस्थ (ओं) की नियुक्ति का आदेश पारित किया जाएगा और नकारात्मक में उत्तर ऐसी कार्यवाही का अंत होगा। मामले के उस दृष्टिकोण में, यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि धारा 11 (6) के तहत कार्य करते समय जो निर्णय लिया जाना है, वह एक 'क्षेत्राधिकार पहलू' से संबंधित है क्योंकि केवल इस निष्कर्ष को वापस करने पर कि इस तरह से प्रस्तुत सामग्री में एक मध्यस्थम् करार या मध्यस्थम् खंड मौजूद है, मध्यस्थ (ओं) को नियुक्त किया जाएगा। उस प्रश्न का उत्तर, 'लिखत' प्राप्त करने पर, इस प्रकार प्रस्तुत किए गए दस्तावेज़ पर "कार्य करने" के रूप में वर्णित कार्य का करना है। दूसरे शब्दों में, ***मुस्मात बिट्टन बी बी एवं अन्य विरुद्ध कुंतू लाल एवं अन्य***[2], (विद्वान साथी न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ की राय में निकाली गयी सुसंगत कंडिका 8) में एम. सी. देसाई, जे. द्वारा विधि के बयान से स्पष्ट है कि 'उस पर कार्य करना' किसी लिखत को स्वीकार करने का कार्य शामिल नहीं है, हालांकि उस पर बाद में कार्रवाई की जा सकती है, उसके लिए विधि में अनुमति के अधीन रहते हुए।

3. राय में दरार इस मुद्दे पर आती है कि क्या न्यायालय को धारा 11 (6) के तहत शक्ति का उपयोग करने के लिए कहा जाता है, तो भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 33 के तहत कर्तव्य के साथ संयुक्त शक्ति का प्रयोग करना चाहिए या कर सकता है, जब मध्यस्थम् करार या मध्यस्थम् खंड वाले दस्तावेज़ को बिना स्टाम्प वाला या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प किया गया पाया जाता है या ऐसे मामले में

2 22 आईएलआर (1954)2 ऑल 1984

जाये बिना, क्या उसे केवल मध्यस्थ (ओं) की नियुक्ति के मामले में अपनी शक्ति का प्रयोग सीमित करना चाहिए और भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 33 के तहत अधिदेश के संबंध में स्वयं को आगे बढ़ने से रोकना चाहिए। मैंने पहले ही अपने विद्वान साथी के. एम. जोसेफ की राय के साथ अपनी सहमति दर्ज कर ली है कि स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के तहत कर्तव्य के साथ शक्ति के प्रयोग पर अधिनियम की धारा 5 के उल्लंघन में न्यायिक हस्तक्षेप का आरोप नहीं लगाया जा सकता है और आगे यह कि इस परीक्षण के साथ भ्रमित नहीं होगा कि क्या उक्त लिखत में मध्यस्थम् करार या मध्यस्थम् खंड मौजूद है, ताकि अधिनियम की धारा 11 (6) के तहत शक्ति के आह्वान में मध्यस्थ नियुक्त किया जा सके। मामले के उस दृष्टिकोण में, अधिनियम की धारा 11 (6क) या 16 के तहत प्रावधान स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के तहत उक्त शक्ति के प्रयोग के लिए एक राइडर के रूप में कार्य नहीं कर सकते हैं।

4. उपरोक्त संदर्भ में, भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 33 की उप–धारा (1), (2) और उप–धारा (2) के खंड (ख) का उल्लेख करना प्रासंगिक है। वे इस प्रकार पढ़े जाते हैं:–

"33. ***लिखतों की परीक्षा और परिबद्ध किया जाना–***

(1) हर व्यक्ति, जो विधि द्वारा या पक्षकारों की सम्मति से साक्ष्य लेने का प्राधिकार रखता है और पुलिस अधिकारी के अलावा लोक कार्यालय का भारसाधक हर व्यक्ति जिसके समक्ष उसकी राय में शुल्क से प्रभार्य कोई लिखत उसके कृत्यों के पालन में पेश की जाती है या आ जाती है, उस दशा में उसे परिबद्ध करेगा, जिसमें कि यह प्रतीत होता है कि ऐसी लिखत सम्यक् रुप से स्टाम्पित नहीं है:

(2) इस प्रयोजन के लिए ऐसा हर व्यक्ति ऐसे प्रभार्य और अपने समक्ष पेश की गई या आई हर लिखत की जांच यह अभिनिश्चित करने के लिए करेगा कि जब ऐसी लिखत निष्पादित की गई या प्रथम वर्जन निष्पादित की गई थी, तब क्या वह भारत में प्रवृत्त विधि द्वारा अपेक्षित मूल्य और विवरण के स्टाम्प से स्टाम्पित थी।

परंतु–

(क) इसमें अंतर्विष्ट कोई भी बात किसी मजिस्ट्रेट या दाण्डिक न्यायालय के न्यायाधीश से यह अपेक्षा करने वाली नहीं समझी जाएगी कि वह दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 के अध्याय 12 या अध्याय 36 के अधीन की कार्यवाही से भिन्न किसी कार्यवाही के अनुक्रम में अपने समक्ष आने वाली किसी लिखत की परीक्षा करे या उसे परिबद्ध करे, यदि वह ऐसा करना ठीक नहीं समझता ;

(ख) उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की दशा में इस धारा के अधीन किसी लिखत की परीक्षा करने और परिबद्ध करने का कर्तव्य ऐसे अधिकारी को प्रत्यायोजित किया जा सकेगा, जिसे वह न्यायालय इस निमित्त नियुक्त करें ।

5. मैंने पहले ही पाया है कि उस 'लिखत' को प्राप्त करना जो मध्यस्थम् करार को वहन कर रहा है या जिसमें मध्यस्थम् खंड शामिल है, उस पक्ष से जो अपने अस्तित्व का दावा करता है, अनिवार्य रूप से उस सीमित अर्थ में साक्ष्य प्राप्त करने का कार्य है। इसलिए, न्यायालय, जिसके पास धारा 11 (6) के तहत शक्ति का उपयोग करने के उद्देश्य से साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार और क्षमता है, धारा 33 के संदर्भ में आगे की कार्यवाही से कैसे दूर रह सकता है, यदि उसे ऐसा प्रतीत होता है कि उसके समक्ष प्रस्तुत किया गया ऐसा लिखत, जिस पर स्टाम्प लगाना आवश्यक है, अस्टाम्पित है या उस पर पर्याप्त स्टाम्प नहीं लगाई गई है। मेरे अनुसार, उस उद्देश्य के लिए धारा 33 की उप–धारा (2) के तहत अधिदेश के संदर्भ में, धारा 11 का न्यायाधीश, जिसे साक्ष्य प्राप्त हुआ है, इस तरह से प्रभार्य और इस तरह से प्रस्तुत किए गए दस्तावेज की 'जांच' करेगा ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या उस पर भारत में लागू विधि द्वारा आवश्यक शुल्क और स्टाम्प से स्टाम्पित है, जब ऐसे दस्तावेज को निष्पादित किया गया था या पहली वर्जन निष्पादित किया गया था। उपबंध (ख) जो यहाँ पहले प्रस्तुत किया गया है, केवल उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को ऐसे किसी भी दस्तावेज की जांच करने और उसे परिबद्ध करने का कर्तव्य ऐसे अधिकारी को सौंपने की अनुमति देगा जिसे न्यायालय उस ओर से नियुक्त करे। इस प्रकार, यह केवल उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को विवेकाधिकार देता है कि वह उक्त परंतुक के तहत उल्लेखित तरीके से ऐसे किसी भी दस्तावेज की जांच और परिबद्ध करने का कर्तव्य सौंप दे, यदि वह संबंधित प्रावधान के अनुसार स्वयं दस्तावेज को परिबद्ध करने के लिए प्रदान किए गए तरीके से आगे नहीं बढ़ने का विकल्प चुनता है। जब धारा 33 (1) और (2) के तहत प्रावधान है, जिसका एक संयुक्त पठन स्पष्ट रूप से धारा 11 (6) के तहत शक्ति का प्रयोग करने वाले न्यायालय के लिए धारा 33 के तहत अधिदेश के संदर्भ में आगे बढ़ना अनिवार्य बनाता है जब परिस्थितियां विधिक रूप से इसके आह्वान को आमंत्रित करती हैं। एक विपरीत दृष्टिकोण, मेरे अनुसार, धारा 33 की उप–धारा (2) और परंतुक (ख) को निरर्थक बना देगा और अधिनियम की धारा 11 (6) के तहत दायर आवेदन के संबंध में उनके आवेदन से संबंधित प्रावधानों की आत्मा को विफल कर देगा।

6. स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 के तहत साक्ष्य में सम्यक रुप से स्टाम्पित नहीं किए गए लिखतों के साक्ष्य में ग्राह्य किये जाने पर रोक है, जैसा कि इसके परंतुक (क) से स्पष्ट है, स्थायी नहीं है और इसके तहत प्रदान की गई प्रक्रियाओं का पालन करके और स्टाम्प अधिनियम की धारा 42 (1) के तहत पृष्ठांकित कराकर ठीक किया जा सकता है। धारा 42 की उप–धारा (2) यह स्पष्ट करती है कि इस प्रकार पृष्ठांकित हर एक लिखत साक्ष्य में ग्राह्य होगी और उस पर ऐसी कार्यवाही की जा सकेगी और वह ऐसे अधिप्रमाणित की जा सकेगी, मानो वह सम्यक रुप से स्टाम्पित थी । चर्चा का परिणाम यह है कि बिना स्टाम्प लगाए या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगाए होने के कारण, करार 'साक्ष्य में ग्राह्य' और 'कार्रवाई के लिए' तब तक उपलब्ध नहीं होगा जब तक कि यह स्टाम्प अधिनियम के प्रावधानों के तहत निर्धारित

प्रक्रियाओं का पालन करते हुए मान्य नहीं हो जाता और तब तक यह 'विधि में' मौजूद नहीं होगा।

7. एक अन्य बात जो मैं अपने विद्वान साथी न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ की राय के अलावा कहना चाहता हूं, वह 'प्रमाणित प्रति' शब्द के लिए विहित अर्थ के संबंध में है, जिसे अधिनियम की धारा 11 (10) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा बनाई गई योजना के कंडिका 2 (क) के संदर्भ में मध्यस्थ (ओं) की नियुक्ति के लिए आवेदन के साथ प्रस्तुत करने की अनुमति है, अर्थात् भारत के मुख्य न्यायाधीश योजना, 1996 द्वारा मध्यस्थों की नियुक्ति। कंडिका 2 और उप–कंडिका (क) को इस प्रकार पढ़ा जाता हैः–

> **2. अनुरोध प्रस्तुत करनाः–** धारा 11 की उप–धारा (4) या उप–धारा (5) या उप–धारा (6) के तहत मुख्य न्यायाधीश से अनुरोध लिखित रूप में किया जाएगा और इसके साथ–
>
> (क) मूल मध्यस्थम् करार या इसकी विधिवत प्रमाणित प्रति भी होगी।

8. मेरे विद्वान साथी न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ की राय में इस मुद्दे पर कंडिका 77 से 89 तक विस्तार से विचार किया गया है। उसके निष्कर्षों और निष्कर्षों से सहमत होते हुए, मैं अपने स्वयं के कारण बताना चाहूंगा कि 'प्रमाणित प्रतिलिपि' शब्द को भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 74 और 76 के संदर्भ में क्यों समझा जाना चाहिए, (इसके बाद 'साक्ष्य अधिनियम' के रूप में संदर्भित) और मूल दस्तावेज के अस्तित्व और निष्पादन के औपचारिक प्रमाण के बिना 'कार्यवाही' करने के लिए द्वितीयक साक्ष्य का उक्त रूप क्यों उपलब्ध है।

9. धारा 62 'प्राथमिक साक्ष्य' को इस प्रकार परिभाषित करती हैः–

> **62. प्राथमिक साक्ष्य** – *प्राथमिक साक्ष्य से न्यायालय के निरीक्षण के लिये पेश की गई दस्तावेज स्वयं अभिप्रेत है ।*
>
> *स्पष्टीकरण 1– जहां कि कोई दस्तावेज कई मूल प्रतियों में निष्पादित है, वहां हर एक मूल प्रति उस दस्तावेज का प्राथमिक साक्ष्य है । जहां कि कोई दस्तावेज प्रतिलेख में निष्पादित है और हर एक प्रतिलेख पक्षकारों में से केवल एक पक्षकार या कुछ पक्षकारों द्वारा निष्पादित किया गया है, वहां हर एक प्रतिलेख उन पक्षकारों के विरुद्ध, जिन्होंने उसका निष्पादन किया है, प्राथमिक साक्ष्य है ।*
>
> *स्पष्टीकरण 2– जहां कि अनेक दस्तावेजें एकरुपात्मक प्रक्रिया द्वारा बनाई गई हैं, जैसा कि मुद्रण, शिलामुद्रण या फोटो–चित्रण में होता है, वहां उनमें हर एक शेष सब की अन्तर्वस्तु का प्राथमिक साक्ष्य है, किन्तु जहां कि वे सब किसी सामान्य मूल की प्रतियां हैं, वहां वे मूल अन्तर्वस्तु का प्राथमिक साक्ष्य नहीं है ।*

यह दर्शित किया जाता है कि एक ही समय एक ही मूल से मुद्रित अनेक प्लेकार्ड किसी व्यक्ति के कब्जे में रखे हैं । इन प्लेकार्डों में से कोई भी एक , अन्य किसी की भी अन्तर्वस्तु का प्राथमिक साक्ष्य है, किन्तु उनमें से कोई भी मूल की अन्तर्वस्तु का प्राथमिक साक्ष्य नहीं है ।

10. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 द्वितीयक साक्ष्य को परिभाषित करती है जो इस प्रकार है:–

"63. द्वितीयक साक्ष्य – द्वितीयक साक्ष्य से अभिप्रेत है और उसके अंतर्गत आते हैं –

(1) एतस्मिन् पश्चात अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अधीन दी हुई प्रमाणित प्रतियां;

(2) मूल मे ऐसी यांत्रिक प्रक्रियाओं द्वारा, जो प्रक्रियाएं स्वयं ही प्रति की शुद्धता सुनिश्चित करती हैं, बनाई गई प्रतियां तथा ऐसी प्रतियों से तुलना की हुई प्रतिलिपियों;

(3) मूल से बनाई गई या तुलना की गई प्रतियाँ;

(4) उन पक्षकारों के विरुद्ध, जिन्होंने उन्हें निष्पादित नहीं किया है, दस्तावेजों के प्रतिलेख;

(5) किसी दस्तावेज की अन्तर्वस्तु का उस व्यक्ति द्वारा, जिसने स्वयं उसे देखा है, दिया हुआ मौखिक वृतान्त ।"

11. इस प्रकार, 'द्वितीयक साक्ष्य' की परिभाषा का अभिप्रेत है और उसके अंतर्गत आते हैं जो खंड '1 से 5' में उल्लिखित हैं। यद्यपि समावेशी परिभाषा विभिन्न प्रकार के द्वितीयक साक्ष्य की बात करती है, जैसे कि खंड '1 से 5' के तहत उल्लेखित है, साक्ष्य अधिनियम की सावधानीपूर्वक जांच से पता चलेगा कि केवल धारा 63 के खंड (1) के तहत आने वाली प्रतियां साक्ष्य अधिनियम की धारा 79 के तहत प्रावधान के आधार पर असली होने और सही होने की उपधारणा करती है । धारा 79 इस प्रकार है:–

"79. प्रमाणित प्रतियों के असली होने के बारे में उपधारणा –

न्यायालय हर ऐसी दस्तावेज का असली होना उपधारित करेगा जो ऐसा प्रमाण–पत्र, प्रमाणित प्रति या अन्य दस्तावेज होने का तात्पर्यित है, जिसका किसी विशिष्ट तथ्य के साक्ष्य के रुप में ग्राह्य होना विधि द्वारा घोषित है और जिसका केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार के किसी ऑफिसर द्वारा या जम्मू काश्मीर राज्य के किसी ऐसे ऑफिसर द्वारा, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा इसके लिए सम्यक् रुप से प्राधिकृत हो, सम्यक् रुप से प्रमाणित होना तात्पर्यित है :

परंतु यह तब जबकि ऐसी दस्तावेज सारतः उस प्रारुप में हो तथा ऐसी रीति से निष्पादित हुई तात्पर्यित हो जो विधि द्वारा तन्निमित्त निर्दिष्ट है । न्यायालय यह भी उपधारणा करेगा कि कोई ऑफिसर, जिसके द्वारा ऐसी दस्तावेज का हस्ताक्षरित या प्रमाणित होना तात्पर्यित है, वह पदीय हैसियत, जिसका वह ऐसे कागज में दावा करता है, उस समय रखता था जब उसने उसे हस्ताक्षरित किया था ।"

12. इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि धारा 63 के खंड 1 के तहत आने वाली प्रतियों की असली होने और शुद्धता की उपधारणा साक्ष्य अधिनियम की धारा 79 के तहत की जाएगी। 'उपधारणा करेगा' की परिभाषा को साक्ष्य अधिनियम की धारा 4 के तहत परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है :–

"उपधारणा करेगा"– *जहां कहीं इस अधिनियम द्वारा यह निर्दिष्ट है कि न्यायालय किसी तथ्य की उपधारणा करेगा, वहां न्यायालय ऐसे तथ्य को साबित मानेगा यदि और जब तक वह नासाबित नहीं किया जाता है ।*

13. धारा 79 इस सूत्र 'ओमनिया प्रिजम्टर राईट एसे एक्टा' पर आगे बढ़ती है अर्थात् सभी कार्य सही और नियमित रूप से किए जाने की उपधारणा की जाती है। जब आधिकारिक प्रकृति के कार्य प्रक्रिया से गुजरते हैं, तो उपधारणा नियमित रुप से कार्य किये जाने के पक्ष में उत्पन्न होती है।

14. साक्ष्य अधिनियम की धारा 65, जहाँ तक प्रासंगिक है, इस प्रकार हैः–

65. अवस्थाएं जिनमें दस्तावेजों के संबंध में द्वितीयक साक्ष्य दिया जा सकेगा – *किसी दस्तावेज के अस्तित्व, दशा या अंतर्वस्तु का द्वितीयक साक्ष्य निम्नलिखित अवस्थाओं में दिया जा सकेगा–*

... ..

(ड.) जबकि मूल धारा 74 के अंतर्गत एक लोक दस्तावेज है,

(च) जबकि मूल ऐसी दस्तावेज हो जिसकी प्रमाणित प्रति का साक्ष्य में दिया जाना इस अधिनियम द्वारा या भारत में प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अनुज्ञात है ;

15. साक्ष्य अधिनियम की धारा 79 के तहत प्रावधानों के संदर्भ में कथित रूप से मध्यस्थम् खंड वाले दस्तावेज़ की एक प्रमाणित प्रति प्रस्तुत की जाती है और वह दस्तावेज़ अधिनियम की धारा 11 (6) के उद्देश्य से और साक्ष्य अधिनियम की धारा 79 के आधार पर साक्ष्य के रूप में प्राप्त किया जा सकता है, न्यायालय दस्तावेज़ की असली होने की उपधारणा करेगा, जिसे साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है और दस्तावेज़ की अंतर्वस्तु के असली होने की उपधारणा करेगा जब तक कि अन्य साक्ष्य द्वारा उपधारणा का खंडन नहीं किया जाता है। इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि मूल दस्तावेज, जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 62 के संदर्भ में प्राथमिक साक्ष्य है, को प्रस्तुत करने की अनुमति देने के अलावा, विभिन्न प्रकार के द्वितीयक साक्ष्य के अस्तित्व के बावजूद, भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा बनाई गई योजना की कंडिका 2 (क) के तहत, केवल प्रमाणित प्रति को ही उद्देश्यपूर्ण रूप से प्रस्तुत करने की अनुमति है , जैसा कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 79 के आधार पर साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 (1) के तहत उल्लेखित दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियों की वास्तविकता और शुद्धता की उपधारणा की जाती है। दूसरे शब्दों में, द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करने के अन्य तरीके न्यायालय को वास्तविकता और शुद्धता का अनुमान लगाने की अनुमति नहीं देंगे और इसलिए

धारा 11 (10) के तहत प्रावधानों के संदर्भ में बनाई गई योजना की कंडिका 2 (क) में मूल दस्तावेज प्रस्तुत करने के विकल्प में अधिनियम की धारा 11 (6) के तहत मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदन करने के उद्देश्य से कार्य करने के लिए केवल प्राथमिक साक्ष्य की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने का प्रावधान है।

16. जैसा कि पहले से ही पाया गया है कि धारा 11 (6) के तहत शक्ति के प्रयोग की प्रकृति 'न्यायिक' है और इसलिए, ऐसी शक्ति का प्रयोग करने की अनुमति केवल मूल दस्तावेज पर या अन्यथा, इसकी प्रमाणित प्रति पर, साक्ष्य अधिनियम की धारा 74 और 76 के साथ पठित धारा 63 (1) के संदर्भ में समझने के लिए उचित समझा गया था। जब एक वर्जन साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 (1), 74,76 और 79 के तहत प्रावधानों के संदर्भ में योजना की कंडिका 2 (क) के पीछे के आशय को समझा जाता है, तो अधिनियम की धारा 11 (10) के तहत बनाई गई योजना की कंडिका 2 (क) में नियोजित 'प्रमाणित प्रति' शब्द की व्याख्या साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 (1) के अलावा साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 के तहत प्रदान की गई किसी अन्य प्रकार की प्रतियों के रूप में नहीं की जा सकती है।

17. विद्वान साथी न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ ने यह समझाने के बाद कि 'प्रमाणित प्रतिलिपि' शब्द को कैसे समझा जाना चाहिए, यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 11 (6) के तहत शक्ति का प्रयोग करने वाले न्यायालय को भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के तहत शक्ति का प्रयोग करना होगा जब मूल को न्यायालय के समक्ष पेश किया जाता है। दूसरे शब्दों में, मेरे अनुसार, यह उचित रूप से अभिनिर्धारित किया जाता है कि जब मध्यस्थम् खंड वाला मूल दस्तावेज प्रस्तुत किया जाता है और यदि यह पाया जाता है कि उस पर स्टाम्प नहीं लगाई गई है या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगाई गई है, तो धारा 11 के तहत कार्य करने वाला न्यायालय भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के तहत कार्य करने के लिए कर्तव्यबद्ध है जैसा कि मसौदा निर्णय में अभिनिर्धारित किया गया है।

18. मैं इस विचार से भी सहमत हूं कि अधिनियम की धारा 11 (10) के तहत बनाई गई योजना की धारा 2 (क) के संदर्भ में मूल दस्तावेज के अलावा द्वितीयक साक्ष्य के रूप में जो प्रस्तुत करने की अनुमति है दूसरे शब्दों में वह और कुछ नहीं बल्कि प्रमाणित प्रति है जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है।लेकिन इस तरह की प्रमाणित प्रति, स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के तहत आगे बढ़ने के लिए उपलब्ध नहीं होगी यदि यह बिना स्टाम्प वाली या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प वाली है। ऐसी परिस्थितियों में, ऐसी प्रमाणित प्रति पर कार्यवाही नहीं की जाएगी।

19. प्रासंगिक स्थिति में, 'प्रमाणित प्रतिलिपि' और 'एक सत्यप्रति होने के लिए प्रमाणित प्रति' के बीच के अंतर को समझने के लिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 145 द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए सर्वोच्च न्यायालय नियम, 2013 के आदेश

VIII के नियम 1 का उल्लेख करना ही उचित है। आदेश VIII का नियम 1 इस प्रकार है:–

> *"1. न्यायालय के अधिकारी मूल प्रदर्शित एवं लोक दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियों के अलावा कोई भी अभिवचन, याचिका, शपथ पत्र या दस्तावेज प्राप्त नहीं करेंगे जब तक कि वे स्पष्ट रूप से एवं सुपाठ्य रूप से लिखे, दो–पंक्तियों के अंतराल में टंकित–लिखित या लिथोग्राफ न हो, मानक याचिका पत्र के एक तरफ, डेमी–फुल स्केप आकार का, या 29.7 सेमी x 21 सेमी के आकार का, या कागज जिसका उपयोग आम तौर पर उच्च न्यायालयों में इस उद्देश्य के लिए किया जाता है। न्यायालयों के उपयोग के लिए पेश की गई प्रतियां साफ–सुथरी एवं सुपाठ्य होना चाहिए और अधिवक्ता–ऑन–रिकॉर्ड, या स्वयं पक्षकार के द्वारा सत्यप्रति के रूप में प्रमाणित किया जाएगा, जैसा भी मामला हो।"*
>
> (जोर दिया गया)

20. इस बात की उपधारणा भी नहीं की जा सकती है कि उक्त अभिव्यक्तियों में स्पष्ट अंतर के बावजूद, कंडिका 2(क) के तहत केवल 'प्रमाणित प्रति' को अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदन के साथ संलग्न करने की अनुमति बिना किसी आशय के दी गयी है । मेरा सविचारित विचार है कि अधिनियम की धारा 11 (6) के तहत शक्ति के प्रयोग की प्रकृति और साक्ष्य अधिनियम की धारा 79 के आधार पर उपलब्ध 'प्रमाणित प्रति' की वास्तविकता और शुद्धता की उपधारणा को पूरी तरह समझते हुए, इसे इस तरह से निर्धारित किया गया था।

इस परिशिष्ट के साथ, मैं अपने विद्वान साथी न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ के निर्णय में सभी निष्कर्षों एवं निष्कर्षों का पूरी तरह से समर्थन करता हूं।

रास्टोगी, ज

अनुक्रमाणिका

स.क्र.	विषय	पृष्ठ संख्या
I.	संदर्भ	3–4
II.	परस्पर विरोधाभाषी निर्णय	4–20
III.	भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 के तहत आवश्यकतायें– भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 के प्रावधानों पर चर्चा (अध्याय IV – धारा 33–48, विशेष रुप से धारा 33, 35, 36, 38, 40, 42)	20–31
IV.	मध्यस्थम्र की भारत में एतिहासिक पृष्ठभूमि	31–37
V.	मध्यस्थम और सुलह अधिनियम 1996 की धारा 11 (6क)	37–41

	को शामिल करने के पीछे आशय	
VI.	धारा 11(6क) का मध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम 1996 की धारा 8, धारा 16 एवं धारा 45 के आधार पर विस्तार	42–53
VII.	मध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम 1996 की धारा 11(6क) के तहत न्यायालय द्वारा सीमित जांच	54–55
VIII.	"मध्यस्थम् करार के अस्तित्व" की व्याख्या	55–57
IX.	मध्यस्थम् करार पर स्टाम्प लगाने पर स्पष्टीकरण	57–59
X.	संदर्भ का उत्तर	59–61

*एडिटर नोट: अनुक्रमाणिका में पृष्ठांकन मूल निर्णय के अनुसार है।

I. संदर्भ

1. यह मामला उस विस्तार एवं परिधि से संबंधित व्यापक प्रश्न से संबंधित है जिसमें मध्यस्थम् संविदा के काम में पूर्व–रेफरल चरण में न्यायालयों का हस्तक्षेप होना चाहिए ।

2. **मेसर्स एन. एन. ग्लोबल मर्कैंटाइल प्राइवेट लिमिटेड बनाम मेसर्स इंडो यूनिक फ्लेम लिमिटेड एवं अन्य** [1] में इस न्यायालय की तीन–न्यायाधीशों की पीठ ने **विद्या दरोलिया एवं अन्य विरुद्ध दुर्गा ट्रेडिंग कार्पोरेशन** [2] मामले में इस न्यायालय की समन्वय तीन–न्यायाधीशों की पीठ के कंडिका 146 और 147.1 में व्यक्त किए गए विचार की शुद्धता पर संदेह किया है और मामले को अधिकारिक रुप से परिनिर्धारण के लिए संविधान पीठ को निर्दिष्ट किया है ।

3. संविधान पीठ को जो आधिकारिक रूप से परिनिर्धारण हेतु निर्दिष्ट किया गया है वह निम्नानुसार निर्दिष्ट किया गया है :

> "क्या स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 में निहित वैधानिक प्रतिबंध अधिनियम की अनुसूची के साथ पठित धारा 3 के तहत स्टाम्प शुल्क के लिए प्रभार्य लिखतों पर लागू होता है, वह ऐसे लिखत में निहित मध्यस्थम् करार को भी, जो स्टाम्प शुल्क के भुगतान के लिए प्रभार्य नहीं है , अस्तित्वहीन, अप्रवर्तनीय या अमान्य कर देगा, जो मूल संविदा/ लिखत पर स्टाम्प शुल्क के भुगतान के लिए लंबित है? "
>
> (जोर दिया गया)

4. हमारे विचार के लिए किए गए निर्देश की बेहतर सराहना के लिए पृष्ठभूमि तथ्य का उल्लेख करना आवश्यक है।

---

1 11(2021) 4 एससीसी 379

2 22(2021) 2 एससीसी 1

II. परस्पर विरोधाभाषी निर्णय

5. ***एस एम एस टी एस्टेट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम चांदमारी टी कंपनी प्राइवेट लिमिटेड***[3] के मामले में इस न्यायालय की दो–न्यायाधीशों की पीठ 2015 से पहले की संशोधन काल में इस विषय पर विचार कर रही थी कि क्या एक अपंजीकृत और अस्टाम्पित पट्टा विलेख में मध्यस्थम् करार, जिसके लिए रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (जिसे इसके बाद "अधिनियम 1908" के रूप में संदर्भित किया जा रहा है) के तहत अनिवार्य पंजीकरण की आवश्यकता होती है, वैध और प्रवर्तनीय था। यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था :

> "19. स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 के आधार पर जब तक कि स्टाम्प शुल्क और लिखत के संबंध में देय शास्ति का भुगतान नहीं किया जाता है, न्यायालय उक्त लिखत पर कार्यवाही नहीं कर सकता है, जिसका अर्थ है कि वह मध्यस्थम् करार पर भी कार्यवाही नहीं कर सकता है जो लिखत का भाग है। स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 एक अपंजीकृत दस्तावेज के संबंध में रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 से पृथक एवं भिन्न है। स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 में रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 जैसा कोई परंतुक नहीं है जो संपार्श्विक लेनदेन स्थापित करने के लिए लिखत का उपयोग करने में सक्षम बनाता है।
>
> 21. इसलिए, जब किसी पट्टा विलेख या किसी अन्य लिखत पर भरोसा किया जाता है कि उसमें मध्यस्थम् करार निहित है, तब न्यायालय को प्रारंभ में ही विचार करना चाहिए कि क्या इस संबंध में कोई आपत्ति उठाई गई है या नहीं, क्या दस्तावेज़ विधिवत स्टाम्पित है। यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि यह उचित रुप से स्टाम्पित नहीं है, उसे परिबद्ध किया जाना चाहिए और स्टाम्प अधिनियम की धारा 38 में निर्दिष्ट तरीके से कार्यवाही की जानी चाहिए।
>
> न्यायालय ऐसे दस्तावेज़ या मध्यस्थम् खंड पर कार्यवाही नहीं कर सकता है। लेकिन यदि स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 या धारा 40 में निर्धारित तरीके से घटा हुआ या शस्ति का भुगतान किया जाता है, तो दस्तावेज़ पर कार्यवाही की जा सकती है या साक्ष्य में स्वीकार किया जा सकता है।"

6. उपरोक्त निर्णय का अनुशरण **नैना ठक्कर बनाम अन्नपूर्णा बिल्डर्स** [4] के मामले में किया गया है, जिसमें यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया थाः

> "7. यह सच है कि स्टाम्प अधिनियम, 1899 में वर्णित परिणामों का पालन किया जाना चाहिए, जहां किसी लिखत पर पर्याप्त स्टाम्प शुल्क का भुगतान नहीं किया गया है, भले ही किसी पक्ष ने घटे हुए स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने की इच्छा व्यक्त की हो, लेकिन प्रक्रिया जहां मध्यस्थम् खण्ड एक ऐसे दस्तावेज

---

3 33(2011) 14 एससीसी 66

4 44(2013) 14 एससीसी 354

में निहित हो जो अनिवार्य रुप से पंजीकरण योग्य होने के बावजूद पंजीकृत नहीं है और जिस पर इस न्यायालय द्वारा संक्षेपित अनुसार **एस एम एस टी एस्टेट्स (पी) लिमिटेड** के मामले में विधिवत स्टाम्पित नहीं है, मध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम की धारा 8 के तहत कार्यवाही पर लागू नहीं होगा, जहां ऐसा आवेदन करने वाला पक्ष घटे हुए स्टाम्प शुल्क और शस्ति का भुगतान करने के लिए अपनी तत्परता और इच्छा व्यक्त नहीं करता है। यह न्यायालय का कर्तव्य नहीं है कि वह प्रकरण को अनिश्चित काल के लिए स्थगित करे जब तक कि मध्यस्थम् करार से संबंधित घटे स्टाम्प शुल्क के संदर्भ में दोष ठीक नहीं किया जाता। तदनुसार, हमारी राय है कि अधिनियम की धारा 8 के तहत किए गए आवेदन को खारिज करने में विचारण न्यायालय के आदेश में कोई गलती नहीं पाई जा सकती है क्योंकि जिस दस्तावेज पर याचिकाकर्ता ने भरोसा किया था वह स्वीकार्य रूप से अपंजीकृत था और अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगी थी।"

7. मध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (इसके बाद इसे "अधिनियम, 1996" के रूप में संदर्भित किया जा रहा है) में एक संशोधन लाया गया और 2016 में धारा 11 (6क) जोड़ी गयी ।

8. ***गरवारे वॉल रोप्स लिमिटेड बनाम कोस्टल मरीन कंस्ट्रक्शंस एंड इंजीनियरिंग लिमिटेड*** [5] में दो–न्यायाधीशों की पीठ के द्वारा इस मामले पर विचार किया गया कि क्या एक करार में एक मध्यस्थम् खण्ड है जिसके लिए सुसंगत भारी स्टाम्प अधिनियम, 1899 (जिसे इसके बाद "अधिनियम, 1899" के रूप में संदर्भित किया जा रहा है) के तहत अनिवार्य रूप से स्टाम्पित होना चाहिए परंतु वह विधिवत रुप से स्टाम्पित नहीं है, अधिनियम, 1996 की धारा 11 में खंड

(6क) को शामिल करने के बाद भी प्रवर्तनीय होगा । पीठ ने **एस एम एस टी एस्टेट्स प्राइवेट लिमिटेड** (उपरोक्त) में निर्णय में दिये गये तर्क एवं पुष्टि का अनुशरण किया है और अभिनिर्धारित किया है :

"19. धारा 11 (6क) को ध्यान से देखने से पता चलता है कि जब उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय धारा 11 (4) से 11 (6) के तहत एक आवेदन पर विचार करता है, और किसी करार या हस्तांतरण में एक मध्यस्थम् खंड सामने आता है, जो अस्टाम्पित है, तो स्टाम्प अधिनियम के प्रावधानों के द्वारा यह आदेश दिया जाता है कि पहले करार या हस्तांतरण को परिबद्ध किया जाए और यह देखा जाए कि संपूर्ण करार पर कार्यवाही करने से पहले स्टाम्प शुल्क और शास्ति (यदि कोई हो) का भुगतान कर दिया जाए। यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि स्टाम्प अधिनियम समग्र रूप से करार या हस्तांतरण पत्र पर लागू होता है। इसलिए, ऐसे करार या हस्तांतरण में निहित मध्यस्थम् खंड को विभाजित करना संभव नहीं है ताकि इसे एक स्वतंत्र अस्तित्व दिया जा सके,

5 55(2019) 9 एससीसी 209

जैसा कि प्रत्यर्थी द्वारा तर्क दिया गया है। स्वतंत्र अस्तित्व जो कुछ सीमित उद्देश्यों के लिए दिया जा सकता था, रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 और 1996 अधिनियम के सामंजस्यपूर्ण अध्ययन पर, रवींद्रन, जे. द्वारा एसएमएस टी एस्टेट में संदर्भित किया गया है जब यह एक अपंजीकृत करार या हस्तांतरण की बात आती है। तथापि, स्टाम्प अधिनियम, जिसमें ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 49 में निहित है, उक्त निर्णय द्वारा समग्र रूप से करार या हस्तांतरण पर लागू होने के लिए अभिनिर्धारित किया गया है, जिसमें उसमें निहित मध्यस्थम् खंड शामिल होगा।इसलिए, यह स्पष्ट है कि धारा 11 (6–क) की शुरूआत, किसी भी तरह से, एसएमएस टी एस्टेट्स में निर्णय के आधार से संबंधित नहीं है, जो धारा 11 (6–क) के संशोधन के बाद भी लागू होती है।

22. जब एक मध्यस्थता खंड "एक संविदा में" निहित होता है, तो यह महत्वपूर्ण है कि करार केवल एक संविदा बन जाता है यदि यह विधि द्वारा लागू किया जा सकता है। हमने देखा है कि कैसे, स्टाम्प अधिनियम के तहत, एक करार एक संविदा नहीं बन जाता है, अर्थात्, यह विधि में प्रर्वतनीय नहीं है, जब तक कि उस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई जाती है। इसलिए, धारा 11 (6–ए) को जब 1996 के अधिनियम की धारा 7 (2) और संविदा अधिनियम की धारा 2 (एच) के साथ पढ़ा जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी करार में मध्यस्थता खंड तब मौजूद नहीं होगा जब वह विधि द्वारा लागू नहीं किया जा सकता है। यह भी एक संकेतक है कि धारा 11 (6–ए) के संशोधन ने किसी भी तरह से एस. एम. एस. टी एस्टेट को प्रभावित नहीं किया है।"

9. गरवारे वॉल रोप्स लिमिटेड (ऊपर) में निर्णय था **विद्या द्रोलिया और अन्य (ऊपर) के मामले में तीन–न्यायाधीशों की पीठ द्वारा अनुमोदन में उद्धृत किया गया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया थाः**

"146. अब हम इस प्रश्न की जांच करने के लिए आगे बढ़ते हैं कि क्या धारा 11 में "अस्तित्व" शब्द केवल संविदा गठन (क्या कोई मध्यस्थता करार है) को संदर्भित करता है और प्रवर्तन (वैधता) के प्रश्न को बाहर करता है और इसलिए बाद वाला निर्देश स्तर पर न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर आता है। न्यायशास्त्र और पाठ्यवाद पर मध्यस्थता करार के अस्तित्व और मध्यस्थता करार की वैधता के बीच अंतर करना संभव है। इस तरह की व्याख्या "अस्तित्व" शब्द के स्पष्ट अर्थ से समर्थन प्राप्त कर सकती है। हालाँकि, न्यायशास्त्र और प्रासंगिकता पर यह मानना भी समान रूप से संभव है कि किसी करार का कोई अस्तित्व नहीं है यदि वह प्रर्वतनीय नहीं है और बाध्यकारी नहीं है। एक मध्यस्थता करार का अस्तित्व एक वैध करार का अनुमान लगाता है जिसे अदालत द्वारा पक्षकारों को मध्यस्थता के लिए खारिज करके लागू किया जाएगा। कानूनी और सादे अर्थ की व्याख्या परिभाषा खंड सहित प्रासंगिक पृष्ठभूमि के विपरीत होगी और इसके परिणामस्वरूप अप्रिय परिणाम होंगे।"अस्तित्व" की एक उचित और न्यायपूर्ण व्याख्या के लिए बाध्यकारी और प्रवर्तनीय मध्यस्थता करार के लिए लागू संदर्भ, उद्देश्य और प्रासंगिक कानूनी मानदंडों को समझने की

आवश्यकता होती है।लिखित रूप में प्रमाणित करार का कोई अर्थ नहीं है जब तक कि पक्षों को शर्तों का पालन करने और उनका पालन करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है। एक पक्ष एक अप्रवर्तनीय दस्तावेज़ के आधार पर अधिकारों का दावा नहीं कर सकता है। इस प्रकार, यह मानने के लिए अच्छे कारण हैं कि एक मध्यस्थता करार केवल तभी मौजूद होता है जब वह वैध और कानूनी होता है। एक शून्य औरअप्रवर्तनीय समझ कुछ भी करने के लिए कोई करार नहीं है। मध्यस्थता करार के अस्तित्व का अर्थ है एक मध्यस्थता करार जो मध्यस्थता अधिनियम और संविदा अधिनियम दोनों की वैधानिक आवश्यकताओं को पूरा करता है और संतुष्ट करता है और जब यह विधि में प्रर्वतनीय होता है।

147. हम विस्तार से आगे बढ़ेंगे और आगे के कारण देंगे:147.1 गरवारे वॉल रोप्स लिमिटेड में, इस न्यायालय ने एक मध्यस्थता खंड के साथ एक अंतर्निहित संविदा में स्टाम्प शुल्क के प्रश्न की जांच की थी और इस संदर्भ में मध्यस्थता अधिनियम की धारा 7 (2) के पहले और दूसरे भाग के बीच अंतर किया था, हालांकि मध्यस्थता करार के 'अस्तित्व' और 'वैधता' के संदर्भ में ऊपर की गई और उद्धृत टिप्पणियाँ उपयुक्त और अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, हम उसके पैराग्राफ 29 को पुनः प्रस्तुत करके इसे दोहराएंगे:

"29. हुंडई इंजी. में यह निर्णय। मामला इस मायने में महत्वपूर्ण है कि विशेष रूप से विचाराधीन एक मध्यस्थता खंड था जो केवल तभी सक्रिय होगा जब कोई बीमाकर्ता देयता स्वीकार करता है या स्वीकार करता है।तथ्यों के आधार पर यह पाया गया कि बीमाकर्ता ने दावे को अस्वीकार कर दिया, हालांकि एक मध्यस्थता खंड "मौजूद" था, इसलिए पॉलिसी में, यह विधि में मौजूद नहीं होगा, जैसा कि उस फैसले में माना गया था, जब एक महत्वपूर्ण तथ्य पेश किया जाता है, अर्थात्, बीमाकर्ता ने दायित्व को स्वीकार या स्वीकार नहीं किया है।इसी तरह, वर्तमान मामले के तथ्यों में, यह स्पष्ट है कि उप–संविदा में निहित मध्यस्थता खंड तब तक कानूनी मामले के रूप में "मौजूद" नहीं होगा जब तक कि उप–संविदा पर विधिवत स्टाम्पित नहीं हो जाती, जैसा कि हमारे द्वारा ऊपर माना गया है। यह तर्क कि धारा 11 (6–ए) धारा 8, धारा 16 और धारा 45 के विपरीत "अस्तित्व" से संबंधित है, जो एक मध्यस्थता करार की "वैधता" से संबंधित है, हुंडई इंजी. में अभिव्यक्ति "अस्तित्व" की इस अदालत की समझ से जवाब मिलता है। मामला, जैसा कि हमारे द्वारा अनुसरण किया गया।";अस्तित्व और वैधता आपस में जुड़े हुए हैं, और मध्यस्थता करार मौजूद नहीं है यदि यह अवैध है या अनिवार्य कानूनी आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता है। अवैध करार कोई करार नहीं है।"

(जोर दिया गया)

10. बाद में, मेसर्स एन. एन. ग्लोबल मर्कैंटाइल प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) की तीन– न्यायाधीशों की पीठ ने अभिनिर्धारित किया कि मध्यस्थता न्यायशास्त्र में,

"मध्यस्थता करार एक विशिष्ट और अलग करार है, जो उस मूल वाणिज्यिक संविदा से स्वतंत्र है जिसमें यह अंतर्निहित है। इस तीन –न्यायाधीशों की पीठ ने संविधान पीठ का संदर्भ दिया, क्योंकि उसने संविधान में व्यक्त किए गए विचार के साथ अपनी असहमति व्यक्त की। **एस. एम. एस. टी एस्टेट्स प्राइवेट लिमिटेड (ऊपर), गरवारे वॉल रोप्स लिमिटेड (ऊपर), और विद्या द्रोलिया और अन्य (ऊपर) इसमें अवधारित किया गयाः**

> "26. हमारे विचार में, मध्यस्थता करार की प्रवर्तनीयता में कोई कानूनी बाधा नहीं है, मूल संविदा पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान लंबित है। कार्य आदेश या मूल वाणिज्यिक संविदा के तहत अधिकारों और दायित्वों का निर्णय हालांकि स्टाम्प अधिनियम के आदेशात्मक प्रावधानों का पालन करने से पहले आगे नहीं बढ़ेगा।
>
> 28. हमारे विचार में, एस. एम. एस. टी एस्टेट में निर्णय दो मुद्दों पर विधि में सही स्थिति निर्धारित नहीं करता है अर्थात (i) कि एक अस्टाम्पित वाणिज्यिक संविदा में एक मध्यस्थता करार पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है, या विधि में अप्रवर्तनीय है; और (ii) कि एक मध्यस्थता करार अवैध होगा जहां संविदा या साधन एक पक्ष के विकल्प पर शून्यकरणीय है, जैसे कि भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 19.
>
> 29. हम मानते हैं कि चूंकि मध्यस्थता करार पक्षों के बीच एक स्वतंत्र करार है, और स्टाम्प शुल्क के भुगतान के लिए प्रभार्य नहीं है, इसलिए वाणिज्यिक संविदा पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान न करने से मध्यस्थता खंड अवैध नहीं होगा, या इसे अप्रवर्तनीय नहीं बनाया जाएगा, क्योंकि इसका अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व है। मूल संविदा के पंजीकरण पर मध्यस्थता खंड की पृथकता के मुद्दे पर न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण का स्टाम्प अधिनियम के संबंध में भी पालन किया जाना चाहिए था। मूल संविदा पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान न करने से मुख्य संविदा भी अमान्य नहीं होगा।यह एक ऐसी कमी है जिसे आवश्यक स्टाम्प शुल्क के भुगतान पर ठीक किया जा सकता है।"

11. इसने एस. एम. एस. टी एस्टेट्स प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) में लिए गए दृष्टिकोण की शुद्धता पर भी संदेह किया, जिसे गरवारे वॉल रोप्स लिमिटेड (ऊपर) और विद्या द्रोलिया और अन्य (ऊपर), में अनुमोदित किया गया था और अवधारित किया गया है:

> "56. हमारा विचार है कि एस. एम. एस. टी एस्टेट और गरवारे में यह निष्कर्ष कि वाणिज्यिक संविदा पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान न करने से मध्यस्थता भी अवैध हो जाएगी यहां तक कि मध्यस्थता करार भी, और इसे विधि में अस्तित्वहीन और अप्रवर्तनीय बना देता है,विधि में सही स्थिति नहीं है ।
>
> 57. एक समन्वित पीठ, जिसने गरवारे में फैसले की पुष्टि की है, द्वारा विद्या द्रोलिया मामले में फैसले के पैराग्राफ 146 और 147 में दिए गए निष्कर्ष को देखते हुए, उपरोक्त मुद्दे को इस अदालत की संविधान पीठ द्वारा अधिकृत रूप से निपटाया जाना आवश्यक है।"

12. मेसर्स एन. एन. ग्लोबल मर्कैंटाइल प्राइवेट लिमिटेड (ऊपर) और विद्या द्रोलिया और अन्य (ऊपर) दोनों की पीठें समान रूप से, इस संविधान पीठ को इस मुद्दे पर आधिकारिक रूप से निर्णय देने के लिए कहा गया है। इस मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए, इस पीठ को सबसे पहले इस बात की जांच करने की आवश्यकता है कि क्या अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6ए) के तहत मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए पूर्व–संदर्भित चरण में अधिनियम, 1899 के तहत आवश्यकताओं की जांच की जानी आवश्यक है।

13. श्री गौरव बनर्जी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जो इस न्यायालय की सहायता के लिए न्यायमित्र के रूप में उपस्थित होते हैं, प्रस्तुत करते हैं कि अधिनियम, 1996 और समय–समय पर किए गए बाद के संशोधनों का उद्देश्य प्रक्रिया को सुव्यवस्थित करना था और मध्यस्थता कार्यवाही में न्यायिक हस्तक्षेप मध्यस्थता प्रक्रिया में देरी को महत्वपूर्ण रूप से जोड़ता है और यह मध्यस्थता के लाभ को नकारता है। मध्यस्थता और सुलह (संशोधन) अधिनियम, 2015 (जिसे इसके बाद 2015 संशोधन के रूप में संदर्भित किया जा रहा है) को अदालत के न्यूनतम हस्तक्षेप के साथ मध्यस्थता से संबंधित मामलों के त्वरित निपटान पर जोर देने के लिए पेश किया गया था।

14. श्री बनर्जी प्रस्तुत करते हैं कि जहां तक धारा 11 के दायरे और दायरे का संबंध है, यह केवल अंतराल को भरने के लिए है और न्यायालय केवल एक नियुक्ति प्राधिकरण के रूप में काम कर रहा है जहां पक्ष एक मध्यस्थ नियुक्त करने में विफल रहते हैं। धारा 11 (6ए) (2015 संशोधन) को शामिल करने के बाद, विधायी नीति और उद्देश्य अनिवार्य रूप से मध्यस्थ की नियुक्ति के स्तर पर न्यायालय के हस्तक्षेप को कम करने के लिए हैं और इस इरादे के साथ, धारा 11 (6ए) को शामिल किया गया है जिसका सम्मान किया जाना चाहिए।

15. श्री बनर्जी ने आगे कहा कि न्यायालय का दायरा संविदा निर्माण के चरण में मध्यस्थता करार के औपचारिक अस्तित्व की जांच तक सीमित होना चाहिए, जिसमें यह भी शामिल है कि क्या करार लिखित रूप में है और करार के गठन के लिए मुख्य संविदात्मक तत्व पूरे किए जाते हैं। दुर्लभ अवसरों पर, यदि पक्षकारों द्वारा कोई प्रश्न उठाया जा रहा है, तो कुछ हद तक न्यायालय विवाद के विषय की मध्यस्थता के रूप में जांच कर सकता है, लेकिन वह भी एक अपवाद के रूप में। उसी समय, जहाँ तक अधिनियम, 1899 का संबंध है, यह केवल कुछ वर्गों के लिखतों में राज्य के राजस्व को सुरक्षित करने के लिए अधिनियमित एक राजकोषीय उपाय है, लेकिन इसका उपयोग किसी वादी को उसके प्रतिद्वंद्वी के मामले से निपटने के लिए तकनीकी हथियार से लैस करने के लिए नहीं किया जा सकता है। एक वर्जन जब राजस्व का उद्देश्य विधि के अनुसार सुरक्षित हो जाता है, तो लिखत में अपना दावा करने वाले पक्ष को लिखत में प्रारंभिक दोष के आधार पर पराजित नहीं किया जाएगा।

16. श्री बनर्जी ने आगे कहा कि स्टाम्प शुल्क का भुगतान न करना भी एक उपचार योग्य दोष है और मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा दस्तावेज को साक्ष्य में स्वीकार करने से पहले इस दोष को किसी भी स्तर पर ठीक किया जा सकता है। यदि धारा 11 के तहत न्यायालय द्वारा पूर्व–रेफरल चरण में स्टाम्प या अनुचित रूप से स्टाम्प की अपर्याप्तता की जांच/निर्णय लिया जा रहा है, तो यह मध्यस्थता के संदर्भ का विरोध करने

में परजीवी चुनौतियों और विलंबकारी रणनीति को प्रोत्साहित करने के अलावा और कुछ नहीं होगा। स्वाभाविक समाधान अनिवार्य है कि मध्यस्थ की नियुक्ति की जाए और विवाद समाधान की कार्यवाही शुरू करने की अनुमति दी जाए और मध्यस्थ न्यायाधिकरण को अधिनियम, 1996 के तहत अपने कर्तव्य को पूरा करने की अनुमति दी जाए। ऐसा कोई कारण नहीं है कि मध्यस्थ न्यायाधिकरण स्टाम्प शुल्क की चोरी को रोक नहीं सकता है।

17. यह भी हमारे ध्यान में लाया जाता है कि पूर्व–निर्दिष्ट स्तर पर धारा 11 के तहत आवेदन जमा करते समय, पक्षकार एक मूल मध्यस्थता करार दायर करने के लिए बाध्य नहीं हैं और चूंकि मध्यस्थता करार की प्रति आवेदन के साथ संलग्न की जानी है , इसलिए सही मायने में, यह अधिनियम, 1899 की धारा 2 (14) के तहत विचार किया जाने वाला एक लिखत नहीं है, विशेष रूप से पूर्व–निर्दिष्ट स्तर पर, अधिनियम, 1899 की धारा 33 या 35 को लागू करने का प्रश्न लागू करने के लिए उपलब्ध नहीं है। श्री. बनर्जी ने अपने प्रस्तुतिकरण के समर्थन में **जुपुडी केशव राव बनाम पुलवर्थी वेंकट सुब्बाराव और अन्य** [6] में रिपोर्ट किए गए इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है **जिसके बाद इस न्यायालय ने हरिओम अग्रवाल बनाम प्रकाश चंद मालवीय** [7] में अनुसरण किया गया ।

18. इसकी सहायता लेते हुए, श्री बनर्जी प्रस्तुत करते हैं कि धारा 33 या 35 लिखत की किसी भी प्रति से संबंधित नहीं हैं और अधिनियम, 1899 के उद्देश्य के लिए दस्तावेज़ की प्रति को शामिल करने की कोई गुंजाइश नहीं है। अधिनियम, 1899 की धारा 2 (14) के अर्थ के भीतर लिखत की प्रति को परिबद्ध करके मान्य नहीं किया जा सकता है और इसे अधिनियम, 1899 के तहत द्वितीयक साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

6 (1971) 1 एससीसी 545
7 (2007) 8 एससीसी 514 ए

19. श्री बनर्जी ने आगे प्रस्तुत किया कि इस न्यायालय के विचार के लिए उठाया गया प्रश्न कि क्या मध्यस्थता करार वैध है या विधि में मौजूद है, पूर्व–रेफरल चरण में जांच के लिए खुला नहीं है क्योंकि मूल लिखत रिकॉर्ड में नहीं है (मध्यस्थता करार) और धारा 33 और 35 का एक संयुक्त पठन लिखत की किसी भी प्रति से संबंधित नहीं है और पक्ष को केवल साक्ष्य में दस्तावेज़ पर भरोसा करने की अनुमति दी जा सकती है जो धारा 2 (14) के अर्थ के साथ एक साधन है और दस्तावेज़ की वैधता हमेशा अधिनियम, 1996 की धारा 16 में निहित अपने अधिकार क्षेत्र में मध्यस्थ /मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा रेफरल के बाद के चरण में जांच के लिए खुली है।

20. अपीलार्थी के विद्वान वकील श्री गगन सांघी प्रस्तुत करते हैं कि अधिनियम, 1899 की धारा 35 "किसी भी उद्देश्य के लिए" और "उस पर कार्रवाई करने" के लिए सबूत में अपर्याप्त रूप से स्टाम्प वाले "लिखत" के ग्रहण पर रोक लगाती है और यह इस न्यायालय द्वारा **आंध्र प्रदेश सरकार एवं अन्य बनाम पी. लक्ष्मी देवी (श्रीमती)** में अवधारित किया गया था कि अधिनियम, 1899 की धारा 33 में "होगा" आदेशात्मक है और बिना स्टाम्प वाले दस्तावेज़ को परिबद्ध किया जाना चाहिए। यह मानते हुए भी कि स्टाम्प शुल्क अधिनियम, 1899 के तहत एक मध्यस्थता करार पर देय नहीं है, जब मध्यस्थता करार एक ऐसे लिखत में एक खंड के रूप में निहित है जिस पर स्टाम्प शुल्क देय है, तो एक लिखत के रूप में ऐसा मध्यस्थता करार, अधिनियम, 1899 की धारा 35 के प्रतिबंध को आकर्षित करता है।

21. श्री सांघी ने आगे कहा कि मूल संविदा से करार को अलग करना अधिनियम, 1996 की धारा 16 द्वारा बनाई गई एक कानूनी कल्पना के अलावा और कुछ नहीं है और यह अधिनियम, 1899 की धारा 35 का अपवाद नहीं हो सकता है।

22. श्री सांघी आगे प्रस्तुत करते हैं कि पृथकता के सिद्धांत और कोम्पेटेंज़ – कोम्पेटेंज़ का मध्यस्थता करार की प्रवर्तनीयता के मुद्दे पर कोई प्रभाव नहीं है जब मध्यस्थता करार वाले लिखत पर उचित स्टाम्प शुल्क का भुगतान नहीं किया जाता है और **एनका इंसात वे सनायी ए. एस. बनाम ओ. ओ. ओ. बीमा कंपनी चब्ब** [9] में यू. के. सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया गया है, जहां यह अभिनिर्धारित किया गया था कि "मध्यस्थता खंड फिर भी संविदात्मक दस्तावेज़ में दर्ज अधिकारों और दायित्वों के बंडल का हिस्सा है" और उनके अनुसार, मुद्रांकन के मुद्दे को बहुत हद तक देखा जाना है, भले ही यह धारा 11 (6ए) के प्रयोग में हो, यानी मध्यस्थ की नियुक्ति के संबंध में पूर्व–मध्यस्थता चरण के समय। उनके अनुसार, एक लिखत विधि में तभी मौजूद होगा जब वह प्रर्वतनीय हो और मध्यस्थता करार के संबंध में अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6ए) में परिभाषित "अस्तित्व" एक वैध प्रर्वतनीय करार होना चाहिए और यह हमेशा प्रारंभिक/पूर्व–रेफरल चरण में ही गैर–मुद्रांकन या अपर्याप्त रूप से मुद्रांकन के मुद्दे की जांच करने के लिए खुला रहता है और एम/एस.एन.एन. ग्लोबल मर्केंटाइल प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) में प्रदान किए गए तीन तरीकों को उजागर करता है, अर्थात अधिनियम, 1996 की धारा 11 के तहत दायर एक आवेदन पर, मुद्रांक शुल्क का भुगतान और मध्यस्थ की नियुक्ति, अदालत निश्चित रूप से मध्यस्थता खंड पर "कार्रवाई" कर रही है, जिसे अधिनियम द्वारा प्रतिबंधित किया गया है।

8 (2008) 4 एससीसी 720
9 (2020) यूकेएससी 38 ए

23.सुश्री मालविका त्रिवेदी, विद्वान वरिष्ठ वकील, जो 2022 के आई. ए. No.18516 में हस्तक्षेपकर्ता की ओर से पेश होती हैं, प्रस्तुत करती हैं कि अधिनियम, 1899 और अधिनियम, 1908 की व्यवस्थाएं पूरी तरह से अलग हैं। **मेसर्स एन. एन. ग्लोबल मर्कैंटाइल प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त)** ने दस्तावेज़ पर स्टाम्प लगाने की आवश्यकता के लिए दस्तावेज़ के पंजीकरण के सिद्धांतों को गलत तरीके से लागू किया। जबकि पहला एक उपचार योग्य दोष है, दूसरा एक दस्तावेज़/लिखत के अस्तित्व और पूर्णता को निर्धारित करता है। पंजीकरण के अभाव में, एक लिखत अस्तित्व में रहेगा लेकिन मुद्रांकन के बिना, लिखत अधूरा/असंबद्ध है।

24. सुश्री त्रिवेदी आगे प्रस्तुत करती हैं कि अधिनियम, 1899 में स्टाम्प शुल्क के भुगतान की परिकल्पना की गई है, जिसमें विफल रहने पर उनके अनुसार, किसी भी उद्देश्य के लिए कार्य नहीं किया जा सकता है और क़ानून की भाषा में कोई अस्पष्टता नहीं है और हमें क़ानून की व्याख्या के सुनहरे सिद्धांतों का पालन करना होगा।

25. सुश्री त्रिवेदी आगे प्रस्तुत करती हैं कि विधि के विभिन्न प्रावधानों के साथ – साथ अधिनियम, 1899 में बनाए गए प्रतिबंधों के तहत न्यायालय की शक्तियां अधिनियम, 1996 की धारा 9 के अनुसार संचालित कार्यवाही पर लागू होती हैं और प्रस्तुत करती हैं कि भले ही मध्यस्थता खंड अलग हो गया हो, न्यायालय को प्रथम दृष्टया इस निष्कर्ष पर पहुंचना होगा कि क्या अधिनियम, 1996 की धारा 9 को लागू करने वाले अंतरिम उपायों को देने से पहले मूल संविदा जिसमें मध्यस्थता का खंड शामिल है, विधि में प्रर्वतनीय है या नहीं।

26. 2022 के आई. ए. सं. 199969 में हस्तक्षेपकर्ता के विद्वान वकील श्री देबेश पांडा प्रस्तुत करते हैं कि अधिनियम, 1996 का भाग I धारा 8,9 और 11 से संबंधित है, जबकि धारा 45 भाग II के भीतर है। धारा 45 में है – भाग II के तहत एक प्रावधान के रूप में मान्यता दी गई है जो एक पूर्ण संहिता है। धारा 45 में "जब तक यह नहीं मिलता" अभिव्यक्ति की व्याख्या बहुमत द्वारा की गई थी। **शिन–एटसु केमिकल कंपनी लिमिटेड बनाम अक्ष ऑप्टिफ़ाइबर लिमिटेड और अन्य** [10] प्रथम दृष्टया विचार के रूप में। 2019 में, संसद ने धारा 45 में संशोधन करते हुए "जब तक वह नहीं पाता" अभिव्यक्ति को "जब तक वह प्रथम दृष्टया नहीं पाता" के साथ प्रतिस्थापित किया, जो क़ानून को **शिन एत्सु** (सुप्रा) में तय की गई स्थिति के अनुरूप लाता है। इस पृष्ठभूमि में, अधिनियम, 1899 केवल एक अस्थायी प्रभाव पैदा करता है जब तक कि स्टाम्प शुल्क की वसूली दंड के साथ या बिना दंड के की जाती है। पीड़ा केवल लिखत से जुड़ी होती है न कि लेन–देन से।

27. श्री के. रमाकांत रेड्डी, प्रतिवादी नं.1 अधिनियम, 1996 के अधिनियमन से पहले प्रासंगिक लोकसभा बहसों के माध्यम से हमें ले गया और इसकी सहायता लेते हुए प्रस्तुत करता है कि अधिनियम 1996, अधिनियम 1899 और संविदा अधिनियम, 1872 (इसके बाद "अधिनियम, 1872" के रूप में संदर्भित किया जा रहा है) के प्रावधानों को

सुसंगत बनाया जाना चाहिए। अधिनियम, 1899 की धारा 17 को अधिनियम, 1899 की धारा 31 के साथ पढ़ा जाना चाहिए। अधिनियम, 1996 की धारा 7 की सरल भाषा में यह

10 (2005) 7 एससीसी 234 ए

आवश्यक नहीं है कि पक्ष करार पर स्टाम्प लगाने के लिए बाध्य हों।यदि न्यायालय अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6ए) के तहत शक्ति का आह्वान करने वाले मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए पूर्व–मध्यस्थता चरण में मध्यस्थता करार पर कार्य करने के उद्देश्य से गैर–प्रमुख तकनीकी आवश्यकताओं जैसे टिकट, स्टाम्प और मूल पर जोर देता है, तो विधायी इरादे को विफल कर दिया जाएगा।

28. प्रत्यर्थियों के लिए विद्वान वकील, आगे प्रस्तुत करते हैं कि मामले के तत्काल तथ्यों में, मध्यस्थता के लिए विवादों के संदर्भ के लिए धारा 8 के तहत एक आवेदन दायर किया गया था और यह महाराष्ट्र स्टाम्प अधिनियम, 1958 की धारा 34 के तहत बनाए रखने योग्य नहीं था जो अधिनियम, 1899 के लगभग समान है।कार्य आदेश एक अनस्टैम्प्ड दस्तावेज़ होने के कारण किसी भी उद्देश्य के लिए साक्ष्य में प्राप्त नहीं किया जा सकता है, या उस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है, जब तक कि उस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई जाती है।इसके परिणामस्वरूप, अनस्टैम्प्ड करार में मध्यस्थता खंड पर भी कार्रवाई या प्रवर्तन नहीं किया जा सकता था क्योंकि मध्यस्थता खंड का विधि में कोई अस्तित्व नहीं होगा, जब तक कि कार्य आदेश पर लागू स्टाम्प शुल्क (और शास्ति, यदि कोई हो) का भुगतान नहीं किया जाता है और **गरवारे वॉल रोप्स लिमिटेड (ऊपर)** में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा नहीं किया जाता है।

29. विद्वान वकील आगे प्रस्तुत करते हैं कि उच्च न्यायालय ने धारा 8 के तहत आवेदन पर भरोसा करते हुए एक गैर–अस्तित्व को लागू किया था मध्यस्थता खंड जो महाराष्ट्र स्टाम्प अधिनियम, 1958 की धारा 34 का उल्लंघन करता है और आगे तर्क दिया कि प्रतिवादी ने स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने की अपनी इच्छा का संकेत नहीं दिया था, भले ही बाद के चरण में, एक आपत्ति उठाई गई थी और इसलिए, मध्यस्थता के खंड के तहत अब स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने का कोई और अवसर देने का कोई औचित्य नहीं है।

30. हमने पक्षों के लिए विद्वान वकील को सुना है और उनकी सहायता से रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अध्ययन किया है और संदर्भ में जाने से पहले, हम संदर्भ से संबंधित वैधानिक प्रावधानों पर चर्चा करना उचित समझते हैं।

III. भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 के तहत आवश्यकताएँ

31. अधिनियम, 1899 एक राजकोषीय विधि है जो लेन–देन को दर्ज करने वाले लिखत पर डाक टिकट के रूप में लगाए गए कर से संबंधित विधि को निर्धारित करता है। भारत के संविधान की अनुसूची VII की सूची I (संघ सूची) की प्रविष्टि 91 में निर्दिष्ट उपकरणों पर स्टाम्प शुल्क (अर्थात। विनिमय पत्र, चेक, वचन पत्र, लदान पत्र, ऋण पत्र, बीमा पॉलिसियां, शेयरों का हस्तांतरण, डिबेंचर, प्रॉक्सी और रसीदें) केंद्र सरकार द्वारा लगाए जाते हैं।इसी तरह, उपरोक्त संघ सूची की प्रविष्टि 91 में उल्लिखित उपकरणों के

अलावा अन्य उपकरणों पर स्टाम्प शुल्क राज्यों द्वारा अनुसूची VII की सूची II (राज्य सूची) की प्रविष्टि 63 के अनुसार लगाया जाता है। शुल्क की दरों से संबंधित प्रावधानों के अलावा अन्य प्रावधान सूची III (समवर्ती सूची) की प्रविष्टि 44 के आधार पर संघ और राज्यों दोनों की विधायी शक्ति के अंतर्गत आते हैं।हालांकि, सभी लिखतों पर स्टाम्प शुल्क संबंधित राज्यों द्वारा एकत्र और रखा जाता है।

32. 'लिखत' शब्द को अधिनियम, 1899 की धारा 2 (14) के तहत परिभाषित किया गया है और 'शुल्क के लिए प्रभार्य लिखत" धारा 3 के तहत प्रदान किया गया है, जबकि धारा 17 में प्रावधान है कि भारत में किसी भी व्यक्ति द्वारा शुल्क के साथ प्रभार्य और निष्पादित सभी लिखतों' पर स्टाम्प लगानी होगी।

33. अधिनियम, 1899 की धारा 2 (14), 3 और 17 को नीचे निकाला गया है:–

> **" 2(14) - लिखत "**— लिखत में प्रत्येक दस्तावेज शामिल होता है जिसके द्वारा कोई अधिकार या दायित्व बनाया जाता है, हस्तांतरित किया जाता है, सीमित किया जाता है, विस्तारित किया जाता है, समाप्त किया जाता है या दर्ज किया जाता है:
>
> **3. शुल्क के साथ प्रभार्य लिखत'**—विषय के अधीन इस अधिनियम के प्रावधान और अनुसूची I में निहित छूट, निम्नलिखित लिखत उस अनुसूची में इंगित राशि के शुल्क के साथ क्रमशः उचित शुल्क के रूप में प्रभार्य होंगे, अर्थात –
>
> (क) उस अनुसूची में उल्लिखित प्रत्येक लिखत, जिसे पहले किसी व्यक्ति द्वारा निष्पादित नहीं किया गया है, जुलाई, 1899 के पहले दिन या उसके बाद [भारत] में निष्पादित किया जाता है;
>
> (ख) उस दिन या उसके बाद तैयार किया गया या भारत से बनाया गया, और स्वीकार किया गया या भुगतान किया गया, या स्वीकृति या भुगतान के लिए प्रस्तुत किया गया, या समर्थन किया गया, हस्तांतरित किया गया या अन्यथा बातचीत की गई, प्रत्येक विनिमय पत्र (मांग के अलावा अन्यथा देय) या वचन पत्र (भारत) में; और
>
> (ग) उस अनुसूची में उल्लिखित प्रत्येक लिखत (विनिमय पत्र, या वचन पत्र के अलावा), जिसे किसी व्यक्ति द्वारा पहले निष्पादित नहीं किया गया है, उस दिन या उसके बाद भारत से बाहर निष्पादित किया जाता है, किसी भी संपत्ति से संबंधित है, या भारत में किए गए या किए जाने वाले किसी मामले या चीज़ से संबंधित है और भारत में प्राप्त होता है:
>
> बशर्ते कि (1) सरकार द्वारा या उसकी ओर से या उसके पक्ष में निष्पादित किसी लिखत के संबंध में कोई शुल्क प्रभार्य नहीं होगा, ऐसे मामलों में जहां इस छूट के अलावा, सरकार ऐसे लिखत के संबंध में प्रभार्य शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगी।

(2) मर्चेंट शिपिंग एक्ट, 1894, एक्ट नंबर 57 और 58 विक्ट के तहत पंजीकृत किसी भी जहाज या पोत की या उसके किसी भी हिस्से, ब्याज, शेयर या संपत्ति की बिक्री, हस्तांतरण या अन्य निपटान के लिए कोई साधन, या तो पूरी तरह से या बंधक के रूप में या अन्यथा।सी। 60 या 1838 के अधिनियम संख्या XIX या भारतीय जहाज पंजीकरण अधिनियम, 1841 (1841 का CX) के तहत, जैसा कि बाद के अधिनियमों द्वारा संशोधित किया गया था।

17. भारत में निष्पादित लिखत'— सभी लिखत' [भारत] में किसी भी व्यक्ति द्वारा कर्तव्य के साथ प्रभारित और निष्पादित किए जाने पर निष्पादन से पहले या समय पर स्टाम्प लगाई जाएगी।

18. भारत से बाहर निष्पाति बिलों और नोटों के अलावा अन्य लिखत — (1) केवल [भारत] से बाहर निष्पादित शुल्क के साथ प्रभार्य प्रत्येक लिखत', जो विनिमय पत्र या बिल या वचन पत्र नहीं है, पर पहली वर्जन प्राप्त होने के तीन महीने के भीतर स्टाम्प भारत में लगाई जा सकती है।

(2) जहां ऐसे किसी लिखत पर, इसलिए निर्धारित डाक टिकट के विवरण के संदर्भ में, किसी निजी व्यक्ति द्वारा विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई जा सकती है, वहां इसे तीन महीने की उक्त अवधि के भीतर कलेक्टर के पास ले जाया जा सकता है, जो उस पर उस तरीके से स्टाम्प लगाएगा, जो [राज्य सरकार] नियम द्वारा निर्धारित करे, और उस पर उस मूल्य की स्टाम्प लगेगी जिसकी इस तरह से डाक टिकट लेने वाले व्यक्ति को आवश्यकता हो और जिसके लिए वह भुगतान करे।"

34. 'अधिनियम, 1899 की धारा 2 (14) के तहत परिभाषित 'लिखत' में वह प्रत्येक दस्तावेज शामिल है जिसके द्वारा कोई भी अधिकार या दायित्व बनाया गया है, हस्तांतरित किया गया है, सीमित किया गया है, बढ़ाया गया है, समाप्त किया गया है या दर्ज किया गया है। धारा 2 (14) के तहत परिभाषित 'लिखत' शब्द मूल लिखत को संदर्भित करता है न कि उसकी एक प्रति या विधिवत प्रमाणित प्रति को।यह केवल मूल लिखत' के रचना पर है, इसे मान्य करने के लिए स्टाम्प शुल्क/शास्ति में कमियों का भुगतान किया जा सकता है।

35. अधिनियम, 1899 के अध्याय IV (धारा 33 से धारा 48) का शीर्षक 'लिखतों पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई गई' है, जिसमें उस प्रक्रिया का पालन करने का प्रावधान है जब किसी लिखत' पर स्टाम्प लगाई जानी चाहिए थी, जिस पर स्टाम्प नही लगाई जाती है।

36. अधिनियम, 1899 की धारा 33 में 'परीक्षण और लिखतों को परिबद्ध करने' का प्रावधान है।धारा 33 की उप–धारा (1) के तहत, "विधि द्वारा या पक्षकारों की सहमति से साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति, और सार्वजनिक पद का प्रभारी प्रत्येक व्यक्ति, पुलिस के एक अधिकारी को छोड़कर, जिसके समक्ष कोई प्रभार्य, कर्तव्य के साथ, अपनी राय में, अपने कार्यों के निष्पादन में प्रस्तुत किया जाता है या आता है, यदि उसे ऐसा लगता है कि ऐसे लिखत पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई गई है, तो उसे परिबद्ध

कर लिया जाएगा।"अधिनियम, 1899 की धारा 33 (2) में प्रावधान है कि शुल्क के साथ प्रभार्य प्रत्येक लिखत की जांच ऐसे व्यक्ति द्वारा की जाएगी जैसा कि उप –धारा (1) में समझाया गया है, "यह पता लगाने के लिए कि क्या उस पर भारत में लागू विधि द्वारा आवश्यक मूल्य और विवरण की स्टाम्प लगी है जब ऐसे लिखत को निष्पादित किया गया था या पहली वर्जन निष्पादित किया गया था।"धारा 2 (11) में निहित 'विधिवत स्टाम्प' की परिभाषा जैसा कि किसी लिखत' पर लागू होती है, इसका मतलब है कि लिखत' पर उचित राशि से कम की चिपकने वाली या छापी हुई स्टाम्प नहीं होती है और इस तरह की स्टाम्प को भारत में उस समय लागू विधि के अनुसार चिपकाया या इस्तेमाल किया गया है।

37. अधिनियम, 1899 की धारा 33 का एक सादा पाठ इस प्रकार बताता है कि जब कोई लिखत' या दस्तावेज प्राधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तो यह जांच करना ऐसे प्राधिकरण का कर्तव्य है कि लिखत पर विधिवत स्टाम्प लगी है या नहीं, और यदि यह पाया जाता है कि लिखत पर "विधिवत स्टाम्प" नहीं लगी है। धारा 33 (2) के तहत संबंधित प्राधिकारी उक्त लिखत को परिबद्ध कर लेगा।

38. अधिनियम, 1899 की धारा 34 संबंधित अधिकारी को एक विवेकाधिकार प्रदान करती है कि यदि किसी सार्वजनिक खाते के लेखापरीक्षा के दौरान "दस नए पैसे" से अधिक शुल्क के साथ प्रभार्य कोई रसीद उन्हें दी जाती है या उनके सामने पेश की जाती है, तो ऐसा अधिकारी अपने विवेकाधिकार में, "लिखत को परिबद्ध करने के बजाय, एक विधिवत स्टाम्प वाली रसीद की आवश्यकता कर सकता है।"

39. अधिनियम, 1899 की धारा 35 के एक सादे पाठ से पता चलता है कि यदि संबंधित स्टाम्प शुल्क और शस्ति का भुगतान बाद में किया जाता है तो बिना स्टाम्प वाले या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प वाले होने के कारण एक अस्वीकार्य लिखत को स्वीकार्य बनाया जा सकता है। इससे पता चलता है कि धारा 35 के तहत आवश्यकता कठोर नहीं है, और बाद के चरण में भी इसे ठीक किया जा सकता है।एक बिना स्टाम्प वाला या अपर्याप्त सटाम्प वाला लिखत पूरी तरह से अवैध नहीं है, और इसे धारा 35 के परंतुक में निर्धारित शर्तों को पूरा करने के बाद सबूत में वैध और स्वीकार्य बनाया जा सकता है।

40. अधिनियम, 1899 की धारा 37 अनुचित रूप से मुद्रांकित लिखतों के स्वीकार करने से संबंधित है। इसमें यह प्रावधान है कि राज्य सरकार ऐसे नियम बना सकती है जिसमें यह प्रावधान हो कि जहां किसी लिखत पर पर्याप्त राशि की लेकिन अनुचित विवरण की स्टाम्प है, वह उस शुल्क के भुगतान पर, जिसके साथ वह प्रभार्य है, विधिवत स्टाम्प लगाने के लिए प्रमाणित किया जा सकता है और इस तरह प्रमाणित किसी भी लिखत को उसके निष्पादन की तारीख से विधिवत स्टाम्प लगाया गया माना जाएगा।

41. अधिनियम, 1899 की धारा 38 में इस बात का प्रावधान है कि परिबद्ध किए गए लिखतों से कैसे निपटा जाए। धारा 38 की उप–धारा (1) में यह प्रावधान है कि जब धारा 33 के तहत किसी लिखत को परिबद्ध करने वाला व्यक्ति धारा 35 द्वारा प्रदान किए गए शस्ति या धारा 37 द्वारा प्रदान किए गए शुल्क के भुगतान पर साक्ष्य के रूप में ऐसे लिखत को स्वीकार करता है,तो वह कलेक्टर को उस लिखत की एक प्रमाणित प्रति, लिखित प्रमाण पत्र के साथ

भेजेगा, जिसमें उसके संबंध में लगाए गए शुल्क और शास्ति की राशि का उल्लेख होगा, और ऐसी राशि कलेक्टर या ऐसे व्यक्ति को भेजेगा जिसे वह इस संबंध में नियुक्त करे।

42. अधिनियम, 1899 की धारा 39 और 40 कलेक्टर द्वारा या तो धन वापसी करने, लिखत को विधिवत मुद्रांकित के रूप में प्रमाणित करने या मुद्रांक शुल्क एकत्र करने के लिए विवेकाधिकार का प्रयोग करने की प्रक्रिया प्रदान करती है।

43. अधिनियम, 1899 की धारा 33,35 और 2 (14) का एक सादा पाठ स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि जिस लिखत पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई गई है जब आवश्यक शुल्क और शास्ति का भुगतान किया जाता है, तो उक्त लिखत को अधिनियम, 1899 की धारा 35 के तहत साक्ष्य के रूप में लिया जा सकता है।लेकिन, साथ ही, धारा 33 और 35 लिखत की किसी भी प्रति से संबंधित नहीं हैं और पक्षकार को उस दस्तावेज़ पर भरोसा करने की अनुमति दी जा सकती है जो अधिनियम, 1899 की धारा 2 (14) के अर्थ के भीतर एक लिखत है। इस न्यायालय के पास जुपुडी केशव राव (ऊपर) में अधिनियम, 1899 की धारा 33,35 और 36 और साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 63 के परिधी और दायरे पर विचार करने का अवसर था और यह अभिनिर्धारित किया गया था किः

"13. धारा 35 का पहला अंग स्पष्ट रूप से शुल्क के साथ प्रभार्य किसी भी लिखत को साक्ष्य से बाहर कर देता है जब तक कि उस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई जाती है। इसका दूसरा अंग जो लिखत पर कार्रवाई करने से संबंधित है, स्पष्ट रूप से ऐसे लिखत के किसी भी द्वितीयक साक्ष्य को बंद कर देगा, क्योंकि इस तरह के साक्ष्य को तब ग्राह्य करने की अनुमति दी जाएगी जब मूल रूप से शुल्क के साथ स्वीकार्य रूप से प्रभार्य पर स्टाम्प नहीं लगाई गई थी या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगाई गई थी, यह उस दस्तावेज के समान होगा जिस पर विधि या साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार रखने वाले व्यक्ति द्वारा कार्रवाई की जा रही थी। प्रावधान (ए) केवल तभी लागू होता है जब मूल दस्तावेज वास्तव में अदालत के समक्ष होता है और दस्तावेज़ पर भरोसा करने की इच्छा रखने वाले पक्ष द्वारा शास्ति के साथ टिकट में कमी का भुगतान किया जाता है। स्पष्ट रूप से अस्टाम्पित दस्तावेज़ की अंतर्वस्तु के मौखिक साक्ष्य के रूप में या भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 द्वारा कवर की गई इसकी प्रतिलिपी से द्वितीयक साक्ष्य उस परंतुक की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करेगा जो प्राधिकारी को दस्तावेज के अलावा साक्ष्य में कुछ भी प्राप्त करने का आदेश देता है। धारा 25 किसी लिखत की किसी भी प्रति से संबंधित नहीं है और एक पक्ष को केवल उस दस्तावेज़ पर भरोसा करने की अनुमति दी जा सकती है जो धारा 35 के उद्देश्य के लिए एक लिखत है।'धारा 2 (14) में 'लिखत' को प्रत्येक दस्तावेज को शामिल करने के रूप में परिभाषित किया गया है जिसके द्वारा कोई भी अधिकार या दायित्व बनाया, हस्तांतरित, सीमित, विस्तारित, समाप्त या दर्ज किया जाना है। दस्तावेज की एक प्रति को स्टाम्प एक्ट के उद्देश्य के लिए एक लिखत के रूप में शामिल करने की कोई गुंजाइश नहीं है।

14. यदि धारा 35 केवल मूल लिखतों से संबंधित है और धारा 36 की प्रतियां नहीं हैं, तो धारा 36 की व्याख्या इस तरह से नहीं की जा सकती है कि किसी लिखत के द्वितीयक साक्ष्य को इसका लाभ मिले। धारा 36 में 'एक लिखत' शब्दों का वही अर्थ होना चाहिए जो धारा 35 में है। विधायिका केवल उन मामलों में धारा 35 के सख्त प्रावधानों से पीछे हटती है जहां मूल दस्तावेज को वाद या कार्यवाही के प्रारंभिक चरण में बिना किसी आपत्ति के साक्ष्य में स्वीकार

किया गया था। दूसरे शब्दों में, हालांकि आपत्ति दस्तावेज़ पर चिपकाए गए स्टाम्प की अपर्याप्तता पर आधारित है, एक पक्ष जिसे इसके ग्रहण पर आपत्ति करने का अधिकार है, उसे दस्तावेज़ के पहली वर्जन पेश करने पर ऐसा करना चाहिए। एक वर्जन दस्तावेजी साक्ष्य के ग्राह्य पर आपत्ति उठाने का समय निकल जाने के बाद, बाद के चरण में उसी आधार पर कोई आपत्ति नहीं उठाई जा सकती है। लेकिन यह किसी भी तरह से धारा 36 की प्रयोज्यता को किसी ऐसे दस्तावेज़ की अंतर्वस्तु के प्रमाण में प्रस्तुत या प्रस्तुत किए जाने की मांग वाले द्वितीयक साक्ष्य पर लागू नहीं करता है, जिस पर बिना स्टाम्प लगी हो या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगी हो।"

(जोर दिया गया)

44. **हरिओम अग्रवाल (ऊपर)** मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने इस विचार की पुष्टि की है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है:"

10. इस न्यायालय के निर्णयों और अधिनियम की धारा 33,35 और 2 (14) के एक सादे पठन से यह स्पष्ट है कि एक लिखत जिस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई गई है, उसे परिबद्ध किया जा सकता है और जब ऐसे लिखत के लिए आवश्यक शुल्क और शास्ति का भुगतान किया गया है तो इसे स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 के तहत साक्ष्य के रूप में लिया जा सकता है। धारा 33 या 35 लिखत की किसी भी प्रति से संबंधित नहीं हैं और पक्षकार को केवल उस दस्तावेज़ पर भरोसा करने की अनुमति दी जा सकती है जो धारा 2 (14) के अर्थ के भीतर एक लिखत है। स्टाम्प एक्ट के उद्देश्यों के लिए दस्तावेज़ की प्रति को शामिल करने की कोई गुंजाइश नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि विधि अब अच्छी तरह से तय हो गया है कि दस्तावेज़ की प्रति को परिबद्ध करके मान्य नहीं किया जा सकता है और इसे स्टाम्प अधिनियम, 1899 के तहत द्वितीयक साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।" (जोर दिया गया)

45. इस विषय पर विधि अच्छी तरह से तय किया गया है कि कथित लिखत की विधिवत प्रमाणित प्रति/फोटोकॉपी को परिबद्ध करके मान्य नहीं किया जा सकता है और इसे अधिनियम, 1899 के तहत साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी लिखत में कमी, चाहे वह अनुचित रूप से स्टाम्प लगी हो या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगी हो, को अधिनियम, 1899 के तहत निर्धारित प्रक्रिया के माध्यम से ठीक किया जा सकता है। यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि अधिनियम के तहत आवश्यकता वास्तव में उस समय के बाद भी पूरी की जा सकती है जब लिखत को निष्पादित किया गया था। अधिनियम के तहत आवश्यकता कठोर या सख्त नहीं है, ताकि लिखत को पहली वर्जन में अमान्य बनाया जा सके।

46. यह यह भी दर्शाता है कि अधिनियम, 1899 का उद्देश्य किसी लिखत को पूरी तरह से अवैध घोषित करना नहीं है यदि वह बिना स्टाम्प वाला या अपर्याप्त रूप से स्टाम्पित है, बल्कि प्रत्येक लिखत पर मुद्रांक शुल्क एकत्र करना है। अधिनियम, 1899 का उद्देश्य राज्य के लिए राजस्व सुनिश्चित करना है।

47. यह न्यायालय,ने **हिंदुस्तान स्टील लिमिटेड बनाम. मेसर्स दिलीप कंस्ट्रक्शन कंपनी,** [11] के मामले में अधिनियम, 1899 के उद्देश्य से निपटा और अभिनिर्धारित कियाः

"7. मुद्रांक अधिनियम एक राजकोषीय उपाय है जो कुछ वर्गों के लिखतों पर राज्य के लिए राजस्व सुरक्षित करने के लिए अधिनियमित किया गया हैः यह अपने प्रतिद्वंद्वी के मामले का सामना करने के लिए एक वादी को तकनीकी हथियार से लैस करने के लिए अधिनियमित नहीं किया गया है। अधिनियम के कड़े प्रावधानों की कल्पना राजस्व के हित में की जाती है, एक वर्जन जब वह उद्देश्य विधि के अनुसार सुरक्षित हो जाता है, तो लिखत पर अपना दावा करने वाले पक्ष को लिखत में प्रारंभिक दोष के आधार पर पराजित नहीं किया जाएगा। उस दृष्टि से देखा जाए तो योजना स्पष्ट है।स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 किसी बिना स्टाम्प वाले लिखत को साक्ष्य में शामिल करने या उस पर कार्रवाई करने के लिए एक बाधा के रूप में काम करती है; धारा 40 लिखतों को परिबद्ध करने की प्रक्रिया प्रदान करती है, धारा 42 की उप–धारा (1) यह प्रमाणित करने के लिए प्रावधान करती है कि किसी लिखत पर विधिवत स्टाम्प लगाई गई है, और धारा 42 की उप–धारा (2) ऐसे प्रमाणन के परिणामस्वरूप होने वाले परिणामों को अधिनियमित करती है।"

11 (1969) 1 एससीसी 597 ए

48. पीठ ने यह समझाने के बाद कि अधिनियम, 1899 का दायरा राज्य के लिए राजस्व सुरक्षित करना है और वादी को परेशान करने के साधन के रूप में उपयोग नहीं किया जाना है, यह निष्कर्ष निकाला कि शुल्क और शास्ति के भुगतान के बाद बिना स्टाम्प वाले लिखतों पर कार्रवाई की जा सकती है। प्रारंभिक दोषों को ठीक किया जा सकता है और यह कभी भी विधायिका का इरादा नहीं है कि वह प्रारंभिक रूप से बिना स्टाम्प वाले लिखत को गैर–विधि के रूप में माने।

49. क़ानून एक दस्तावेज़ पर स्टाम्प लगाने में विफलता के उदाहरणों से संबंधित है, जिस पर अधिनियम, 1899 के प्रावधानों के तहत स्टाम्प लगाई जानी है, लेकिन दस्तावेज़ में सन्निहित लेनदेन की वैधता को प्रभावित नहीं करता है। अधिनियम, 1899 का वह भाग IV स्टाम्प शुल्क का भुगतान न करने की आकस्मिकताओं से संबंधित है और एक वर्जन राज्य के राजस्व के हित को सुरक्षित करने का उद्देश्य सुरक्षित हो जाने के बाद, आवश्यक स्टाम्प शुल्क के भुगतान पर लिखत पर आधारित दावे पर हमेशा कार्रवाई की जा सकती है।

50. इसलिए हमारा मानना है कि अधिनियम, 1899 के तहत कमियों को पूरा किया जा सकता है और किसी भी दस्तावेज को स्थायी रूप से अमान्य नहीं किया जा सकता है। अब, यह देखा जाना चाहिए कि क्या न्यायालय या मध्यस्थ न्यायाधिकरण अधिनियम 1899 के तहत कमियों को सुधारने का आदेश दे सकता है, यदि कोई हो।

IV. भारत में मध्यस्थता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

51. मध्यस्थता को विवाद समाधान की एक प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है जिसमें पक्षकारों के करार द्वारा, नियुक्त मध्यस्थ या मध्यस्थ न्यायाधिकरण को विवाद प्रस्तुत किया जाता है, जिनके पास पक्षों के बीच सहमति के अनुसार लागू विधि के अनुसार विवाद को हल करने का अधिकार क्षेत्र होता है। वैकल्पिक रूप से, इसे अदालत के बाहर पक्षों के

बीच विवादों को अर्ध–न्यायिक तरीके से निपटाने के लिए एक तंत्र के रूप में समझा जा सकता है।

52. विवाद समाधान के एक बेहतर तरीके के रूप में मध्यस्थता की प्रक्रिया भारत में नई नहीं है। प्राचीन काल के विद्वानों के अनुसार हिंदू साहित्य, "बृहदारनायक उपनिषद" सबसे पहले ज्ञात है। ग्रंथ जिसमें एक ऐसी प्रणाली का उल्लेख किया गया है जो वर्तमान मध्यस्थता के साथ निकटता से जुड़ी हो सकती है क्योंकि इसमें विभिन्न मध्यस्थ निकाय जैसे "पुगा" या स्थानीय अदालतें, "स्रेनिस" या एक ही पेशे को चलाने वाले लोग और "कुलस" या समाज के एक ही हिस्से के सामाजिक मामलों से संबंधित सदस्य शामिल हैं। उपरोक्त सभी निकायों को पंच कहा जाता था और कुल मिलाकर पंचायत का गठन किया जाता था। **वैतला सीतन्ना बनाम मरीवाडा विरन्ना** [12] के मामले में प्रिवी काउंसिल द्वारा इसकी पुष्टि की गई है, जिसमें यह देखा गया था कि पक्षकार विवाद को निर्वाचित पंचायत को संदर्भित करते थे और ये न्यायनिर्णायक निकाय उस निर्णय को पारित करने के लिए जिम्मेदार थे जो प्रचलित कानूनी और साथ ही नैतिक आधारों के आधार पर विवाद के निष्पक्ष और न्यायसंगत समाधान के सिद्धांत पर आधारित था।

12 एयर 1934 पीसी 105।

53. वर्ष 1772 में अंग्रेजों द्वारा पहले बंगाल विनियमन के अधिनियमन के साथ भारत में मध्यस्थता व्यवस्था आगे विकसित हुई। इस अधिनियम के बाद, सभी विवादों को मध्यस्थता के लिए प्रस्तुत किया गया था और उसी के निर्णय का मूल्य न्यायालय द्वारा पारित किसी भी डिक्री के समान था। इसके अलावा, 1781 के बंगाल विनियमन में भी प्रावधान था जैसा कि यहाँ पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

"न्यायाधीश अनुशंसा करता है और जहां तक वह पक्षकारों पर बिना किसी मजबूरी के एक व्यक्ति के मध्यस्थता के अधीन होने के लिए प्रबल करता है,पक्षकारों द्वारा पारस्परिक रूप से सहमत होना। किसी भी मध्यस्थ का कोई भी पंचाट, दो विश्वसनीय गवाहों की शपथ द्वारा किए गए पूर्ण प्रमाण के अलावा, अपास्त नहीं किया जाना चाहिए कि मध्यस्थ घोर भ्रष्टाचार या आंशिक रूप से दोषी थे, जिसके दौरान उन्होंने अपना निर्णय दिया था।" [13]

54. उपर्युक्त खंड से यह स्पष्ट है कि बंगाल विनियमों में पक्षकारों को पक्षकारों के आपसी करार के अनुसार मध्यस्थता की प्रक्रिया द्वारा विवाद को निपटाने के लिए संदर्भित करने में सक्षम बनाने के लिए प्रावधान हैं, विशेष रूप से संविदात्मक दायित्वों और साझेदारी विलेखों के उल्लंघन से जुड़े विवादों में। मध्यस्थता को राज्य द्वारा सबसे पहले अधिनियमित विधि यानी सिविल प्रक्रिया संहिता, 1859 में भी जगह मिली। विशेष रूप से, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की अनुसूची II के प्रावधान में मध्यस्थता से संबंधित प्रक्रिया शामिल थी। ये वैधानिक प्रावधान मुख्य रूप से दो प्रकार के मध्यस्थताओं से संबंधित थेः

i) किसी भी लंबित दीवानी मुकदमे में न्यायालयों द्वारा शुरू की गई मध्यस्थता।

(ii) मध्यस्थता जिसमें न्यायालय की कोई भागीदारी या हस्तक्षेप नहीं है।

55. इन दो प्रकार के मध्यस्थता के अलावा, एक तीसरे प्रकार का मध्यस्थता विकसित हुआ जिसे "सांविधिक मध्यस्थता" के रूप में जाना जाता है जिसमें मध्यस्थता की प्रक्रिया क़ानून में निहित प्रावधानों द्वारा नियंत्रित होती है।

56. मध्यस्थता व्यवस्था में प्रमुख विकास मध्यस्थता अधिनियम,1899 के अधिनियमन के साथ हुआ जो अंग्रेजी मध्यस्थता अधिनियम, 1899 के साथ काफी तुलनीय था। इस अधिनियम को भारत में मध्यस्थता के प्रवर्तन की दिशा में पहला कदम माना जा सकता है। मध्यस्थता अधिनियम,1899 शुरू में सभी प्रेसीडेंसी कस्बों पर लागू था और विवाद के प्रारंभिक संदर्भ से लेकर मध्यस्थता की प्रक्रिया तक न्यायिक हस्तक्षेप मौजूद था।

57. तेजी से बदलते समय के साथ, भारत में मध्यस्थता व्यवस्था के विकास ने भी गति पकड़ी। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 को धारा 89 के तहत निहित प्रावधान को सम्मिलित करने के लिए संशोधित किया गया था जो विशेष रूप से मध्यस्थता की प्रयोज्यता और प्रवर्तनीयता से संबंधित था। 20 वीं शताब्दी की शुरुआत में, मध्यस्थता एक स्वीकार्य मध्यस्थता के रूप में उभरा।

13 सी. वी. नागार्जुन रेड्डी, सी. पी. सी. (संशोधन) अधिनियम, 1999, द इंडियन काउंसिल ऑफ आर्बिट्रेशन, के मद्देनजर मध्यस्थता की भूमिका।//डब्ल्यू. डब्ल्यू.मीडिया।को.में/आईकैनेट/कुटरली/अप्रैल–जून 2002/आईका 5।एच. टी. एम. एल. (अंतिम वर्जन 22 जनवरी, 2023 को 10:50 पी. एम. पर पहुँचा गया)।

विवाद समाधान का तरीका और इसकी बढ़ती लोकप्रियता को पूरा करने के लिए, मध्यस्थता अधिनियम, 1940 (इसके बाद "अधिनियम, 1940" के रूप में संदर्भित किया जा रहा है) को विधायिका द्वारा अधिनियमित किया गया था। अधिनियम, 1940 को मध्यस्थता के रूप में विवाद समाधान का त्वरित और कम खर्चीला तरीका प्रदान करने के प्राथमिक उद्देश्य से अधिनियमित किया गया था। हालाँकि, अधिनियम, 1940 में निहित प्रावधानों के व्यावहारिक अनुप्रयोग में कई अपर्याप्तताएँ थीं।

58. अधिनियम, 1940 में अंग्रेजी मध्यस्थता अधिनियम, 1934 के तहत निहित प्रावधानों के समान कई प्रावधान थे, लेकिन फिर भी इसमें विदेशी पंचाट की प्रवर्तनीयता के लिए कोई प्रावधान नहीं था। इसके अलावा, अधिनियम, 1940 में निहित प्रावधानों ने मध्यस्थता कार्यवाही के सभी तीन चरणों में न्यायपालिका के हस्तक्षेप की सुविधा प्रदान की, अर्थात, विवाद को मध्यस्थता के लिए भेजे जाने से पहले, मध्यस्थता कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान और मध्यस्थता पंचाट पारित करने के बाद।

59. अधिनियम, 1940 के तहत निहित प्रावधान के अप्रभावी कामकाज की न्यायपालिका द्वारा नियमित रूप से आलोचना की जाती थी। न्यायमूर्ति डी. ए. देसाई द्वारा गुरु नानक फाउंडेशन बनाम रतन सिंह एंड संस [14] के मामले में निम्नलिखित टिप्पणी यहाँ उल्लेख करने के लिए काफी प्रासंगिक है:

"1. अंतहीन, समय लेने वाली, जटिल और महंगी अदालती प्रक्रियाओं ने न्यायविदों को एक वैकल्पिक मंच की खोज करने के लिए प्रेरित किया, जो कम औपचारिक, अधिक

प्रभावी और विवादों के समाधान के लिए त्वरित था, प्रक्रियात्मक ताली बजाने से बचते हुए और यह उन्हें मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की ओर ले गया। हालाँकि, जिस तरह से अधिनियम के तहत कार्यवाही की जाती है और अदालतों में बिना किसी अपवाद के चुनौती दी जाती है, उससे वकीलों की हँसी उड़ गई है और कानूनी दार्शनिक रो पड़े हैं।"

60. इस अदालत ने भारतीय खाद्य निगम बनाम जोगिंदरपाल मोहिंदरपाल एवं अन्य [15] के मामले में आगे कहा कि मध्यस्थता को नियंत्रित करना कम तकनीकी और पूरी प्रक्रिया में साम्य और निष्पक्षता का पता लगाकर व्यावहारिक समस्याओं के लिए अधिक उपयुक्त माना जाता है। इस अदालत द्वारा इतनी कड़ी आलोचना के बावजूद, लंबे समय तक विधायिका द्वारा अधिनियम, 1940 में कोई संशोधन नहीं किया गया था।

61. 20 वीं शताब्दी के अंत तक ही भारत में मध्यस्थता के विकास में एक बड़ा बदलाव आया। आर्थिक कारणों से 1991 में सरकार की उदारीकरण और समान नीतियों के कारण विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए एक अनुकूल वातावरण बनाने की आवश्यकता महसूस की गई। इसलिए, भारत के विधि आयोग की 76 वीं रिपोर्ट के साथ–साथ मॉडल UNCITRAL विधि के आधार पर, अधिनियम, 1996 को विधायिका द्वारा अधिनियमित किया गया था। यह अधिनियम, 1996 16 अगस्त, 1996 से लागू हुआ, जिसका उद्देश्य मध्यस्थता की प्रक्रिया को लागत प्रभावी, कम तकनीकी और दुनिया भर में प्रचलित अंतर्राष्ट्रीय प्रथाओं के अनुसार बनाना था।

14 (1981) 4 एससीसी 634
15 (1989) 2 एससीसी 347

V. मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6 ए) को शामिल करने के पीछे का इरादा

62. भारत में मध्यस्थता के विकास के लिए एक बड़ा बदलाव अधिनियम, 1996 के अधिनियमन के साथ हुआ। भारतीय विधि आयोग की 76 वीं रिपोर्ट [16] के साथ–साथ मॉडल UNCITRAL विधि के आधार पर, अधिनियम, 1996 को मध्यस्थता की प्रक्रिया को लागत प्रभावी, कम तकनीकी और दुनिया भर में प्रचलित अंतर्राष्ट्रीय प्रथाओं के अनुसार बनाने के उद्देश्य से अधिनियमित किया गया था।विधायी उद्देश्य पक्षकारों के बीच विवाद समाधान के लिए प्रभावी और त्वरित प्रक्रिया प्रदान करने के साथ–साथ मध्यस्थता की प्रक्रिया में न्यायिक हस्तक्षेप के दायरे को सीमित करना था। [17] भारत धीरे–धीरे अन्य शासनों में मध्यस्थता के विकास को ध्यान में रखते हुए न्यूनतम न्यायिक हस्तक्षेप की दिशा में आगे बढ़ रहा है।

63. इस न्यायालय की संविधान पीठ ने पूर्व की **2015 संशोधन व्यवस्था** जाँच करते हुए **एस. बी. पी. एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड एवं अन्य [18] में** अभिनिर्धारित किया कि मध्यस्थ/मध्यस्थ न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र से संबंधित सभी प्रारंभिक या सीमा मुद्दों की न्यायालय द्वारा अधिनियम, 1996 की धारा 11 के तहत जांच की जानी चाहिए। विधि आयोग द्वारा अपनी 246 वीं रिपोर्ट में विधि की इस स्थिति को बदलने की मांग की गई थी, जिसमें निम्नानुसार कहा गया हैः

"जहाँ तक हस्तक्षेप की प्रकृति का संबंध है, यह अनुशंसा की जाती है कि यदि न्यायालय/न्यायिक प्राधिकरण मध्यस्थता करार को चुनौती देने वाले तर्क के खिलाफ प्रथम दृष्टया संतुष्ट हो जाता है, तो वह मध्यस्थ की नियुक्ति करेगा और/या पक्षकारों को मध्यस्थता के लिए भेजेगा, जैसा भी मामला हो। संशोधन में परिकल्पना की गई है कि न्यायिक प्राधिकरण पक्षकारों को केवल तभी मध्यस्थता के लिए संदर्भित नहीं करेगा जब उसे पता चलता है कि कोई मध्यस्थता करार मौजूद नहीं है या यह कि अकृत और शून्य है। **यदि न्यायिक प्राधिकारी की राय है कि प्रथम दृष्टया मध्यस्थता करार मौजूद है, तो वह विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करेगा, और मध्यस्थता करार के अस्तित्व को अंततः मध्यस्थता द्वारा निर्धारित करने के लिए मध्यस्थ न्यायाधिकरण छोड़ देगा।** हालांकि, अगर न्यायिक प्राधिकरण यह निष्कर्ष निकालता है कि करार मौजूद नहीं है, तो निष्कर्ष अंतिम होगा और प्रथम दृष्टया नहीं। संशोधन में यह भी परिकल्पना की गई है कि एक निर्णायक निर्धारण होगा कि मध्यस्थता करार अकृत और शून्य है या नहीं।" [19]

(जोर दिया गया)

16 भारतीय विधि आयोग, मध्यस्थता अधिनियम, 1940 पर 76 वीं रिपोर्ट

17 अनुच्छेद संख्या 4 (v), उद्देश्यों और कारणों का विवरण, मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996।

18 (2005) 8 एससीसी 618 ए

[19] भारत आयोग की विधि रिपोर्ट सं. मध्यस्थता और सुलह अधिनियम 1996 में 246 संशोधन, पृष्ठ। 43

64. उक्त रिपोर्ट में, भारत के विधि आयोग ने निष्कर्ष निकाला कि मध्यस्थता कार्यवाही में न्यायिक हस्तक्षेप मध्यस्थता प्रक्रिया में देरी को काफी बढ़ाता है और अंततः मध्यस्थता के लाभ को नकारता है। पैराग्राफ 24 में विधि आयोग ने निम्नलिखित रूप में उल्लेख कियाः

" ... [यह देखा गया है कि मध्यस्थता कार्यवाही की सीमा पर मध्यस्थों की नियुक्ति के लिए बहुत समय खर्च किया जाता है।" [20]

65. विधि आयोग ने अधिनियम, 1996 में धारा 11 में उप–धारा (6ए) को शामिल करने का सुझाव दिया जिसे विधानमंडल ने अधिनियम, 1996 में 2015 के संशोधन के माध्यम से स्वीकार कर लिया था। धारा 11 (6ए) अपने इरादे से स्पष्ट रूप से प्रकट करती है कि "उच्चतम न्यायालय या, जैसा भी मामला हो, उच्च न्यायालय, उप–धारा (4) या उप–धारा (5) या उप–धारा (6) के तहत एक आवेदन की जांच करते समय, किसी भी न्यायालय के किसी भी निर्णय, डिक्री या आदेश के बावजूद, केवल" मध्यस्थता करार के अस्तित्व "की जांच करने तक ही सीमित रहेगा।

66. धारा 11 (6ए) सहित 2015 का संशोधन और बाद के संशोधन मध्यस्थता न्यायशास्त्र के इस विकास के अनुरूप हैं। मूल अधिनियम, 1996 में संशोधनों की श्रृंखला के साथ, यह स्पष्ट है कि विधायिका भारत में तेजी से विकसित होने वाली मध्यस्थता व्यवस्था के साथ लगातार जुड़ रही है और विभिन्न चुनौतियों ने इसे मध्यस्थता प्रक्रियाओं में अदालतों द्वारा हस्तक्षेप के दायरे को कम करने के उद्देश्य से संबद्ध किया है। यह उम्मीद की जा सकती है कि भारत में मध्यस्थता न्यायमूर्ति सब्यसाची मुखर्जी द्वारा **भारतीय खाद्य निगम (ऊपर)** के मामले में व्यक्त किए गए निम्नलिखित विचारों के अनुसार की जाती है।

"7. हमें मध्यस्थता के विधि को सरल, कम तकनीकी और स्थिति की वास्तविक वास्तविकताओं के प्रति अधिक उत्तरदायी बनाना चाहिए, लेकिन न्याय और निष्पक्ष खेल के नियमों के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए और मध्यस्थ को ऐसी प्रक्रिया और मानदंडों का पालन करना चाहिए जो विश्वास पैदा करेगा, न केवल पक्षों के बीच न्याय करके, बल्कि यह भावना पैदा करके कि न्याय किया गया प्रतीत होता है।" विधायिका के उपरोक्त चर्चा किए गए दृष्टिकोण को इस न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया है।

67. ड्यूरो फेलगुएरा एस. ए. बनाम.गंगावरम बंदरगाह लिमिटेड [21] , के मामले में,

इस न्यायालय ने 2015 के संशोधन द्वारा लाए गए परिवर्तनों के दायरे और प्रभाव को निम्नलिखित शब्दों में समझायाः

"48 ... .धारा 11 (6–ए) के अध्ययन से, विधायिका का इरादा स्पष्ट है अर्थात न्यायालय को केवल एक पहलू पर ध्यान देना चाहिए और उसकी आवश्यकता है–एक मध्यस्थता करार का अस्तित्व। अगला सवाल यह है कि यह तय करने के लिए कौन से कारक हैं कि मध्यस्थता करार है या नहीं। इसका समाधान सरल है–यह देखने की आवश्यकता है कि क्या करार में एक खंड है जो करार के पक्षों के बीच उत्पन्न हुए विवादों से संबंधित मध्यस्थता का प्रावधान करता है।

[20] अनुच्छेद संख्या 24, रिपोर्ट संख्या 246, भारत का विधि आयोग।

[21] (2017) 9 एससीसी 729 22 (2019) 8 एससीसी 714 ए

59. 1996 के अधिनियम की धारा 11 (6) के तहत शक्ति का दायरा एस. बी. पी. और कंपनी में निर्णयों को देखते हुए काफी व्यापक था। (एस. बी. पी. एंड कंपनी बनाम पटेल इंजि. लिमिटेड, (2005) 8 एस. सी. सी. 618] और बोघारा पॉलीफैब [नेशनल इंशुरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम.बोघरापोलीफैब (पी) लिमिटेड, (2009) 1 एस. सी. सी. 267। यह स्थिति 2015 में लाए गए संशोधन तक जारी रही।संशोधन के बाद, अदालतों को केवल यह देखने की आवश्यकता है कि क्या एक मध्यस्थता करार मौजूद है–कुछ भी अधिक नहीं, कुछ भी कम नहीं। विधायी नीति और उद्देश्य अनिवार्य रूप से मध्यस्थ की नियुक्ति के स्तर पर न्यायालय के हस्तक्षेप को कम करना है और धारा 11 (6–ए) में शामिल इस इरादे का सम्मान किया जाना चाहिए।"(जोर दिया गया)

68.मायावती ट्रेडिंग प्रायवेट लिमिटेड बनाम प्रद्युत देब बर्मन [22] में तीन न्यायाधीशों की पीठ ने इस स्थिति की पुष्टि की थी।

"10. यह स्थिति होने के कारण, यह स्पष्ट है कि 2015 के संशोधन से पहले का विधि जो इस न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया है,

इसमें यह जानना शामिल होगा कि क्या करार और संतुष्टि हुई है, अब इसे विधायी रूप से खारिज कर दिया गया है। यह स्थिति होने के कारण, उपरोक्त निर्णय में निहित तर्क से सहमत होना मुश्किल है [यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम.एंटीक आर्ट एक्सपोर्ट्स (पी) लिमिटेड, (2019) 5 एस. सी. सी. 362], धारा 11 (6–ए) के रूप में एक मध्यस्थता करार के अस्तित्व की जांच तक सीमित है और इसे संकीर्ण अर्थों में समझा जाना चाहिए जैसा कि ड्यूरो फेलगुएरा, एस. ए. में निर्णय में निर्धारित किया गया है। इस प्रकार, 2015 के संशोधन का उद्देश्य न्यायालयों के हस्तक्षेप को मध्यस्थता कार्यवाही के पूर्व–संदर्भित चरण में मध्यस्थता करार की वैधता के बजाय अस्तित्व की न्यूनतम जांच तक सीमित करना है। (महत्व जोड़ें)

69. इस प्रकार, 2015 के संशोधन का उद्देश्य हस्तक्षेप को सीमित करना है

मध्यस्थता के पूर्व–रेफ़रल स्तर पर मध्यस्थता करार कार्यवाही में न्यायालयों को किसी के अस्तित्व की कम से कम जांच करनी चाहिए न कि उसकी वैधता की ।

VI. धारा 11 (6ए) का दायरा डब्लयू. आर. टी. मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 8, धारा 16 और धारा 45

70. अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6ए) इस प्रकार हैः

"उच्चतम न्यायालय या, यथास्थिति, उच्च न्यायालय, उप–धारा (4) या उप–धारा (5) या उप–धारा (6) के तहत किसी भी आवेदन पर विचार करते समय, किसी भी न्यायालय के किसी भी निर्णय, डिक्री या आदेश के बावजूद, मध्यस्थता करार के अस्तित्व की जांच तक ही सीमित रहेगा।"

71. धारा 11 (6ए) के तहत जांच का दायरा "मध्यस्थता करार के अस्तित्व" की जांच करने तक सीमित है। 'मध्यस्थता करार का अस्तित्व' वाक्यांश को 2015 के संशोधन की शुरुआत के बाद विधायिका के इरादे को ध्यान में रखते हुए शाब्दिक अर्थों में समझा जाना चाहिए। 2015 के संशोधन को शामिल करने के बाद विधि की स्थिति यह है कि न्यायालयों द्वारा न्यूनतम हस्तक्षेप होना चाहिए। पूर्व–निर्दिष्ट स्तर पर जाँच करने के लिए न्यायालय का सीमित दायरा यह है कि क्या मध्यस्थता करार, प्रथम दृष्टया, अधिनियम, 1996 की धारा 7 के तहत निर्दिष्ट है, जिसमें निम्नलिखित कारकों का निर्धारण शामिल हैः

(i) क्या मध्यस्थता करार लिखित रूप में है;

(ii) क्या मध्यस्थता करार के मुख्य संविदात्मक घटक पूरे होते हैं?

(iii) दुर्लभ अवसरों पर, आपत्ति के गंभीर नोट पर, यदि कोई हो, तो यह जांच कर सकता है कि क्या विवाद का विषय मध्यस्थता योग्य है?

72. धारा 8 (1), जिसे 2015 के संशोधन द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था, एक न्यायिक प्राधिकरण को मध्यस्थता के लिए पक्षों को संदर्भित करने के लिए अनिवार्य करता है जब तक कि प्रथम दृष्टया यह निष्कर्ष न निकले कि कोई वैध मध्यस्थता करार मौजूद नहीं है। प्रावधान में उपयोग की गई भाषा इस प्रकार हैः

"8. पक्षकारों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने की शक्ति जहां मध्यस्थता करार है —

(1) एक न्यायिक प्राधिकरण, जिसके समक्ष किसी ऐसे मामले में कार्रवाई की जाती है जो एक मध्यस्थता करार का विषय है, यदि मध्यस्थता करार का कोई पक्षकार या उसके माध्यम से या उसके तहत दावा करने वाला कोई व्यक्ति, विवाद के सार पर अपना पहला बयान जमा करने की तारीख के बाद लागू नहीं होता है, तो सर्वोच्च न्यायालय या किसी भी न्यायालय के किसी भी निर्णय, डिक्री या आदेश के बावजूद, पक्षकारों को मध्यस्थता के लिए तब तक संदर्भित करेगा जब तक कि वह यह न पाए कि प्रथम दृष्टया कोई वैध मध्यस्थता करार मौजूद नहीं है।

(2) उप–धारा (1) में निर्दिष्ट आवेदन पर तब तक विचार नहीं किया जाएगा जब तक कि वह मूल मध्यस्थता करार या उसकी विधिवत प्रमाणित प्रति के साथ न होः[बशर्ते कि जहां मूल मध्यस्थता करार या उसकी प्रमाणित प्रति उप–धारा (1) के तहत मध्यस्थता के संदर्भ के लिए आवेदन करने वाले पक्ष के पास उपलब्ध नहीं है, और उक्त करार या प्रमाणित प्रति को उस करार के दूसरे पक्ष द्वारा बरकरार रखा जाता है, तो इस तरह से आवेदन करने वाला पक्ष मध्यस्थता करार की एक प्रति और एक याचिका के साथ ऐसा आवेदन दायर करेगा जिसमें अदालत से अनुरोध किया जाएगा कि वह दूसरे पक्ष से उस न्यायालय के समक्ष मूल मध्यस्थता करार या इसकी विधिवत प्रमाणित प्रति पेश करने के लिए कहे।

(3) इसके बावजूद कि उप–धारा (1) के तहत एक आवेदन किया गया है और यह मुद्दा न्यायिक प्राधिकरण के समक्ष लंबित है, एक मध्यस्थता शुरू की जा सकती है या जारी रखी जा सकती है और एक मध्यस्थ पुरस्कार दिया जा सकता है।"

73. इस धारा में प्रावधान है कि न्यायालय इस बात की जांच कर सकता है कि क्या प्रथम दृष्टया कोई मध्यस्थता करार मौजूद नहीं है। इस धारा का दायरा 246 वें विधि आयोग की रिपोर्ट 23 से देखा जा सकता है, जिसमें धारा 8 में संशोधन का सुझाव देते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की गई हैः

23 भारत आयोग की विधि रिपोर्ट सं. मध्यस्थता और सुलह अधिनियम 1996 में 246 संशोधन, पृष्ठ।43 ए.

"... .संशोधन में मध्यस्थता के लिए एक लंबित कार्रवाई के संदर्भ की मांग करने वाले आवेदन पर विचार करते समय एक न्यायिक प्राधिकरण द्वारा अपनाई जाने वाली दो–चरणीय प्रक्रिया पर विचार किया गया है। संशोधन में परिकल्पना की गई है कि न्यायिक प्राधिकरण पक्षकारों को केवल तभी मध्यस्थता के लिए संदर्भित नहीं करेगा जब उसे पता चलता है कि कोई मध्यस्थता करार मौजूद नहीं है या यह अशक्त या शून्य है। यदि न्यायिक प्राधिकारी की राय है कि प्रथम दृष्टया मध्यस्थता करार मौजूद है, फिर वह विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करेगा, और मध्यस्थता करार के अस्तित्व को अंततः मध्यस्थता न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित करने के लिए छोड़ देगा। हालांकि, यदि न्यायिक प्राधिकरण यह निष्कर्ष निकालता है कि करार मौजूद नहीं है, तो निष्कर्ष अंतिम होगा और प्रथम दृष्टया नहीं। संशोधन में यह भी परिकल्पना की गई है कि एक निर्णायक निर्धारण होगा कि मध्यस्थता करार अकृत और शून्य है।"

74. धारा 8 के एक सादे अध्ययन से संकेत मिलता है कि यह न्यायालय के हस्तक्षेप को केवल एक पहलू तक सीमित करता है, अर्थात जब यह पाया जाता है कि प्रथम दृष्टया कोई वैध मध्यस्थता करार मौजूद नहीं है या अकृत और शून्य है।

75. अधिनियम, 1996 की योजना से पता चलता है कि धारा 8 और 11 प्रकृति में पूरक हैं और दोनों मध्यस्थता के संदर्भ से संबंधित हैं और न्यायिक हस्तक्षेप के संबंध में समान दायरे और परिधी में हैं। न्यायालय को, धारा 8 और 11 के तहत, मामले को मध्यस्थता या मध्यस्थ नियुक्त करने के लिए संदर्भित करना पड़ता है, बशर्ते कि पक्ष ने एक मध्यस्थता करार का प्रथम दृष्टया अस्तित्व स्थापित किया हो, कुछ भी नहीं और कुछ भी कम नहीं। साथ ही, न्यायालय को मामले को संदर्भित करना चाहिए यदि मध्यस्थता करार की वैधता को प्रथम दृष्टया आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता है, जैसा कि ऊपर निर्धारित किया गया है अर्थात "जब संदेह हो, तो संदर्भ दें"।

76. इस स्तर पर, हम यह देखना चाहेंगे कि विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा एक मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए वैधानिक योजना तैयार की गई है और इस न्यायालय द्वारा भी–जिसे भारत के मुख्य न्यायाधीश योजना, 1996 द्वारा मध्यस्थों की नियुक्ति कहा जाता है, उसी के प्रासंगिक हिस्से को नीचे निकाला गया हैः–

1. संक्षिप्त शीर्षक– इस योजना को भारत की मुख्य न्यायाधीश योजना, 1996 द्वारा मध्यस्थों की नियुक्ति कहा जा सकता है।

2. अनुरोध प्रस्तुत करना –धारा 11 की उप–धारा (4) या उप–धारा (5) या उप–धारा (6) के तहत मुख्य न्यायाधीश से अनुरोध लिखित रूप में किया जाएगा और उनके साथ–

(क) मूल मध्यस्थता करार या उसकी विधिवत प्रमाणित प्रति;

(ख) मध्यस्थता करार के पक्षों के नाम और पते;

(ग) पहले से नियुक्त मध्यस्थों के नाम और पते, यदि कोई हों;

(घ) उस व्यक्ति या संस्था का नाम और पता, यदि कोई हो, जिसे या जिसे उनके द्वारा सहमत नियुक्ति प्रक्रिया के तहत मध्यस्थता करार के पक्षकारों द्वारा कोई कार्य सौंपा गया है;

(ङ) पक्षकारों के करार द्वारा मध्यस्थों की आवश्यक योग्यता, यदि कोई हो;

(च) विवाद की सामान्य प्रकृति और मुद्दे के बिंदुओं का वर्णन करने वाला एक संक्षिप्त लिखित बयान;

(छ) मांगी गई राहत या उपाय; और

(ज) सुसंगत दस्तावेज द्वारा समर्थित एक शपथ पत्र, इस प्रभाव के लिए कि मुख्य न्यायाधीश से अनुरोध करने से पहले, धारा 11 की उप–धारा (4) या उप–धारा (5) या उप–धारा (6) के तहत संतुष्ट होने की शर्त पूरी हो गई है।

77. यह स्पष्ट है कि जिस योजना से एक संदर्भ दिया गया है कि जब आवेदक एक मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए न्यायालय का दरवाजा खटता है, तो उसे एक मूल मध्यस्थता करार दायर नहीं करना चाहिए और करार की सत्यापित प्रति पूर्व–संदर्भित चरण में संलग्न की जा सकती है जो वास्तव में अधिनियम, 1899 की धारा 2 (14) के तहत निर्दिष्ट साधन नहीं है।

78. जहाँ तक मध्यस्थता करार की प्रमाणित प्रति जमा करने के संदर्भ का संबंध है, यह कहना पर्याप्त है कि व्यापार /वाणिज्यिक लेनदेन से संबंधित पक्षों के बीच निष्पादित मध्यस्थता करार को अधिनियम, 1908 के तहत अनिवार्य रूप से पंजीकृत करने की आवश्यकता नहीं है। दस्तावेज़ को पंजीकृत करने की बाध्यता मूल विधि, अर्थात् संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 के प्रावधानों के तहत लागू की जाती है, जबकि अधिनियम, 1908 की धारा 17 में कहा गया है कि गैर–वसीयती दस्तावेज जिसने किसी अचल संपत्ति में Rs.100–या उससे ऊपर के मूल्य का कोई अधिकार, शीर्षक या ब्याज बनाया है, अनिवार्य रूप से पंजीकृत होना चाहिए। यदि दस्तावेज़ पंजीकृत नहीं है, तो हस्तांतरण शून्य है।

कोई वैध हस्तांतरण नहीं है, और लिखत में वर्णित संपत्ति पारित नहीं होती है, उदाहरण के लिए, बंधक तब तक पूर्ण और प्रवर्तनीय नहीं हो जाता है जब तक कि यह अधिनियम, 1908 के तहत पंजीकृत नहीं हो जाता है।

79. निर्विवाद रूप से, मध्यस्थता करार एक सार्वजनिक दस्तावेज नहीं है जिसके लिए अधिनियम, 1908 की धारा 17 के तहत अनिवार्य पंजीकरण की आवश्यकता है और कोई भी साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 74 या 75 के तहत सार्वजनिक दस्तावेज की प्रमाणित प्रति प्राप्त कर सकता है। सार्वजनिक दस्तावेज की अभिरक्षा रखने वाला लोक

अधिकारी साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 76 के तहत निर्दिष्ट इसकी प्रमाणित प्रति उपलब्ध करा सकता है। मध्यस्थता करार को अनिवार्य रूप से पंजीकृत किए जाने की आवश्यकता के अभाव में, अधिनियम, 1908 की धारा 17 के दायरे और दायरे के भीतर, ऐसा मध्यस्थता करार/दस्तावेज सार्वजनिक डोमेन में सुलभ नहीं है और यह एक सार्वजनिक दस्तावेज नहीं है जिसकी प्रमाणित प्रति प्राप्त की जा सकती है, जैसा कि साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 74 के तहत संदर्भित किया गया है, जिसमें विफल रहने पर साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 79 के तहत निर्दिष्ट दस्तावेज़ की प्रमाणित प्रति होने का अनुमान लगाने का सवाल नहीं उठ सकता है।

80. दूसरे शब्दों में, जब मध्यस्थता करार को अधिनियम, 1908 की धारा 17 के तहत अनिवार्य रूप से पंजीकृत करने की आवश्यकता नहीं है, तो नियमों की योजना, 1996 के तहत एक प्रमाणित प्रति का संदर्भ मध्यस्थता करार की एक प्रमाणित प्रति प्रतीत होता है जो अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6ए) के तहत मध्यस्थ की नियुक्ति के उद्देश्यों के लिए पूर्व–संदर्भित चरण में अधिनियम, 1996 की धारा 7 की आवश्यकता को योग्य बनाता है। इसलिए, मध्यस्थता करार पर पूर्व–रेफरल चरण में स्टाम्प नहीं लगाए जाने या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प नहीं लगाए जाने के संबंध में आपत्ति उठाने का सवाल नहीं उठ सकता है।

81. अधिनियम, 1996 की धारा 16 को निम्नानुसार संदर्भित किया गया हैः–

"16. माध्यस्थम न्यायाधिकरण की अपनी अधिकारिता पर निर्णय लेने की क्षमता—(1) मध्यस्थ न्यायाधिकरण मध्यस्थता करार के अस्तित्व या वैधता के संबंध में किसी भी आपत्ति पर निर्णय सहित अपनी अधिकारिता पर निर्णय दे सकता है, और उस उद्देश्य के लिए, –

(क) एक मध्यस्थता खंड जो एक संविदा का हिस्सा है, उसे संविदा की अन्य शर्तों से स्वतंत्र करार के रूप में माना जाएगा; और

(ख) मध्यस्थता न्यायाधिकरण का यह निर्णय कि संविदा अकृत या शून्य है, न्यायिक रूप से मध्यस्थता खंड की अयोग्यता को लागू नहीं करेगा।

(2) एक याचिका कि मध्यस्थ न्यायाधिकरण के पास अधिकार क्षेत्र नहीं है , बचाव के अभिवाक को प्रस्तुत करने के बाद नहीं उठाया जाएगा; हालाँकि, एक पक्ष को केवल इस कारण से ऐसी याचिका उठाने से रोका नहीं जाएगा कि उसने एक मध्यस्थ की नियुक्ति की है या उसकी नियुक्ति में भाग लिया है।

(3) एक याचिका कि मध्यस्थता न्यायाधिकरण अपने अधिकार के दायरे को पार कर रहा है, जैसे ही मध्यस्थता कार्यवाही के दौरान कथित रूप से अपने अधिकार के दायरे से बाहर का मामला उठाया जाता है, उठाया जाएगा।

(4) माध्यस्थम न्यायाधिकरण, उप–धारा (2) या उप–धारा (3) में निर्दिष्ट किसी भी मामले में, बाद की याचिका स्वीकार कर सकता है यदि वह देरी को उचित समझता है।

(5) मध्यस्थता न्यायाधिकरण उप–धारा (2) या उप–धारा (3) में निर्दिष्ट याचिका पर निर्णय लेगा और जहां मध्यस्थता न्यायाधिकरण याचिका को अस्वीकार करने का निर्णय लेता है, वहां मध्यस्थता कार्यवाही जारी रखेगा और मध्यस्थता पुरस्कार देगा।

(6) इस तरह के मध्यस्थता पुरस्कार से व्यथित एक पक्ष धारा 34 के अनुसार इस तरह के मध्यस्थता पुरस्कार को अलग करने के लिए आवेदन कर सकता है।"

82. अधिनियम, 1996 की धारा 16 (1) में कहा गया है कि एक मध्यस्थ न्यायाधिकरण "मध्यस्थता करार के अस्तित्व या वैधता के संबंध में किसी भी आपत्ति पर निर्णय सहित" अपने अधिकार क्षेत्र पर निर्णय ले सकता है। यह प्रावधान कोम्पेटेंज़–कोम्पेटेंज़ के सिद्धांत और पृथकता के सिद्धांत पर आधारित है। कोम्पेटेंज़–कोम्पेटेंज़ के सिद्धांत का अर्थ है कि मध्यस्थ न्यायाधिकरण अपने अधिकार क्षेत्र पर शासन करने के लिए पर्याप्त सक्षम है। साथ ही, पृथकता का सिद्धांत मध्यस्थता खंड को वाणिज्यिक संविदा से अलग करता है। धारा 16 (1) (ए) मध्यस्थता के एक खंड के अस्तित्व का अनुमान लगाती है और इसे संविदा की अन्य शर्तों के लिए स्वतंत्र माना जाना अनिवार्य करती है। धारा 16 के तहत, मध्यस्थ न्यायाधिकरण के पास मध्यस्थता करार की वैधता निर्धारित करने का अधिकार क्षेत्र होगा।

83. उत्तराखंड पूर्व सैनिक कल्याण निगम लिमिटेड बनाम उत्तरी कोयला क्षेत्र लिमिटेड [24] में इस न्यायालय की एक खंड पीठ ने ड्यूरो फेलगुएरा (ऊपर) पर निर्भरता ने माना कि सीमा से संबंधित मुद्दों को मध्यस्थ न्यायाधिकरण के समक्ष उठाया जाना चाहिए। न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

" 7.8. धारा 11 (6–ए) में शामिल गैर–बाध्यकारी खंड के आधार पर, पटेल इंजी. में दिए गए पिछले निर्णय [एस. बी. पी. एंड कंपनी बनाम पटेल इंजी. लिमिटेड, (2005) 8 एस. सी. सी. 618] और बोघारा पॉलीफैब [नेशलन इंशुरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बोघारा पॉलीफैब (पी) लिमिटेड, (2009) 1 एस. सी. सी. 267], को विधायी रूप से खारिज कर दिया गया था। जाँच का दायरा अब केवल धारा 11 के स्तर पर मध्यस्थता करार के अस्तित्व तक ही सीमित है, और इससे अधिक कुछ नहीं।"

84. पूर्व–निर्दिष्ट स्तर पर न्यायालय धारा 11 (6ए) के तहत जिसकी जांच कर सकते हैं, वह केवल मध्यस्थता करार का "अस्तित्व" है, जबकि मध्यस्थ न्यायाधिकरण के पास "मध्यस्थता करार के अस्तित्व या वैधता के संबंध में किसी भी आपत्ति" की जांच करने का अधिकार क्षेत्र होगा।

85. अधिनियम, 1996 की धारा 45 में प्रावधान है कि:" **पक्षकारों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने की न्यायिक प्राधिकरण की शक्ति —** भाग 1 या सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में किसी बात के होते हुए भी, एक न्यायिक प्राधिकरण, जब किसी ऐसे मामले में कार्रवाई करता है, जिसके संबंध में पक्षों ने धारा 44 में निर्दिष्ट एक करार किया है, तो पक्षकारों में से किसी एक के अनुरोध पर या उसके माध्यम से या उसके तहत दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति को मध्यस्थता के लिए भेजा जाएगा, [जब तक कि

वह प्रथम दृष्टया यह न पाए कि उक्त करार अकृत या शून्य, निष्क्रिय या निष्पादित करने में असमर्थ है।"(जोर दिया गया)

86. धारा 11 (6ए) और धारा 45 के बीच एक स्पष्ट तुलना से पता चलता है कि धारा 45 का दायरा बहुत व्यापक है। धारा 45 के तहत, एक न्यायिक प्राधिकरण को यह जांच करनी होती है कि क्या करार "अकृत या शून्य ", "निष्क्रिय" या "निष्पादित करने में असमर्थ" है।

87. यह कोर्ट **वर्ल्ड स्पोर्ट ग्रुप (मॉरीशस) लिमिटेड बनाम एमएसएम सैटेलाइट (सिंगापुर) पीटीई लिमिटेड** [25] के पैरा 33 से 35 में समझाया गया है 'असक्त और शून्य', 'निष्क्रिय' और 'निष्पादित होने में असमर्थ' शब्दों के बीच का अंतर निम्नानुसार हैः–

"33. श्री गोपाल सुब्रमण्यम का तर्क यह भी है कि मध्यस्थता करार निष्क्रिय था या निष्पादित करने में असमर्थ था क्योंकि धोखाधड़ी के आरोपों की जांच अदालत द्वारा की जा सकती थी न कि मध्यस्थ द्वारा के अर्थ पर अधिकारी शब्द "निष्क्रिय या निष्पादित करने में असमर्थ" करते हैं

24 (2020) 2 एससीसी 455 ए

25 (2014) 11 एस. सी. सी. 239 ए

श्री सुब्रमण्यम के इस तर्क का समर्थन नहीं करते हैं । शब्द " धारा 45 में "निष्क्रिय या निष्पादित होने में असमर्थ" अधिनियम के कुछ भाग न्यूयॉर्क करार के अनुच्छेद ।। (3) से लिए गए हैं जैसा कि इस निर्णय के पैरा 27 में निर्धारित किया गया है।रेडफर्न और हंटर ऑन इंटरनेशनल आर्बिट्रेशन (5 वीं संस्करण) द्वारा प्रकाशित ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने न्यूयॉर्क कन्वेंशन पी.148, में प्रयुक्त शब्द "निष्क्रिय या निष्पादित करने में असमर्थ" इनका अर्थ इस प्रकार समझाया है:

"पहली नजर में 'निष्क्रिय' और 'निष्पादित करने में असमर्थ' शब्दों के बीच अंतर देखना मुश्किल है। हालांकि, एक मध्यस्थता खंड निष्क्रिय है जहां इसका प्रभाव समाप्त हो गया है, उदाहरण के लिए, पार्टियों द्वारा समय–सीमा का पालन करने में विफलता, या जहां पक्षों ने अपने आचरण से निहित रूप से मध्यस्थता करार को रद्द कर दिया है। इसके विपरीत, 'निष्पादित करने में असमर्थ' अभिव्यक्ति संभावित मध्यस्थता कार्यवाही के अधिक व्यावहारिक पहलुओं को संदर्भित करती प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए, यदि किसी कारण से मध्यस्थता न्यायाधिकरण की स्थापना करना असंभव है तो यह लागू होता है।"

34. अल्बर्ट जान वान डेन बर्ग ने आई. सी. सी. ए. की वेबसाइट पर "द न्यूयॉर्क कन्वेंशन, 1958–एन ओवरव्यू" शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया है। मध्यस्थता। org/मीडिया/0/12125884227980 न्यू _ यॉर्क _ कन्वेंशन _ ऑफ–1958 _ ओवरव्यू .पी. डी. एफ.), न्यूयॉर्क कन्वेंशन के अनुच्छेद ।। (3) का जिक्र करते हुए कहता हैः

"अकृत और शून्य' शब्दों की व्याख्या उन मामलों के संदर्भ में की जा सकती है जहां मध्यस्थता करार शुरू से ही कुछ अयोग्यता से प्रभावित होता है, जैसे कि गलत निरूपण, दबाव, धोखाधड़ी या अनुचित प्रभाव के कारण सहमति की कमी। 'निष्क्रिय' शब्द को उन

मामलों को शामिल करने के लिए कहा जा सकता है जहां मध्यस्थता करार का प्रभाव समाप्त हो गया है, जैसे कि पक्षों द्वारा निरसन। 'प्रदर्शन करने में असमर्थ' शब्द लागू होते प्रतीत होते हैं। उन मामलों में जहां मध्यस्थता प्रभावी रूप से शुरू नहीं की जा सकती है। ऐसा तब हो सकता है जब मध्यस्थता खंड बहुत अस्पष्ट रूप से लिखा गया हो, या संविदा की अन्य शर्तें मध्यस्थता करने के पक्षों के इरादे का खंडन करती हों, जैसा कि तथाकथित सह–समान मंच चयन खंडों के मामले में होता है। इन मामलों में भी , अदालतें मध्यस्थता के पक्ष में संविदा प्रावधानों की व्याख्या करती हैं।"

35. विदेशी मध्यस्थता पंचाटो की मान्यता और सम्मेलन पुस्तकः न्यूयॉर्क सम्मेलन पर एक वैश्विक टिप्पणी क्रोंके, नासिमेंटो और अन्य द्वारा. (एड.) (2010) पी.82 कहते हैंः "अधिकांश अधिकारियों का मानना है कि असक्त और शून्य शब्द के संबंध में विचार और दृष्टिकोण के समान स्कूल भी लागू होते हैं निष्क्रिय और निष्पादित करने में असमर्थ शब्द।

नतीजतन, अधिकांश अधिकारी इन शब्दों की समान रूप से व्याख्या नहीं करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप एकरूपता की दुर्भाग्यपूर्ण कमी होती है। उस चेतावनी के साथ, हम विशिष्ट उदाहरणों का अवलोकन करेंगे जहां मध्यस्थता करारों को निष्क्रिय (या नहीं) या निष्पादित करने में असमर्थ माना गया था। निष्क्रियता की शर्तें उन मामलों को संदर्भित करती हैं जहां मध्यस्थता करार का प्रभाव उस समय तक समाप्त हो गया है जब तक कि अदालत को पक्षकारों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने के लिए कहा जाता है। उदाहरण के लिए, मध्यस्थता करार का प्रभाव तब समाप्त हो जाता है जब एक ही विषय और पक्षों से संबंधित न्यायिक प्रभाव के साथ पहले से ही कोई मध्यस्थता निर्णय या अदालत का निर्णय हो चुका हो। हालांकि, केवल कई कार्यवाहियों का अस्तित्व मध्यस्थता करार को निष्क्रिय करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त, मध्यस्थता करार का प्रभाव समाप्त हो सकता है यदि मध्यस्थता शुरू करने या पुरस्कार देने की समय –सीमा समाप्त हो गई है, बशर्ते कि इस समय–सीमा की समाप्ति के कारण पक्षकारों का मध्यस्थता करार से बाध्य होने का इरादा नहीं था।

अंत में, कई अधिकारियों ने माना है कि यदि पक्ष मध्यस्थता को माफ कर देते हैं तो मध्यस्थता करार का प्रभाव समाप्त हो जाता है। मध्यस्थता के अधिकार को माफ करने के कई संभावित तरीके हैं। आम तौर पर, एक पक्ष मध्यस्थता के अधिकार को माफ कर देगा यदि, अदालत की कार्यवाही में, वह मध्यस्थता करार को ठीक से लागू करने में विफल रहता है या यदि वह सक्रिय रूप से मध्यस्थता करार के दायरे में आने वाले दावों का पीछा करता है।"

88. उपर्युक्त व्याख्या धारा 11 (6ए) की भाषा में नहीं की गई है। कहने का मतलब है, विधायिका ने धारा 11 (6ए) में धारा 45 की भाषा को उधार नहीं लिया है, जो मध्यस्थता करार के 'अस्तित्व' तक सीमित है।

VII. मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6ए) के तहत न्यायालय द्वारा सीमित परीक्षा

89. अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6ए) के सीमित दायरे को इस माननीय न्यायालय की तीन–न्यायाधीशों की पीठ ने **प्रवीण इलेक्ट्रीकल्स प्रायवेट लिमिटेड बनाम गैलेक्सी इन्फ्रा एंड इंजीनियरींग प्रायवेट लिमिटेड** [26] के मामले में

पैरा 17 में विद्या द्रोलिया और अन्य (उपर्युक्त) पर अपनी निर्भरता रखते हुए समझाया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि मध्यस्थता करार के अस्तित्व का अर्थ एक ऐसा करार है जो अधिनियम, 1996 और संविदा अधिनियम, 1872 दोनों की आवश्यकताओं को पूरा करता है और जब यह विधि में प्रवर्तनीय हो। **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और एक अन्य बनाम हुंडई इंजीनियरिंग एंड कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड और अन्य** [27] **के फैसले पर भी प्रवीण इलेक्ट्रिकल्स प्राइवेट लिमिटेड (उपर्युक्त) में भरोसा किया गया था।** यह प्रदर्शित करने के लिए कि धारा 11 (6ए) धारा 16 और धारा 45 के साथ "अस्तित्व" से संबंधित है, जो एक मध्यस्थता करार की "वैधता" से संबंधित है। वास्तव में मध्यस्थता करार के "अस्तित्व" और "वैधता" के बीच एक अंतर है।

90. UNCITRAL मॉडल विधि कथित गैर–अस्तित्व, अयोग्यता या मध्यस्थता करार की अवैधता के आधार पर क्षेत्राधिकार संबंधी आपत्तियों और एक मान्य रूप से वैध मध्यस्थता करार के दायरे के आधार पर क्षेत्राधिकार संबंधी आपत्तियों के बीच अंतर का भी समर्थन करता है। [28] मध्यस्थता करार के अस्तित्व या वैधता सहित अधिकार क्षेत्र के सभी मुद्दों पर मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा निर्णय लिया जा सकता है, चाहे वह अधिनियम, 1996 की धारा 16 के तहत अदालत के हस्तक्षेप के माध्यम से नियुक्त किया गया हो या नहीं।

26 (2021) 5 एस. सी. सी. 671
27 (2018) 17 एस. सी. सी. 607
28 अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता पर UNCITRAL मॉडल विधि (1985), 2006 में अपनाए गए संशोधनों के साथ, उपलब्ध हैःHTTPS://असंकलित।एक.ओ. आर. जी./साइट/अनसिट्रल। एक.org/फ़ाइलें/मीडिया–दस्तावेज़/अनसिट्रल/en/19–09955 _ e _ eBook।पीडीएफ ए

VIII. "मध्यस्थता करार का अस्तित्व" की व्याख्या

91. धारा 11 (6ए) के तहत "मध्यस्थता करार के अस्तित्व" को निर्धारित करने के लिए, अधिनियम, 1899 का इस कारण से कोई प्रभाव नहीं हो सकता है कि पूर्व–संदर्भित चरण में, यदि दस्तावेज़ पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई गई है/अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगाई गई है जो मध्यस्थता करार को अस्तित्व में नहीं रखता है जैसा कि पहले चर्चा की गई थी और निर्धारित किया गया था। पूर्व–निर्दिष्ट स्तर पर अदालतों/न्यायिक प्राधिकरण को जिस एकमात्र विचार का पालन करने की आवश्यकता है, वह है अधिनियम, 1996 की धारा 7 के तहत निर्दिष्ट मध्यस्थता करार का प्रथम दृष्टया अस्तित्व जो प्रदान करता हैः

"7. मध्यस्थता करार —

(1) इस भाग में, "मध्यस्थता करार" का अर्थ है पक्षकारों द्वारा मध्यस्थता को सभी या कुछ विवादों को प्रस्तुत करने के लिए एक करार जो

उत्पन्न हुए हैं या जो एक परिभाषित कानूनी संबंध के संबंध में उनके बीच उत्पन्न हो सकते हैं, चाहे वे संविदात्मक हों या नहीं।

(2) एक मध्यस्थता करार एक संविदा में एक मध्यस्थता खंड के रूप में या एक अलग करार के रूप में हो सकता है।

(3) एक मध्यस्थता करार लिखित रूप में होगा।

(4) एक मध्यस्थता करार लिखित रूप में होता है यदि यह

(ए) पक्षों द्वारा हस्ताक्षरित दस्तावेज़ में निहित है;

(बी) पत्रों, टेलेक्स, तार या दूरसंचार के अन्य साधनों का आदान–प्रदान (इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के माध्यम से संचार सहित) जो करार का रिकॉर्ड प्रदान करते हैं; या

(ग) दावे और बचाव के बयानों का आदान–प्रदान जिसमें करार के अस्तित्व का आरोप एक पक्ष द्वारा लगाया जाता है और दूसरे द्वारा इनकार नहीं किया जाता है।

(5) मध्यस्थता खंड वाले दस्तावेज़ के लिए एक संविदा में संदर्भ एक मध्यस्थता करार का गठन करता है यदि संविदा लिखित रूप में है और संदर्भ ऐसा है कि उस मध्यस्थता खंड को संविदा का हिस्सा बनाया जाए।"

92. कहने का अर्थ यह है कि पूर्व–निर्दिष्ट स्तर पर धारा 11 (6ए) के तहत न्यायालय का सीमित दायरा यह जांच करना है कि क्या मध्यस्थता करार, प्रथम दृष्टया, अधिनियम, 1996 की धारा 7 के तहत निर्दिष्ट है, जिसमें केवल निम्नलिखित कारकों का निर्धारण शामिल हैः

(i) क्या मध्यस्थता करार लिखित रूप में है?
(ii) क्या मध्यस्थता करार के मुख्य संविदात्मक घटक पूरे होते हैं?

(iii) दुर्लभ अवसरों पर, आपत्ति के गंभीर नोट पर, यदि कोई हो, तो यह जांच कर सकता है कि क्या विवाद का विषय मध्यस्थता योग्य है?

IX. मध्यस्थता करार पर स्टाम्प लगाने पर स्पष्टीकरण

93. संदर्भ आदेश में और विशेष रूप से पैरा 20, 24 और 58 में एक संदर्भ दिया गया है कि महाराष्ट्र स्टाम्प अधिनियम, 1958 स्टाम्प शुल्क के भुगतान के लिए मध्यस्थता करार के अधीन नहीं है।

मेसर्स एन. एन. ग्लोबल मर्केंटाइल प्राइवेट लिमिटेड (उपर्युक्त)[29] के प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैंः

"20. हमने महाराष्ट्र स्टाम्प अधिनियम, 1958 और उससे जुड़ी अनुसूची । के प्रावधानों का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया है, जो धारा 3 में निर्दिष्ट उपकरणों को सूचीबद्ध करता है, जिन पर स्टाम्प शुल्क लगाया जाता है। हम पाते हैं कि एक मध्यस्थता करार अनुसूची में स्टाम्प शुल्क के लिए प्रभार्य साधन के रूप में शामिल नहीं है। महाराष्ट्र स्टाम्प अधिनियम, 1958 की अनुसूची । की मद 12 में शामिल है – स्टाम्प शुल्क के भुगतान के लिए प्रभार्य होने के लिए एक मध्यस्थ द्वारा पारित पंचाट। श्रीराम ईपीसी

लिमिटेड बनाम.रियोग्लास सोलर एसए [श्रीराम ईपीसी लिमिटेड v. रियोग्लास सोलर एसए, (2018) 18 एससीसी 313], में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि स्टाम्प शुल्क का भुगतान भारत में किए गए पंचाटों पर लागू होता है, लेकिन इसमें एक "विदेशी पंचाट" शामिल नहीं है जिसे स्टाम्प अधिनियम, 1899 की अनुसूची में शामिल नहीं किया गया है।

24. ... महाराष्ट्र स्टाम्प अधिनियम की धारा 3 स्टाम्प शुल्क के भुगतान के लिए एक मध्यस्थता करार के अधीन नहीं है, अधिनियम की अनुसूची में सूचीबद्ध विभिन्न अन्य करारों के विपरीत। यह स्पष्ट कारण है कि एक मध्यस्थता करार एक वाणिज्यिक करार से उत्पन्न विवादों को मध्यस्थता के माध्यम से हल करने के लिए एक करार है। पृथक्करण के सिद्धांत के आधार पर, मध्यस्थता करार अंतर्निहित वाणिज्यिक संविदा से एक अलग और अलग करार होने के कारण, मूल संविदा से स्वतंत्र रहेगा। मध्यस्थता करार को अमान्य, अप्रवर्तनीय या अस्तित्वहीन नहीं माना जाएगा, भले ही मूल संविदा साक्ष्य में स्वीकार्य न हो, या स्टाम्प शुल्क का भुगतान न करने के कारण कार्रवाई नहीं की जा सकती हो।

58. हम इस न्यायालय के पाँच न्यायाधीशों की संविधान पीठ द्वारा अधिकृत रूप से हल किए जाने के लिए निम्नलिखित मुद्दे को संदर्भित करना उचित समझते हैं: "क्या स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 में निहित वैधानिक प्रतिबंध अधिनियम की अनुसूची के साथ पठित धारा 3 के तहत स्टाम्प शुल्क के लिए प्रभार्य उपकरणों पर लागू होता है, ऐसे साधन में निहित मध्यस्थता करार को भी, जो स्टाम्प शुल्क के भुगतान के लिए प्रभार्य नहीं है, अस्तित्वहीन, अप्रवर्तनीय या अमान्य होने के रूप में प्रस्तुत करेगा, जो मूल संविदा/लिखत पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान लंबित है? " (जोर दिया गया)

29 (2021) 4 एससीसी 379 ए

94. 3–न्यायाधीशों की पीठ द्वारा लिए गए दृष्टिकोण में त्रुटि प्रतीत होती है। अधिनियम, 1899 की अनुसूची । ने अपने अनुच्छेद 5 में "करार या करार ज्ञापन" शीर्षक से एक अवशिष्ट प्रविष्टि है जिसमें कहा गया है कि (ग) यदि अन्यथा आठ वर्षों के लिए प्रावधान नहीं किया गया है। अनुच्छेद 5 को इस प्रकार पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

5. करार या करार ज्ञापन	
(ए) यदि विनिमय बिल की बिक्री से संबंधित है	दो आने
(बी) यदि किसी सरकारी सुरक्षा या किसी निगमित कंपनी या अन्य निकाय कॉर्पोरेट में शेयर की बिक्री से संबंधित है	अधिकतम दस रूपये के अधीन, प्रत्येक रूपये के लिये एक आना । 10000/– या सुरक्षा के मूल्य का उसका हिस्सा या शेयर
(सी) यदि अन्यथा छूट प्रदान नहीं की गई है	आठ आने
छूट	
करार या करार ज्ञापन– (ए) विशेष रूप से माल या माल की बिक्री के लिये या उससे संबंधित, संख्या के तहत प्रभार्य कोई नोट या ज्ञापन नहीं . 43 (बी)किसी ऋण के लिये या उससे संबंधित केन्द्र सरकार को निविदाओं के रूप में किया गया	

95. धारा 11 (पूर्व–निर्दिष्ट चरण) के स्तर पर मध्यस्थता करार की जांच इस तरह से सावधानीपूर्वक की जानी चाहिए कि यह न्यायिक हस्तक्षेप के लिए व्यापक रूप से खुला द्वार खोलकर प्रावधानों के पीछे के विधायी इरादे का उल्लंघन न करे।

96. हालाँकि, हम अधिनियम, 1996 की धारा 9 के दायरे और परिधी के बारे में प्रश्न की जांच करने से खुद को रोकते हैं, जिसका संदर्भ **मेसर्स एन. एन. ग्लोबल मर्कैंटाइल प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त)** में तीन–न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिया गया है क्योंकि वर्तमान संदर्भ अधिनियम, 1996 की धारा 9 के दायरे की जांच करने के लिए संबंधित नहीं है और इसे उचित कार्यवाही में जांच के लिए खुला छोड़ देते हैं।

X. संदर्भ का उत्तर

97. अंत में, हमारे विचार सेः

i) हम तदनुसार मानते हैं कि मध्यस्थता करार की एक प्रति/प्रमाणित प्रति का अस्तित्व, चाहे वह बिना स्टाम्प के हो/अपर्याप्त स्टाम्प के हो पूर्व–निर्दिष्ट स्तर पर अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6ए) के तहत मध्यस्थ की नियुक्ति के उद्देश्यों के लिए एक प्रवर्तनीय दस्तावेज है, जहां न्यायिक हस्तक्षेप 2015 के संशोधन के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए केवल "मध्यस्थता करार के अस्तित्व" की प्रथम दृष्टया जांच तक ही सीमित रहेगा और

अदालतों को अधिनियम, 1996 की धारा 11 (13) के तहत निर्धारित मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए समय सारिणी का सख्ती से पालन करना चाहिए।

(ii) मध्यस्थता करार की वैधता आदि सहित सभी प्रारंभिक/बहस योग्य मुद्दे, जिन पर अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगाई गई है/अनुचित रूप से स्टाम्प लगाई गई है।अधिनियम, 1996 की धारा 16 के तहत मध्यस्थ/मध्यस्थ न्यायाधिकरण को संदर्भित किया जा सकता है, जो गुण द्वारा कोम्पेटेंज़–कोम्पेटेंज़ के सिद्धांत में ऐसा करने के लिए शक्ति है ।

iii) **एस. एम. एस. टी एस्टेट्स प्राइवेट लिमिटेड (ऊपर)** में निर्णय निरस्त कर दिया जाता है। **गरवारे वॉल रोप्स लिमिटेड (ऊपर)** के पैरा 22 और 29, जो **विद्या द्रोलिया और अन्य (ऊपर)** में पैरा 146 और 147 में अनुमोदित हैं, उस हद तक खारिज कर दिए गए हैं।

98. संदर्भ का जवाब उसी के अनुसार दिया जाता है।

99. हम इस न्यायालय को दिए गए संदर्भ का जवाब देने में न्यायमित्र श्री गौरव बनर्जी द्वारा दिए गए योगदान की सराहना करते हैं।

ऋषिकेश रॉय, जे.

ए. परिचय

बी. संविधान पीठ का संदर्भ

सी. एन. एन. ग्लोबल में तथ्य

डी. प्रश्न का संशोधन

ई. वकील की प्रस्तुतियाँ

एफ. स्टाम्प अधिनियम, 1899 की सांविधिक योजना

जी. मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की सांविधिक योजना

i) मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6) के तहत विधि का विकास।

ii) 2015 के बाद की व्यवस्थाः धारा 11 (6ए) को शामिल करना।

iii) 2019 के बाद संशोधन और भारत में मध्यस्थता के संस्थागतकरण की समीक्षा के लिए उच्च स्तरीय समिति की रिपोर्ट ।

एच. एस. एम. एस. चाय पर चर्चा

आई. गरवारे पर चर्चा

जे. स्टाम्प एक्ट, आर्बिट्रेशन एक्ट और कॉन्ट्रैक्ट एक्ट के बीच परस्पर क्रिया।

i) मध्यस्थता अधिनियम एक विशेष विधान है

ii) सामंजस्यपूर्ण निर्माण

के. प्रौद्योगिकी का आगमन और लेनदेन की बदलती प्रकृति

एल. पृथकता का सिद्धांत

एम. कोम्पेटेंज़ कोम्पेटेंज़ और भारत में न्यायिक गतिरोध का मुद्दा

एन. विद्या द्रोलिया पर चर्चा

ओ. निष्कर्ष

ए. परिचय

1. मुझे अपने विद्वान भाई, न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ (अपने और न्यायमूर्ति अनिरुद्ध बोस के लिए) की विद्वतापूर्ण राय और विद्वान भाई न्यायमूर्ति सी. टी. रविकुमार के अलग फैसले को पढ़ने का लाभ मिला। हालांकि, मुझे बहुमत की राय और सहमति वाले फैसले से सहमत होने में असमर्थता पर खेद है। कोलंबिया विश्वविद्यालय में दिए गए अपने एक व्याख्यान में चार्ल्स इवांस ह्यूजेस 1 के शब्दों को प्रतिध्वनित करते हुए, हमारी अल्पमत राय (स्वयं और विद्वान भाई न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी, जिन्होंने एक अलग राय लिखी है), भविष्य की परेशान करने वाली भावना के साथ–साथ मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (संक्षिप्त में "मध्यस्थता अधिनियम, 1996") और भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 (संक्षिप्त में "स्टाम्प अधिनियम, 1899") के बीच परस्पर क्रिया की जांच करने के लिए विधायिका की शक्तियों से भी अपील करें; और मध्यस्थता के क्षेत्र में हितधारकों के मन में किसी भी भ्रम से बचने के लिए उलझन को दृढ़ता से हल करें।

2. मध्यस्थता कार्यवाही में न्यायालयों की भूमिका पर वर्षों से बहुत बहस हो रही है।विवादित पक्ष की स्वायत्तता मध्यस्थता प्रक्रिया का मूल है लेकिन यदि पक्ष आम सहमति पर पहुंचने में विफल रहते हैं, तो न्यायालयों की पर्यवेक्षी भूमिका अनिवार्य हो जाती है। *रेडफर्न और हंटर अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता* [2] राष्ट्रीय न्यायालयों और मध्यस्थता न्यायाधिकरणों के बीच संबंधों का निम्नानुसार का वर्णन करता है: "इस हद तक कि राष्ट्रीय न्यायालयों और मध्यस्थता न्यायाधिकरणों के बीच संबंध को 'साझेदारी' कहा जाता है, यह बराबर की साझेदारी नहीं है। मध्यस्थता पक्षों के करार पर निर्भर हो सकती है, लेकिन यह विधि पर निर्मित एक प्रणाली भी है,जो इसे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर प्रभावी बनाने के लिए उस विधि पर निर्भर करती है। राष्ट्रीय न्यायालय मध्यस्थता के बिना अस्तित्व में हो सकते हैं, लेकिन मध्यस्थता अदालतों के बिना अस्तित्व नहीं हो सकती है । *वास्तविक मुद्दा यह परिभाषित करना है कि राष्ट्रीय न्यायालयों पर मध्यस्थता की यह निर्भरता किस बिंदु पर शुरू होती है और किस पर समाप्त होती है।"* [जोर दिया गया]

3. मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के तहत न्यायालयों की पर्यवेक्षी भूमिका को मोटे तौर पर तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है, अर्थात मध्यस्थता कार्यवाही की पूर्व–शुरुआत, मध्यस्थता कार्यवाही के दौरान और मध्यस्थता के बाद के चरण में।मध्यस्थता के भाग । में धारा 8 और धारा 11 मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के भाग 2 में अधिनियम, 1996 और धारा 45 विशेष रूप से मध्यस्थता कार्यवाही शुरू करने से पहले न्यायालयों की भूमिका से संबंधित है। धारा 8 "मध्यस्थता के लिए पक्षों को संदर्भित करने की शक्ति" से

1 चार्ल्स इवांस ह्यूजेस, द सुप्रीम कोर्ट ऑफ द यूनाइटेड स्टेट्स इट्स फाउंडेशन,

तरीके और उपलब्धियाँ, (कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस) 68 (1928)

2 अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता पर एलन रेडफर्न और मार्टिन हंटर, रेडफर्न और हंटर (6 संस्करण, 2015, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), अध्याय 7, पैराग्राफ 7.03

संबंधित है जहां एक मध्यस्थता करार है; यह मध्यस्थता के लिए एक अनिवार्य संदर्भ प्रदान करता है, जब तक कि न्यायालय प्रथम दृष्टया संतुष्ट न हो कि कोई वैध मध्यस्थता करार मौजूद नहीं है। धारा 11 (6), पर दूसरी ओर, "मध्यस्थों की नियुक्ति" का प्रावधान है जब पक्षकार मध्यस्थ के नाम पर पारस्परिक रूप से सहमत होने या मध्यस्थता करार के संदर्भ में मध्यस्थ नियुक्त करने में विफल रहना। धारा 45 "शक्ति" को संदर्भित करती है। मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के भाग ।। में मध्यस्थता के लिए पक्षों को संदर्भित करने के लिए न्यायिक प्राधिकरण।

4. यहाँ इस संदर्भ में, मध्यस्थता कार्यवाही शुरू होने से पहले न्यायिक हस्तक्षेप की सीमा का परीक्षण किया जा रहा है। यह स्टाम्प शुल्क के भुगतान और क्या एक मध्यस्थता करार के अधीन मध्यस्थता करारों के प्रवर्तन में देरी के महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाता है। यदि संबंधित स्टाम्प अधिनियम के अनुसार अंतर्निहित लिखत पर स्टाम्प नहीं लगाई गई है/अपर्याप्त रूप से स्टाम्प नहीं लगाई गई है, तो यह गैर-मौजूद, अमान्य/शून्य या विधि में अप्रवर्तनीय होगा।

5. इस संदर्भ में मुख्य प्रश्न यह है कि क्या मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6) के तहत मध्यस्थता करार प्रस्तुत किए जाने पर स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 के तहत "साक्ष्य में विधिवत स्टाम्प नहीं लगाए गए लिखत" शीर्षक वाली वैधानिक रोक को आकर्षित किया जाएगा।एक परिणाम के रूप में, यह संदर्भ विशेष रूप से नियुक्ति के चरण में न्यायालय के हस्तक्षेप के दायरे और प्रकृति का भी परीक्षण करता है मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 के तहत मध्यस्थ। दुविधा न्यायिक समीक्षा के दायरे में और एक अंतर्निहित संविदा में निहित बिना स्टाम्प वाले/अपर्याप्त स्टाम्प वाले मध्यस्थता करार की वैधता/प्रवर्तनीयता को इस संदर्भ में हल किए जाने की उम्मीद है।

B. संविधान पीठ का संदर्भ

6. मेसर्स एन. एन. ग्लोबल मर्केंटाइल प्राइवेट लिमिटेड बनाम मेसर्स इंडो यूनिक फ्लेम लिमिटेड और अन्य [3] (संक्षेप में) मामले में 3-न्यायाधीशों की पीठ। "एन. एन. ग्लोबल ") ने विद्या द्रोलिया और अन्य बनाम दुर्गा ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन [4] (संक्षेप में" विद्या द्रोलिया ") मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ के पैराग्राफ 146 और 147 में तर्क पर संदेह करते हुए इस मुद्दे की पांच न्यायाधीशों की पीठ द्वारा जांच करना उचित समझा। विद्या द्रोलिया (ऊपर) में अदालत के समक्ष मामला विषय-वस्तु मध्यस्थता से संबंधित था, लेकिन सवाल का फैसला करते समय उसने गरवारे दीवार में 2-न्यायाधीशों की पीठ के फैसले के पैराग्राफ 22 और 29 को मंजूरी के साथ उद्धृत किया। ट्रॉप्स लिमिटेड बनाम तटीय समुद्री निर्माण और इंजीनियरिंग सीमित [5] (संक्षेप में "गरवारे")।

7. एस. एम. एस. टी एस्टेट्स (पी) लिमिटेड बनाम में निर्णय के बाद। चांदमारी टी कं. (पी) लिमिटेड [6] (संक्षेप में "एस. एम. एस. टी") में आयोजित किया गया था। गरवारे (ऊपर) कि वाणिज्यिक संविदा पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान न करने से मध्यस्थता करार भी अमान्य हो जाएगा और यह विधि में अस्तित्वहीन और अप्रवर्तनीय हो जाएगा।

---

[3] ***(2021) 4 एससीसी 379***
[4] ***(2021) 2 एससीसी 1***
[5] ***(2019) 9 एससीसी 209***
[6] ***(2011) 14 एससीसी 66***

8. एन. एन. ग्लोबल (ऊपर) में इस अदालत ने एस. एम. एस. टी. (ऊपर) में 2–न्यायाधीशों की पीठ के फैसले को खारिज कर दिया, जिसे गरवारे में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था। (ऊपर)।

9. एन. एन. ग्लोबल (सुप्रा) अन्य बातों के साथ–साथ कोम्पेटेंज़ कोम्पेटेंज़ के सिद्धांत और निगमित पृथकता के सिद्धांत पर निर्भर था। मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 16 के तहत विद्या द्रोलिया (ऊपर) और गरवारे (ऊपर) में लिए गए दृष्टिकोण की शुद्धता पर संदेह है। इस संदर्भ के दायरे को परिभाषित करने वाले प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे दिए गए हैं:

> "34. हम विद्या द्रोलिया [विद्या द्रोलिया बनाम दुर्गा ट्रेडिंग कार्पोरेशन] मामले में तीन–न्यायाधीशों की पीठ के पैरा 146 और 147 में लिए गए दृष्टिकोण की शुद्धता पर संदेह करते हैं।, (2021) 2 एससीसी 1:(2021) 1 एस. सी. सी. (सी. वी.) 549]। हम गारवेयर वॉल रोप्स लिमिटेड के पैरा 22 और 29 में निष्कर्षों को संदर्भित करना उचित समझते हैं। तटीय समुद्री निर्माण और इंजीनियरिंग।लिमिटेड, (2019) 9 एससीसी 209:(2019) 4 एस. सी. सी. (सी. आई. वी.) 324], जिसकी विद्या द्रोलिया [विद्या द्रोलिया बनाम दुर्गा ट्रेडिंग कार्पोरेशन] के पैरा 146 और 147 में पुष्टि की गई है।, (2021) 2 एससीसी 1:(2021) 1 एस. सी. सी. (सी. आई. वी.) 549], पाँच न्यायाधीशों की संविधान पीठ को।
>
> 56. हमारा विचार है कि एस. एम. एस. टी एस्टेट्स [एस. एम. एस. टी एस्टेट्स (पी) लिमिटेड] में निष्कर्ष v. चांदमारी टी कंपनी (पी) लिमिटेड, (2011) 14 एस. सी. सी. 66: (2012) 4 एस. सी. सी. (सी. आई. वी.) 777] और गरवारे [गरवारे वॉल रोप्स लिमिटेड बनाम.तटीय समुद्री निर्माण और इंजीनियरिंग।लिमिटेड, (2019) 9 एससीसी 209:(2019) 4 एस. सी. सी. (सी. आई. वी.) 324] कि वाणिज्यिक संविदा पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान न करने से मध्यस्थता करार भी अमान्य हो जाएगा, और इसे विधि में अस्तित्वहीन और अप्रवर्तनीय बना देगा, विधि में सही स्थिति नहीं है।
>
> 57. विद्या द्रोलिया [विद्या द्रोलिया बनाम दुर्गा ट्रेडिंग कार्पोरेशन] में निर्णय के पैरा 146 और 147 में दिए गए निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए।, (2021) 2 एससीसी 1:(2021) 1 एस. सी. सी. (सी. आई. वी.) 549] एक समन्वय पीठ द्वारा, जिसने गरवारे [गरवारे वॉल रोप्स लिमिटेड बनाम.तटीय समुद्री निर्माण और इंजीनियरिंग।लिमिटेड, (2019) 9 एससीसी 209: (2019) 4 एस. सी. सी. (सी. आई. वी.) 324], उपरोक्त मुद्दे को इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा अधिकृत रूप से निपटाया जाना आवश्यक है।
>
> 58. हम इस न्यायालय के पाँच न्यायाधीशों की संविधान पीठ द्वारा अधिकृत रूप से हल किए जाने के लिए निम्नलिखित मुद्दे को संदर्भित करना उचित समझते हैं:
>
> > "क्या स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 में निहित सांविधिक प्रतिबंध अधिनियम की अनुसूची के साथ पठित धारा 3 के तहत स्टाम्प शुल्क के लिए प्रभार्य लिखतों पर लागू होता है ? ऐसे लिखत में निहित मध्यस्थता करार को, जो स्टाम्प शुल्क के भुगतान के लिए प्रभार्य नहीं है, गैर–मौजूद, अप्रवर्तनीय या अमान्य होने के रूप में प्रस्तुत करें, जो मूल संविदा/लिखत पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान लंबित है? "

10. इस प्रकार, संदर्भ के दौरान एस. एम. एस. टी. (सुप्रा), गरवारे (सुप्रा), विद्या द्रोलिया (सुप्रा) के साथ–साथ अन्य प्रासंगिक निर्णयों की शुद्धता का मूल्यांकन किया जाना है।यह इस न्यायालय के संज्ञान में लाया गया है कि परस्पर विरोधी निर्णयों ने मध्यस्थता कार्यवाही के लिए एक परेशान करने वाली स्थिति पैदा कर दी है और इसलिए, इस मुद्दे को इस संदर्भ के माध्यम से हल किए जाने की उम्मीद है।

11. एन. एन. ग्लोबल (उपरोक्त) में पृष्ठभूमि तथ्य जिन्होंने इस संदर्भ को जन्म दिया, उन्हें शुरुआत में नोट किया जाना चाहिएः

सी. एन. ग्लोबल में तथ्य [7]

12. इंडो यूनिक फ्लेम लिमिटेड (संक्षेप में "इंडो यूनिक फ्लेम") ने कोयले के परिवहन के लिए एन. एन. ग्लोबल मर्कंटाइल प्राइवेट लिमिटेड ("एन. एन. ग्लोबल") के साथ एक उप–संविदा कार्य आदेश में प्रवेश किया। कार्य आदेश के खंड 9 के संदर्भ में, एन. एन. ग्लोबल ने इंडो यूनिक को एक बैंक गारंटी प्रदान की। कार्य आदेश के खंड 10 में मध्यस्थता खंड का प्रावधान किया गया है। मुख्य विरोध अधिनियम में कुछ विवादों के कारण, इंडो यूनिक ने एन. एन. ग्लोबल द्वारा प्रस्तुत बैंक गारंटी का आह्वान किया।इसके बाद, एन. एन. ग्लोबल ने वाणिज्यिक न्यायालय, नागपुर के समक्ष एक दीवानी मुकदमा दायर किया। मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 8 के तहत एक आवेदन भी दायर किया गया था जिसमें विवादों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने की मांग की गई थी। वाणिज्यिक न्यायालय ने 18.01.2018 पर मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 8 के तहत आवेदन को यह मानते हुए खारिज कर दिया कि बैंक गारंटी एक स्वतंत्र संविदा था। इसके बाद, इंडो यूनिक ने वाणिज्यिक न्यायालय के आदेश के खिलाफ एक रिट याचिका दायर की। 30.9.2020 पर, बॉम्बे उच्च न्यायालय ने मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 8 के तहत आवेदन को अनुमति दी।इसने अभिनिर्धारित किया कि कार्य आदेश की गैर–मुद्रांकन को ऊपर उठाया जा सकता है। मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 का चरण या उससे पहले उचित स्तर पर मध्यस्थ न्यायाधिकरण। इसने 18.01.2018 पर वाणिज्यिक न्यायालय के आदेश को दरकिनार कर दिया। इस न्यायालय में एक अपील दायर की गई थी जिसमें एन. एन. ग्लोबल ने तर्क दिया था कि चूंकि उप–संविदा पर स्टाम्प नहीं लगाई गई थी महाराष्ट्र स्टाम्प अधिनियम, 1958 के तहत मध्यस्थता करार 'अप्रवर्तनीय' प्रस्तुत किया जाएगा। यह इस संदर्भ में है कि न्यायालय ने गरवारे (उपरोक्त) में पिछले निर्णयों की शुद्धता पर संदेह किया जो विद्या द्रोलिया (ऊपर) में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था कि इस तरह के मध्यस्थता करारों का विधि में अस्तित्व नहीं है और इस संविधान पीठ से इस मुद्दे पर पुनर्विचार करने की मांग की गई थी।

D. संदर्भ प्रश्न का संशोधनः

13. एन. एन. ग्लोबल (उपरोक्त) के पैरा 58 में मूल संदर्भ प्रश्न निम्नानुसार निर्धारित किया गया थाः

> "क्या स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 में निहित सांविधिक प्रतिबंध अधिनियम की अनुसूची के साथ पठित धारा 3 के तहत स्टाम्प शुल्क के लिए प्रभार्य लिखतों पर लागू होता है, ऐसे लिखत में निहित मध्यस्थता करार को भी प्रस्तुत करेगा, जो – अस्तित्वहीन होने के कारण स्टाम्प शुल्क के भुगतान के लिए प्रभार्य नहीं, विधि में अप्रवर्तनीय, या अमान्य/शून्य, मूल संविदा/लिखत पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान लंबित है? "

[श्री गौरव बनर्जी, न्यायमित्र के रूप में इस न्यायालय की सहायता करने वाले विद्वान वरिष्ठ वकील ने हालांकि संदर्भ के प्रश्न को फिर से तैयार करने का प्रस्ताव रखा, जैसा कि नीचे दिया गया है:

"क्या स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 में निहित सांविधिक प्रतिबंध अधिनियम की अनुसूची के साथ पठित धारा 3 के तहत स्टाम्प शुल्क के लिए प्रभार्य लिखतों पर लागू होता है, ऐसे लिखत में निहित मध्यस्थता करार को भी प्रदान करेगा, जो स्टाम्प शुल्क के

[7](2021) 4 SCC 379

भुगतान के लिए प्रभार्य नहीं है जो कि अस्तित्व में नहीं है, विधि में अप्रवर्तनीय है, या अमान्य/शून्य है, मूल संविदा/लिखत पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान लंबित है? "

[मूल में जोर]

14. यह देखा गया है कि महाराष्ट्र स्टाम्प अधिनियम, 1958 से संबंधित एक गलत अवलोकन जो स्टाम्प शुल्क के लिए एक मध्यस्थता करार के अधीन नहीं था, एन. एन. ग्लोबल (उपरोक्त) में पैरा 20,24 और 58 में किया गया था।हमारे चार विचारों में से प्रत्येक में, न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ, न्यायमूर्ति सी. टी. रविकुमार, न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी (और स्वयं), हम पाते हैं कि यह सही स्थिति नहीं है। महाराष्ट्र स्टाम्प अधिनियम, 1958 की प्रयोज्यता पर। द इंडियन स्टाम्प एक्ट, 1899 एक राजकोषीय अधिनियम है जो लिखतों के निष्पादन पर शुल्क लगाता है।डाक टिकट अधिनियम, 1899 की धारा 2 (14) "लिखत" को "प्रत्येक लिखत के रूप में परिभाषित करती है जिसके द्वारा कोई अधिकार या दायित्व बनाया जाता है, हस्तांतरित किया जाता है, सीमित किया जाता है, बढ़ाया जाता है, समाप्त किया जाता है या समाप्त किया जाता है। अभिलेख किया गया "।"शुल्क के साथ प्रभार्य लिखत" शीर्षक वाली धारा 3 अन्य बातों के साथ-साथ यह भी प्रदान करती है कि लिखत का उल्लेख अधिनियम की अनुसूची में किया जाना चाहिए। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि स्टाम्प अधिनियम, 1899 की अनुसूची । में मध्यस्थता करारों का विशेष रूप से "लिखतों" के रूप में उल्लेख नहीं किया गया है, जिन पर स्टाम्प लगाने की आवश्यकता है।हालांकि, अनुच्छेद में अवशिष्ट प्रविष्टि के तहत 5(ग) स्टाम्प अधिनियम, 1899 की अनुसूची । का शीर्षक "यदि अन्यथा नहीं" है। बशर्ते, "स्टाम्प शुल्क देय हो जाता है। यह अवशिष्ट प्रविष्टि स्टाम्प अधिनियम, 1899 की अनुसूची । के संशोधनों के साथ-साथ विभिन्न राज्य स्टाम्प अधिनियमों में निहित है।इसलिए मैं इस आधार पर आगे बढ़ूंगा कि एक मध्यस्थ करार स्टाम्प अधिनियम, 1899 के तहत निर्धारित "लिखत" की परिभाषा के भीतर आता है और स्टाम्प शुल्क के अधीन होगा।

ई. वकील की प्रस्तुतियाँः

15. हमने न्यायमित्र के रूप में इस न्यायालय की सहायता करने वाले विद्वान वरिष्ठ वकील श्री गौरव बनर्जी; अपीलार्थी के लिए विद्वान वकील श्री गगन सांघी; 2022 के आई. ए. 18516 में मध्यस्थ के लिए विद्वान वरिष्ठ वकील सुश्री मालविका त्रिवेदी; प्रत्यर्थी नं. 1 और श्री देबेश पांडा, 2022 के आई. ए. 199969 में मध्यस्थ के लिए विद्वान वकील। उन्होंने इस न्यायालय के साथ-साथ अन्य क्षेत्राधिकारों में न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों का हवाला दिया है।

16. विद्वान न्यायमित्र निम्नलिखित विशिष्ट प्रस्तुतियाँ करते हैंः

16.1.मध्यस्थता करार पर विधिवत स्टाम्प लगी है या नहीं, इसका निर्धारण मध्यस्थ पर छोड़ दिया जाना चाहिए।मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6ए) नियुक्ति प्राधिकारी के

दायरे को सीमित करती है। यह एक गैर–अस्थाई खंड के साथ शुरू होता है और विशेष रूप से एस. बी. पी. एंड कंपनी बनाम पटेल एंग में 7–न्यायाधीशों की पीठ को खारिज करने के लिए था। लिमिटेड 8.(के लिए लघु "एस. बी. पी".) और राष्ट्रीय बीमा कंपनी लिमिटेड. वी. बोघारा पॉलीफैब (पी) लिमिटेड 9 (संक्षेप में "बोघारा पॉलीफैब")। इसके अलावा, मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 16 का दायरा, जो अपने अधिकार क्षेत्र पर निर्णय लेने के लिए एक मध्यस्थ न्यायाधिकरण की क्षमता से संबंधित है, श्री गौरव बनर्जी के अनुसार, मध्यस्थ को लिखत पर स्टाम्प लगाने के संबंध में निर्धारण करने की अनुमति देने के लिए पर्याप्त व्यापक है।

---

[8] (2005) 8 एससीसी 618
[9] (2009) 1 एससीसी 267

16.2. भारतीय विधि आयोग की 246 वीं रिपोर्ट 10 (के लिए) "246 वीं एल. सी. आई. रिपोर्ट) ने सिफारिश की कि प्राधिकरण का दायरा मध्यस्थता करार के" अस्तित्व "और" वैधता "तक सीमित होना चाहिए। विधायिका ने एक कदम और आगे बढ़कर नियुक्ति का दायरा सीमित कर दिया। मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6ए) के तहत प्राधिकरण केवल "अस्तित्व" की जांच करने के लिए और मध्यस्थता करार की "वैधता" भी नहीं।इस तरह का दृष्टिकोण मध्यस्थता विवादों के त्वरित समाधान के उद्देश्य के अनुरूप है।मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6) के तहत एक न्यायालय मध्यस्थता को सुविधाजनक बनाने और सहायता करने के लिए एक नियुक्ति प्राधिकरण के रूप में है।

16.3 स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 में वैधानिक प्रतिबंध यह केवल तभी शुरू किया जाएगा जब यह पता चलता है कि दस्तावेज़ पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगी है। उसी के लिए, मुद्रांकन की जांच होनी चाहिए। केवल स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 33 (2) को "परीक्षण और लिखतों को परिबद्ध करने" शीर्षक से लागू करने पर, धारा 35 का पालन किया जाएगा। स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 33 (2) के तहत परीक्षा मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6ए) के तहत किसी न्यायालय द्वारा नहीं, बल्कि नियुक्त मध्यस्थ द्वारा किया जाना चाहिए।

16.4. यदि न्यायालय मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 के तहत पाता है, 1996 कि कोई करार नहीं है, तो यह एक अंतिम दृष्टिकोण ले सकता है। हालाँकि, यदि न्यायालय को लगता है कि एक गहन विचार की आवश्यकता है तो इसे मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 16 के तहत मध्यस्थ न्यायाधिकरण पर छोड़ दिया जा सकता है।विद्वान वरिष्ठ वकील श्री गौरव बनर्जी के अनुसार, धारा 11 (6ए) के साथ सामंजस्य स्थापित करने का यह उचित तरीका है। मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 16।

16.5.मुद्रांकन या अपर्याप्त रूप से मुद्रांकित लिखत की अनुपस्थिति सबसे अच्छा स्वीकार्यता का मुद्दा होगा लेकिन अधिकार क्षेत्र के बारे में नहीं।स्टाम्प एक्ट, 1899 एक राजकोषीय उपाय है जो कुछ वर्गों के लिखतों के लिए राज्य के लिए राजस्व सुरक्षित करने के लिए अधिनियमित किया गया है।इसलिए, प्रतिद्वंद्वी के मामले से निपटने के लिए एक वादी को तकनीकी हथियार से लैस करने के लिए यह अधिनियमित नहीं किया गया है।

16.6. विद्वान न्यायमित्र इंगित करते हैं कि एक न्यायालय अभ्यास कर रहा है मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6ए) के तहत शक्ति एक अधिकार नहीं है। मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 2 (1) (ई) में परिभाषित न्यायालय जो उसे 'साक्ष्य प्राप्त करने' का अधिकार है। कुछ अर्थों में, धारा 11 (6ए) के तहत, न्यायालय को केवल प्रथम दृष्टया राय बनानी है।

16.7.महत्वपूर्ण रूप से, पक्ष एक मूल मध्यस्थता करार को दायर करने के लिए बाध्य नहीं हैं और केवल प्रति संलग्न की जा सकती है जो हालांकि एक "लिखत" नहीं है जैसा कि धारा 2 (14) में प्रदान किया गया है। मुद्रांक अधिनियम, 1899।मुद्रांक अधिनियम की धारा 33 या 35 को पढ़ना, 1899 यह स्पष्ट रूप से सुझाव देगा कि ये प्रावधान लिखत की प्रतिलिपि से संबंधित नहीं हैं।वैधता हमेशा जांच के लिए खुली रहती है। रेफरल के बाद के चरण में।[जुपुडी केशव राव बनाम पुलवर्थी वेंकट सुब्बाराव और अन्य [11], हरिओम अग्रवाल बनाम प्रकाश चंद मालवीय [12]]

[10] भारतीय विधि आयोग, 'मध्यस्थता और सुलह अधिनियम 1996 में संशोधन' (246 वीं रिपोर्ट, अगस्त 2014) (https://cdnbbsr.s3waas.gov.in s3ca0daec69b5adc880fb464895726dbdf/ अपलोड/2022/08/ 2022081615. pdf) पर उपलब्ध है।

[11] (1971)1 एससीसी 545

[12] (2007) 8 एससीसी 514

17. इसके विपरीत दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए, अपीलार्थी के विद्वान वकील श्री गगन सांघी निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ करते हैं:

17.1.भारतीय डाक टिकट अधिनियम, 1899 की धारा 35 प्रवेश पर रोक लगाती है। "किसी भी उद्देश्य के लिए" साक्ष्य में अनुचित रूप से स्टाम्प लगाए गए "लिखत" का भी और "उस पर कार्रवाई करें "। आंध्र प्रदेश सरकार बनाम पी. लक्ष्मी देवी [13] में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 33 में "होगा" अनिवार्य और अप्रकाशित है। दस्तावेज़ को परिबद्ध किया जाना चाहिए।

17.2.यह मानते हुए भी कि स्टाम्प अधिनियम, 1899 के तहत एक मध्यस्थता करार पर स्टाम्प शुल्क देय नहीं है, जब मध्यस्थता करार एक ऐसे लिखत में एक खंड के रूप में निहित है जिस पर स्टाम्प शुल्क देय है, तो एक लिखत के रूप में ऐसा मध्यस्थता करार, डाक टिकट अधिनियम 1899 की धारा 35 को आकर्षित करता है।

17.3.विद्वान वकील का तर्क है कि मूल संविदा से करार को अलग करना धारा 16 द्वारा बनाई गई एक कानूनी कल्पना है। मध्यस्थता अधिनियम, 1996।मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 16 भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 का अपवाद नहीं हो सकती।[बंगाल प्रतिरक्षा कंपनी बनाम बिहार राज्य [14], भारत सरकार का पैरा 69,70 बनाम वेदांत [15]; अमेज़न वी फ्यूचर रिटेल [16]]

17.4.श्री सांघी के अनुसार, मध्यस्थता करार की प्रवर्तनीयता के मुद्दे पर पृथकता के सिद्धांत और कोम्पेटेंज़ कॉम्पेटेंज़ का कोई प्रभाव नहीं है, जब मध्यस्थता करार वाले लिखत पर उचित स्टाम्प शुल्क का भुगतान नहीं किया जाता है।विद्वान वकील ने एनका इंसाट बनाम ओ. ओ. ओ. बीमा कंपनी [17] में यू. के. उच्चतम न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया, जहां यह अभिनिर्धारित किया गया था कि एक "मध्यस्थता खंड" फिर भी यह संविदात्मक दस्तावेज़ में दर्ज अधिकारों और दायित्वों के समूह का हिस्सा है।

17.5. मुद्रांकन के मुद्दे को बहुत हद तक देखा जाना है, भले ही यह मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 (6ए) का प्रयोग कर रहा हो, 1996 , अर्थात् उस समय मध्यस्थ की नियुक्ति के संबंध में विचार किया जाता है।विद्वान वकील के अनुसार, एक लिखत विधि में केवल तभी मौजूद होगा जब वह प्रर्वतनीय हो। अतः जब न्यायालय मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6ए) के तहत विचार कर रहा है। मध्यस्थता करार का "अस्तित्व", यह उस स्तर पर ही गैर–मुद्रांकन या अपर्याप्त मुद्रांकन के मुद्दे की जांच कर सकता है।

17.6. यह रेखांकित करते हुए कि एन. एन. ग्लोबल (उपर्युक्त) में तीन तरीके प्रदान किए गए हैं अर्थात ज़ब्त करना, स्टाम्प शुल्क का भुगतान और फिर मध्यस्थ की नियुक्ति, यह तर्क दिया जाता है कि जब धारा 11 के आवेदन में एक मध्यस्थ की नियुक्ति की जाती है, तो न्यायालय निश्चित रूप से मध्यस्थता खंड पर "कार्य" कर रहा है, जिसे स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 के स्पष्ट शब्दों द्वारा वर्जित होने का तर्क दिया जाता है।एक करार , जब तक कि "प्रर्वतनीय" नहीं है, "अस्तित्व" में नहीं है।

[13] ***(2008) 4 एससीसी 720***
[14] ***(1955) 2 एससीआर 603***
[15] ***(2020) 10 एससीसी 1***
[16] ***(2022) 1 एससीसी 209***
[17] ***[2020] यूकेएससी 38***

18. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री मालविका त्रिवेदी ने अपीलार्थी की ओर से हस्तक्षेप करते हुए निम्नलिखित दलीलें दीं:

18.1.स्टाम्प अधिनियम, 1899 और पंजीकरण अधिनियम, 1908 की व्यवस्थाएँ पूरी तरह से अलग हैं।एन. एन. ग्लोबल (उपरोक्त) ने दस्तावेज़ पर स्टाम्प लगाने की आवश्यकता के लिए दस्तावेज़ के पंजीकरण के सिद्धांतों को गलत तरीके से लागू किया।जबकि पहला एक उपचार योग्य दोष है, दूसरा एक दस्तावेज़/लिखत के अस्तित्व और पूर्णता को निर्धारित करता है।पंजीकरण के अभाव में, एक लिखत अभी भी अस्तित्व में है लेकिन मुद्रांकन के बिना, लिखत अधूरा/अयोग्य है।

18.2.स्टाम्प एक्ट, 1899 में स्टाम्प शुल्क के भुगतान की परिकल्पना की गई है, जिसमें विफल रहने पर सुश्री त्रिवेदी के अनुसार किसी भी उद्देश्य के लिए लिखत पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है।विधि की भाषा में कोई अस्पष्टता नहीं है और सादा पढ़ने का विकल्प चुना जाना चाहिए।

18.3.विधि के विभिन्न प्रावधानों के तहत न्यायालय की शक्तियों के साथ –साथ स्टाम्प अधिनियम, 1899 में बनाए गए प्रतिबंध मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 9 के अनुसार संचालित कार्यवाही पर लागू होते हैं।इसलिए, यह तर्क दिया जाता है कि भले ही मध्यस्थता खंड अलग हो जाता है, न्यायालय को अंतरिम उपाय करने से पहले इस बात पर प्रथम दृष्टया निष्कर्ष पर पहुंचना होगा कि क्या मुख्य करार विधि में प्रर्वतनीय है।

19. प्रत्यर्थी नंबर 1 के विद्वान वकील, श्री रमाकांत रेड्डी ने हमें मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के अधिनियमन से पहले प्रासंगिक लोकसभा बहसों के बारे में बताया और निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ दीं:

19.1 मध्यस्थता अधिनियम, 1996; स्टाम्प अधिनियम, 1899 और संविदा अधिनियम, 1872 के प्रावधानों में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है।स्टाम्प अधिनियम की धारा 17, 1899 इसे स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 31 के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

19.2 मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 7 की सरल भाषा यह आवश्यक नहीं है कि पक्ष करार पर स्टाम्प लगाए।यदि न्यायालय डाक टिकट, स्टाम्प और मूल जैसी गैर–प्रमुख तकनीकी आवश्यकताओं पर जोर देता है, तो विधायी इरादे को विफल कर दिया जाएगा।

20. अपनी ओर से, मध्यस्थ के विद्वान वकील श्री देबेश पांडा निम्नलिखित प्रस्तुत करते हैं:

20.1 मध्यस्थता अधिनियम, 1996 का भाग । धारा 8,9 से संबंधित है। और 11 जबकि धारा 45 पर भाग ।। में चर्चा की गई है। धारा 45 को भाग ।। के तहत आने वाले एक प्रावधान के रूप में मान्यता दी गई है जो एक "पूर्ण" है। कोड "।[क्लोरो कंट्रोल्स बनाम सेवर्न ट्रेंट वाटर प्यूरीफिकेशन इंक 18 देखें] धारा 45 में "जब तक यह नहीं मिलता" अभिव्यक्ति की व्याख्या शिन–एटसु केमिकल कंपनी लिमिटेड बनाम अक्ष ऑप्टिफाइबर लिमिटेड 19 में प्रति बहुमत की गई थी। (संक्षेप में "शिन–एत्सु") केवल "प्रथम दृष्टया आधार" पर विचार के रूप में।2019 में संसद ने धारा 45 में संशोधन किया। इसने प्रतिस्थापित किया अभिव्यक्ति "जब तक यह नहीं मिलता है।" "जब तक कि यह प्रथम दृष्टया नहीं पाता" के साथ। यह. इस प्रकार क़ानून को शिन एत्सु (ऊपर) में स्थापित स्थिति के अनुरूप लाता है।इस पृष्ठभूमि में, स्टाम्प अधिनियम, 1899 केवल (जैसा भी मामला हो) शस्ति के साथ या उसके बिना, स्टाम्प शुल्क की वसूली होने तक एक अस्थायी प्रभाव पैदा करता है। पीड़ा केवल लिखत से जुड़ी होती है न कि लेन–देन से।

[18] (2013) 1 एससीसी 641

[19] (2005) 7 एससीसी 234

20.2 मध्यस्थता अधिनियम, 1966 को हमेशा एक पूर्ण संहिता की प्रकृति में एक संपूर्ण विधान माना गया है।[पैराग्राफ 83–84, 89 फ्यूर्स्ट डे लॉसन लिमिटेड बनाम जिंदल एक्सपोर्ट्स लिमिटेड 20] श्री पांडा के अनुसार, पूर्ण संहिता के तहत या तो भाग । के भीतर धारा 8,9 और 11 के तहत या भाग–।। के भीतर धारा 45 के तहत शक्ति का प्रयोग करने वाले एक मंच द्वारा मध्यस्थता करार वाले मूल लिखत को परिबद्ध करना मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के चरित्र के साथ असंगत है जो एक पूर्ण संहिता की प्रकृति में है।

21. विद्वान न्यायमित्र और अन्य वकीलों द्वारा संबंधित प्रक्षेपण को देखते हुए, निम्नलिखित प्रश्न हमारे विचार के लिए आते हैंः

i) क्या मूल संविदा/लिखत की गैर–मुद्रांकन मध्यस्थता करार को विधि में गैर – मौजूद, शून्य और अप्रवर्तनीय बना देगा। मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 के प्रयोजन के लिए – किसी मामले को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करना

(ii) क्या स्टाम्प लगाने और ज़ब्त करने की जाँच धारा 11 के न्यायाधीश द्वारा परिसीमा पर की जानी चाहिए या इसे मध्यस्थ पर छोड़ दिया जाना चाहिए?

एफ. स्टाम्प अधिनियम, 1899 का सांविधिक ढांचा।

22. आइए हम स्टाम्प अधिनियम, 1899 के अधिनियमन के पीछे के उद्देश्य की जांच करके शुरू करें। 67 [वें] विधि आयोग की रिपोर्ट [21] में सुझाव दिया गया है कि राज्य के लिए राजस्व एकत्र करने के उद्देश्य से एक वित्तीय अधिनियम का विचार पहले हॉलैंड में उत्पन्न हुआ और उसके बाद, 1797 का बंगाल विनियमन 6 भारत में अधिनियमित किया गया था।यह शुरुआत में बंगाल, बिहार, उड़ीसा और बनारस तक ही सीमित था।इसके बाद, बॉम्बे और मद्रास में विभिन्न डाक टिकट नियम लागू किए गए।स्टाम्प शुल्क का मुख्य उद्देश्य पुलिस प्रतिष्ठानों के रखरखाव के लिए कर को समाप्त करने के कारण सार्वजनिक राजस्व में कमी की भरपाई करना था, जो "भारतीय व्यापारियों और व्यापारियों" पर लगाया जाता था।हालाँकि, विनियमन ने स्टाम्प शुल्क से संबंधित बाद के अधिनियमों के लिए अंश प्रशस्त किया।1860 में, भारत में स्टाम्प शुल्क से संबंधित पहला

अधिनियम लागू किया गया था।इसे निरस्त कर दिया गया था 1862, 1869, 1879 के अधिनियम और बाद में, 1899 का अधिनियम था अधिनियमित जो वर्तमान विधान है।

23. मुद्रांक अधिनियम, 1899 के उद्देश्य को प्रतिबिंबित करते हुए, एक 3–न्यायाधीश हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड बनाम में इस न्यायालय की पीठ। दिलीप कंस्ट्रक्शन कं. 22 (संक्षेप में "हिंदुस्तान स्टील") ने जे. सी. शाह जे. के माध्यम से बोलते हुए निम्नलिखित प्रासंगिक अवलोकन कियाः

"7. डाक टिकट अधिनियम कुछ वर्गों के साधनों पर राज्य के लिए राजस्व सुरक्षित करने के लिए अधिनियमित एक व्यापक उपाय हैःयह अपने प्रतिद्वंद्वी के मामले का सामना करने के लिए एक वादी को तकनीकी हथियार से लैस करने के लिए अधिनियमित नहीं किया गया है।"

[20] (2011) 8 एस. सी. सी. 333

[21] भारतीय विधि आयोग, 'भारतीय स्टाम्प अधिनियम' (67वीं रिपोर्ट, फरवरी, 1997) यहां उपलब्ध हैः//भारत का विधि आयोग।ठीक है। इन/रिपोर्ट सेवेंथ/11 मार्च 2023 ए को एक्सेस किया गया

[22] (1969) 1 एस. सी. सी. 597

24. विद्वान न्यायमित्र श्री गौरव बनर्जी ने यूनियन इंश्योरेंस कंपनी में पाकिस्तान उच्चतम न्यायालय के फैसले का हवाला दिया पाकिस्तान लिमिटेड बनाम हाफ़िज़ मुहम्मद सिद्दीकी 23 जिसने इसे संबोधित किया हिन्दुस्तान स्टील (ऊपर) में अनुपात के बाद, 1978 की शुरुआत में जारी किया गया।इस सवाल का सामना करते हुए कि क्या कोई वैध मध्यस्थता कार्यवाही होगी, यदि मध्यस्थता करार पर अनुचित रूप से स्टाम्प लगी है और इसलिए, स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 के तहत साक्ष्य में अस्वीकार्य है; न्यायालय ने विशुद्ध रूप से वित्तीय उद्देश्य को स्टाम्पिंग के लिए जिम्मेदार ठहराया, यह मानते हुए कि स्टाम्पिंग का उद्देश्य वाणिज्यिक जीवन में हस्तक्षेप करना नहीं है।डाक टिकट अधिनियम, 1899 के प्रावधानों पर चर्चा करते हुए, जिसमें धारा 61 भी शामिल है, जो अपीलीय न्यायालयों को डाक टिकटों की "पर्याप्तता" पर निर्णयों को संशोधित करने का अधिकार देती है, न्यायमूर्ति दोराब पटेल ने निष्कर्ष निकाला किः

> "मुद्रांक अधिनियम को लागू करने में विधायिका का उद्देश्य सार्वजनिक राजस्व की रक्षा करना और व्यापार और वाणिज्य के सुचारू प्रवाह के लिए महत्वपूर्ण साधनों को अमान्य करके वाणिज्यिक जीवन में हस्तक्षेप करना नहीं था।"
>
> [जोर दिया गया]

25. इस प्रकार, उद्देश्य यह देखना है कि राज्य के लिए राजस्व अधिकतम परिसीमा तक प्राप्त किया जाए और दस्तावेज़ की वैधता को प्रभावित न किया जाए। इसके प्रावधानों को उस हद तक संकीर्ण रूप से समझा जाना चाहिए। उसी फैसले में, पाकिस्तान के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसे इस प्रकार विस्तृत किया गया थाः

"उदाहरण के लिए, एक लिखत को साक्ष्य के रूप में केवल तभी प्रस्तुत किया जाएगा जब इसके बारे में कोई विवाद हो, इसलिए, यदि विधानमंडल को उन सभी लिखतों को अमान्य कर देना था जिन पर ठीक से स्टाम्प नहीं लगी थी, उसने इस संबंध में स्पष्ट प्रावधान किया होगा और उन मामलों में अपने जनादेश को लागू करने के लिए कुछ तंत्र भी प्रदान किया होगा जिनमें पक्षों को धारा में निर्दिष्ट व्यक्तियों के समक्ष बिना स्टाम्प वाले लिखतों का उत्पादन करने का अवसर नहीं मिला था।"

26. आर. आई. ओ. ग्लास सोलर एस. ए. बनाम श्रीराम ई. पी. सी. लिमिटेड मामले में यह अदालत और ओआरएस। 25 यह अभिनिर्धारित करते हुए कि विदेशी पुरस्कारों पर स्टाम्प लगाने की आवश्यकता नहीं है, ध्यान दें कि डाक टिकट अधिनियम, 1899 भारतीय विधि की मौलिक नीति को दर्शाता है। न्यायमूर्ति नरीमन के माध्यम से बोलते हुए 2–न्यायाधीशों की पीठ ने कहाः

> "34. ... ... भारतीय विधि की मौलिक नीति, जैसा कि रेनुसागर पावर कंपनी लिमिटेड बनाम रेनुसागर पावर कंपनी लिमिटेड में माना गया है।जनरल इलेक्ट्रिक कं., 1994 सप्लीमेंट (1) एस. सी. सी. 644, और एसोसिएट बिल्डर्स बनाम दिल्ली विकास प्राधिकरण, (2015) 3 एस. सी. सी. 49 में इसका अनुसरण किया गया है, यह स्पष्ट करता है कि यदि देश की

[23] ***1978 पीएलडी एससी 279***

[24] जे. एम. ए राजू बनाम कृष्णमूर्ति भट्ट, ए. आई. आर. 1976 गुजरात 72; चिरंजी लाल (डॉ.) बनाम हरि दास (2005) 10 एस. सी. सी. 746; जगदीश नारायण बनाम मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकरण, ए. आई. आर. 1994 सभी 371

[25] (2018) 18 एस. सी. सी. 313

> अर्थव्यवस्था से संबंधित विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1973 जैसे क़ानून का संबंध है, तो यह निश्चित रूप से "भारतीय विधि की मौलिक नीति" अभिव्यक्ति के भीतर आएगा। भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899, लिखतों पर स्टाम्प शुल्क लगाने वाला एक राजकोषीय क़ानून होने के नाते, एक ऐसा अधिनियम भी है जो भारत की अर्थव्यवस्था से संबंधित है, और तर्क की समानता पर, भारतीय विधि की मौलिक नीति को दर्शाने वाला एक अधिनियम होगा।"
>
> [जोर दिया गया]

27. स्टाम्प अधिनियम के उद्देश्य को स्टाम्प अधिनियम, 1899 पर एस. कृष्णमूर्ति अय्यर की टिप्पणी 26 से और समझा जा सकता है, जिसमें हिंदुस्तान स्टील (उपरोक्त) और जे. एम. ए. राजू बनाम कृष्णमूर्ति भट्ट 27 में निर्णयों पर चर्चा की गई है, जिसका उद्देश्य नीचे दिया गया हैः

> "मुद्रांक अधिनियम का उद्देश्य विशुद्ध रूप से राजकोषीय विनियमन है।इसका एकमात्र उद्देश्य राजस्व को बढ़ाना है और इसके सभी प्रावधानों को राजस्व की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए माना जाना चाहिए।यह अपने प्रतिद्वंद्वी के मामले का सामना करने के लिए एक वादी को तकनीकी हथियार से लैस करने के लिए अधिनियमित नहीं किया गया है। पूरा उद्देश्य यह देखना है कि राज्य के राजस्व को अधिकतम परिसीमा तक प्राप्त किया जाए।

यह स्पष्ट है कि स्टाम्प अधिनियम, 1899 के पीछे विधायी इरादा और उद्देश्य राज्य के लिए राजस्व सुरक्षित करना है और यह भारतीय विधि की मौलिक नीति को दर्शाने वाला एक अधिनियम है।इस प्रकार, स्टाम्प अधिनियम, 1899 के प्रावधानों की व्याख्या करते समय नीतिगत विचारों और राजस्व की सुरक्षा को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

27.1.सूचना प्रौद्योगिकी आयुक्त बनाम चंदनबेन के मामले में[28]. यह अभिनिर्धारित किया गया कि कर विधि से संबंधित किसी भी प्रावधान की व्याख्या की जानी चाहिए ताकि इस तरह के प्रावधान का अर्थ विधि के पीछे विधायिका के इरादे के साथ सामंजस्यपूर्ण हो। आइए अब हम स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 और 36 पर विचार करें, जिससे हम सीधे तौर पर संबंधित हैं।इन्हें नीचे निकाला गया हैः

"35. जिन लिखतों पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगी है, वे साक्ष्य आदि में अस्वीकार्य हैं।—कर्तव्य के साथ प्रभार्य किसी भी लिखत को किसी भी उद्देश्य के लिए किसी भी व्यक्ति द्वारा साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जाएगा, जिसे विधि द्वारा या पक्षकारों की सहमति से साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार है, या उस पर कार्रवाई की जाएगी, ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा या किसी सार्वजनिक अधिकारी द्वारा पंजीकृत या प्रमाणित किया जाएगा, जब तक कि ऐसे लिखत पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई जाती हैः बशर्ते कि –

(क) ऐसा कोई भी लिखत, उस शुल्क के भुगतान पर साक्ष्य में स्वीकार किया जाएगा जिसके साथ वह प्रभार्य है, या, अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगे किसी लिखत के मामले में, ऐसे शुल्क की पूर्ति के लिए आवश्यक राशि का, पांच रुपये के शस्ति के साथ, या जब उचित शुल्क या उसके कम हिस्से की राशि का दस गुना पांच रुपये से अधिक हो, तो उस शुल्क या हिस्से के दस गुना के बराबर राशि का;

[26] एस. कृष्णमूर्ति अय्यर, द इंडियन स्टाम्प एक्ट, एन एक्सहॉस्टिव समरी विद स्टेट अमेंडमेंट्स; 7 वीं एडिशन, पी. 22

[27] ए. आई. आर. 1976 गुजरात 72

[28] (2000) 245 आईटीआर 182 ए

(ख) जहां कोई व्यक्ति जिससे स्टाम्प लगी रसीद की मांग की जा सकती थी, ने एक बिना स्टाम्प वाली रसीद दी है और ऐसी रसीद, यदि स्टाम्प लगी है, तो उसके खिलाफ साक्ष्य में स्वीकार्य होगी, तो ऐसी रसीद को साक्ष्य में स्वीकार किया जाएगा। उसके खिलाफ, इसे देने वाले व्यक्ति द्वारा एक रुपये के शस्ति के भुगतान पर;

(ग) जहां किसी भी प्रकार का संविदा या करार दो या दो से अधिक पत्रों वाले पत्राचार से प्रभावित होता है और किसी एक पत्र पर उचित स्टाम्प होती है, तो संविदा या करार पर विधिवत स्टाम्प लगी हुई मानी जाएगी।(घ) दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) के अध्याय 12 या अध्याय XXXVI के तहत कार्यवाही के अलावा, इसमें निहित कुछ भी आपराधिक न्यायालय में किसी भी कार्यवाही में साक्ष्य में किसी भी लिखत के प्रवेश को नहीं रोकेगा;

(ङ) इसमें निहित कुछ भी किसी भी न्यायालय में किसी भी लिखत के प्रवेश को नहीं रोकेगा जब ऐसा लिखत 66 [67 [सरकार] द्वारा या उसकी ओर से निष्पादित किया गया है या जहां यह धारा 32 या इस अधिनियम के किसी अन्य प्रावधान द्वारा प्रदान किए गए कलेक्टर का प्रमाण पत्र रखता है।

"36. लिखत का प्रवेश जहां पूछताछ नहीं की जानी चाहिए।—जहां किसी लिखत को साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया है, वहां धारा 61 में दिए गए प्रावधानों को छोड़कर, उसी वाद या कार्यवाही के किसी भी चरण में इस आधार पर प्रश्न नहीं किया जाएगा कि लिखत पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगी है।"

28. धारा 35 अधिकारियों को बिना स्टाम्प वाले दस्तावेजों पर विचार करने से प्रतिबंधित करती है, लेकिन 35 (ए), (बी), (डी) और (ई) और धारा 36 में प्रदान की गई धारा 35 के तहत वैधानिक प्रतिबंध के अपवाद स्पष्ट रूप से सुझाव देंगे कि स्टाम्प शुल्क का भुगतान न करना एक उपचार योग्य दोष है और यदि आवश्यक स्टाम्प शुल्क का भुगतान नहीं किया जाता है तो दस्तावेज़ को पहली वर्जन में शून्य नहीं माना जाएगा।इस प्रकार, कोई निरपेक्ष परिसीमा नहीं है। विधि में यह

भी अच्छी तरह से तय किया गया है कि किसी दस्तावेज़ पर स्टाम्प लगाने में विफलता दस्तावेज़ में सन्निहित लेनदेन की वैधता को प्रभावित नहीं करती है; यह केवल एक दस्तावेज़ को साक्ष्य में अस्वीकार्य बनाता है।

28.1.के. कृष्णमूर्ति 30 भारतीय डाक टिकट पर टिप्पणी में अधिनियम, 1899 में स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 के प्रावधान पर चर्चा की गई है इसके अंतर्गतः

"यह परंतुक न्यायालयों और मध्यस्थों को उचित शुल्क और शस्ति के भुगतान पर बिना स्टाम्प वाले या कम स्टाम्प वाले साक्ष्य दस्तावेजों को स्वीकार करने में सक्षम बनाता है।एक लिखत जिस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगी है, उसे शुल्क और शस्ति के भुगतान पर साक्ष्य में शामिल किया जाएगा। एक लिखत जिस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई गई है, उस पर साक्ष्य में प्रवेश किया जाएगा।

[29] गुलजारी लाल मालवारी बनाम राम गोपाल ए. आई. आर. 1937 ए. आई. आर. 765; मट्टेगुंटा धनलक्ष्मी बनाम कांतम राजू सारदांबा, ए. आई. आर. 1977 ए. पी. 328; पुरनचंद्र बनाम कालीपदा रॉय, ए. आई. आर. 1942 ए. आई. आर. 386; बूटतम पिचिया बनाम बोयापति कोटेश्वर राव ए. आई. आर. 1964 ए. पी. 519 भी देखें।

[30] के. कृष्णमूर्ति, द इंडियन स्टाम्प एक्ट, एन एक्सहॉस्टिव समरी विद स्टेट संशोधन; 12 वां संस्करण पी. 372–373 ए

उस शुल्क का भुगतान जिसके साथ वह प्रभार्य है या एक लिखत के मामले में अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगी है, शास्ति 31 के साथ इस तरह की भरपाई के लिए आवश्यक राशि का भुगतान। एक अधिनिर्णय जो स्टाम्पबंद कागज पर नहीं होता है या एक पर डूबा होता है अपर्याप्त मुद्रांकित कागज को शुल्क या घाटे के शुल्क के भुगतान द्वारा पूर्वव्यापी प्रभाव के साथ मान्य किया जा सकता है।जहां किसी अधिनिर्णय पर स्टाम्प नहीं लगी है, अधिनिर्णय में दोष को दस्तावेज़ को परिबद्ध करके ठीक किया जा सकता है और दोष को हटाने के बाद इसे अभिलेख में लाया जा सकता है और अदालत का नियम बनाया जा सकता है[33]"

[जोर दिया गया]

29. इसी तरह, स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 42 (2) जो संबंधित है। गैर–मुद्रांकन के परिणामस्वरूप निम्नलिखित प्रावधान हैंः

> "42. उन लिखतों का पृष्ठांकन जिसमें धारा 35,40 या 41 के तहत शुल्क का भुगतान किया गया है।—
>
> (1) जब किसी लिखत के संबंध में देय शुल्क और शास्ति (यदि कोई हो) का भुगतान धारा 35, धारा 40 या धारा 41 के तहत किया गया हो, तो साक्ष्य में ऐसे लिखत को स्वीकार करने वाला व्यक्ति या कलेक्टर, जैसा भी मामला हो, उस पर पृष्ठांकन करके प्रमाणित करेगा कि उचित शुल्क या, जैसा भी मामला हो, उचित शुल्क और शास्ति (प्रत्येक की राशि बताते हुए) उसके संबंध में लगाया गया है, और उन्हें भुगतान करने वाले व्यक्ति का नाम और निवास।
>
> (2) इस प्रकार पृष्ठांकित प्रत्येक लिखत साक्ष्य में स्वीकार्य होगी और इसे पंजीकृत किया जा सकता है और उस पर कार्रवाई की जा सकती है। और प्रमाणित किया गया जैसे कि इस पर विधिवत स्टाम्प लगाई गई हो, और इस निमित्त उसके आवेदन पर उस व्यक्ति को सुपुर्द किया जाए जिसके कब्जे से वह इसे परिबद्ध करने वाले अधिकारी के हाथों में आया था, या जैसा कि ऐसा व्यक्ति निर्देश दे सकता हैः
>
> बशर्ते कि –
>
> (क) कोई भी लिखत जिसे शुल्क के भुगतान पर साक्ष्य में स्वीकार किया गया है और धारा 35 के तहत शास्ति लगाया गया है, उस तारीख से एक महीने की समाप्ति से पहले इस तरह से वितरित नहीं किया जाएगा।

---

[31] ओमप्रकाश बनाम लक्ष्मीनारायण 2014 (1) एस. सी. सी. 618
[32] पट्टूलाल शर्मा बनाम राजाधिराज उमराव सिंह ए. आई. आर. 1955 एन. यू. सी. 2621
[33] विल्सन एंड कंपनी। प्राइवेट लिमिटेड वी. के. एस. लोकविनायकम एयर 1992 मैड 100

(ख) इस धारा की कोई बात सिविल प्रक्रिया संहिता, 1882 (1882 का 14), धारा 144 खंड 3 को प्रभावित नहीं करेगी।"

[जोर दिया गया]

30. डाक टिकट की धारा 36,35 और 42 का वाक्यांश हिन्दुस्तान स्टील (ऊपर) में अधिनियम, 1899 पर विचार किया गया था। तथ्यात्मक इसकी पृष्ठभूमि यह थी कि हिंदुस्तान स्टील ने इसके तहत एक आवेदन किया था भारतीय मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की धारा 30 और 33 अधिनिर्णय को इस आधार पर अलग कर दिया कि यह बिना स्टाम्प वाला था और इस तरह, शुरुआत से ही अमान्य था।हालाँकि, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार स्टाम्प शुल्क और शस्ति के भुगतान के बाद, जिस लिखत पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई गई है, उस पर "कार्रवाई" किए जाने के खिलाफ कोई रोक नहीं है। यह विशेष रूप से निम्नलिखित रूप में देखा गया थाः

"6. धारा 35 और 36 के बीच वाक्यांश विज्ञान में अंतर पर भरोसा करते हुए यह आग्रह किया गया था कि एक लिखत जिस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई गई है, उसे शुल्क और दंड के भुगतान पर साक्ष्य में स्वीकार किया जा सकता है, लेकिन उस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है क्योंकि धारा 35 लिखत पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाए जाने के साथ–साथ उस पर कार्रवाई किए जाने के साक्ष्य में प्रवेश के लिए एक बाधा के रूप में काम करती है, और विधानमंडल ने धारा 36 द्वारा उसमें निर्धारित शर्तों में केवल साक्ष्य में प्रवेश के खिलाफ प्रतिबंध को हटा दिया है। यंत्र। (त्रुटिपूर्ण टंकित है) *यह तर्क धारा 36 के वास्तविक महत्व की अनदेखी करता है।*

–

उस धारा द्वारा एक वर्जन साक्ष्य में स्वीकार किए गए लिखत पर उसी वाद या कार्यवाही के किसी भी चरण में इस आधार पर प्रश्न नहीं उठाया जाएगा कि उस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई गई है।धारा 36 किसी लिखत के खिलाफ चुनौती को प्रतिबंधित नहीं करती है कि उस पर कार्रवाई नहीं की जाएगी क्योंकि उस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई गई है, लेकिन उस कारण से किसी ऐसे लिखत के खिलाफ कोई रोक नहीं है जिस पर अधिनियम द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार स्टाम्प शुल्क और शस्ति के भुगतान के बाद विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई गई है। इस संदेह को, यदि कोई हो, धारा 42 (2) की शर्तों द्वारा दूर किया जाता है, जो अधिनियम में, स्पष्ट रूप से, धारा 42 (1) के तहत कलेक्टर द्वारा पृष्ठांकित प्रत्येक लिखत को लागू करता है। **साक्ष्य में स्वीकार्य होगा और उस पर इस तरह से कार्रवाई की जा सकती है जैसे कि** इस पर विधिवत स्टाम्प लगा दी गई है।"

(जोर दिया गया)

31. उपरोक्त से संकेत मिलता है कि जिस लिखत पर "कार्रवाई" की जा रही है, उसके खिलाफ कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है क्योंकि बाद के चरण में दोष ठीक हो सकता है।

31.1.यह तर्क देते हुए कि उपरोक्त पाठ्यक्रम उपलब्ध नहीं है, मध्यस्थ की वरिष्ठ वकील सुश्री मालविका त्रिवेदी ने तर्क दिया था कि धारा 35 एक सांविधिक प्रतिबंध का प्रावधान करती है, जहां करार को किसी भी उद्देश्य के लिए साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जाएगा और न ही इस पर किसी

ऐसे व्यक्ति या किसी सार्वजनिक अधिकारी द्वारा कार्रवाई, पंजीकरण या प्रमाणीकरण किया जाएगा। इसलिए, यह प्रस्तुत किया जाता है कि जब कोई न्यायालय मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 के तहत मध्यस्थ की नियुक्ति करता है, तो यह निश्चित रूप से मध्यस्थता खंड पर "कार्य" कर रहा है, जो स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 की स्पष्ट भाषा द्वारा वर्जित है। आइए अब हम उपरोक्त तर्क का परीक्षण करने के लिए आगे बढ़ते हैं।

31.2 हमीद जोहारन बनाम अब्दुल सलाम 34 के संदर्भ में विभाजन के लिए अप्रकाशित डिक्री, इस न्यायालय के 2 न्यायाधीशों के पास अवसर था मुद्रांक अधिनियम, 1899 की धारा 35 और इसके साथ परस्पर क्रिया की व्याख्या करना। परिसीमा अधिनियम, 1963 का अनुच्छेद 136। उस मामले में यह तर्क दिया गया था कि जिस लिखत पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगाई गई है, उस पर "कार्रवाई" नहीं की जा सकती है। उसमें मुद्दा यह था कि क्या विभाजन के मुकदमे में पारित डिक्री पर कार्रवाई/प्रवर्तन किया जा सकता है, बिना स्टाम्प पेपर पर लगाए। यह भी तर्क दिया गया कि परिसीमा की अवधि उस तारीख से शुरू होती है जब डिक्री प्रर्वतनीय हो जाती है यानी जब डिक्री को स्टाम्प पेपर पर रखा जाता है। इस संदर्भ में, न्यायालय ने राय दी किः

> "38. ... .निःसंदेह, धारा 2 (15) में विभाजन की डिक्री शामिल है और 1899 के अधिनियम की धारा 35 में सबूत में बिना स्टाम्प वाले या अपर्याप्त डाक टिकट को स्वीकार करने के मामले में एक वर्जन रखा गया है या कार्रवाई की जा रही है–लेकिन क्या इसका मतलब यह है कि निर्धारित अवधि तब तक निलंबित रहेगी जब तक कि स्टाम्प पेपर प्रस्तुत नहीं किया जाता है और उस पर विभाजन डिक्री तैयार नहीं की जाती है और बाद में न्यायाधीश द्वारा हस्ताक्षरित नहीं किया जाता है? लेकिन नतीजा यह होगा कि एक पूरी तरह से मूर्खतापूर्ण होना। अधिनियम के अनुसार, यदि कोई व्यक्ति उसमें निर्दिष्ट समय के भीतर और विभाजन डिक्री तैयार करने के लिए दीवानी अदालत द्वारा आवश्यक स्टाम्प पेपर प्रस्तुत नहीं करना चाहता है या यदि कोई स्टाम्प पेपर प्रस्तुत नहीं करता है, तो क्या वह ऐसा करता है? मतलब और तात्पर्य, किसी भी परिसीमा की अवधि को निष्पादन के लिए आकर्षित नहीं कहा जा सकता है या परिसीमा की असीमित अवधि उपलब्ध है। द. परिसीमा अधिनियम को लागू करने में विधायिका के इरादे को उचित महत्व दिया जाना चाहिए।मूर्खता नहीं हो सकती अदालती आदेश द्वारा व्याख्या का परिणाम और जहां भी इस तरह की बेतुकी बात की संभावना है, यह उसे प्रोत्साहित करने के बजाय उसे पीछे हटाने के लिए न्यायिक शक्ति का एक स्पष्ट प्रयोग होगा। द. भारतीय स्टाम्प अधिनियम का पूरा उद्देश्य कुछ देय राशि उपलब्ध कराना और राजस्व एकत्र करना है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है और इसका मतलब यह नहीं है कि यह पूरी तरह से अलग क्षेत्र में काम करने वाले किसी अन्य क़ानून पर प्रभाव डालता है।"
>
> [जोर दिया गया]

31.3 इस प्रकार, यह अभिनिर्धारित किया गया कि स्टाम्प अधिनियम, 1899 पूरी तरह से अलग क्षेत्र में कार्यरत परिसीमा अधिनियम, 1963 जैसे किसी अन्य क़ानून के प्रभाव को ओवरराइड नहीं कर सकता है।इसके अलावा, "निष्पादन क्षमता" और "प्रवर्तनीयता" अभिव्यक्ति को इस अर्थ में अलग किया गया था कि "प्रवर्तनीयता" स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 का विषय नहीं हो सकती है। यह था। निर्णायक रूप से अभिनिर्धारित किया गया कि प्रवर्तन को तब तक निलंबित नहीं किया जा सकता जब तक कि स्टाम्प पेपर की सजावट।अधिक से अधिक, एक दस्तावेज़ को गैर–निष्पादन योग्य प्रस्तुत किया जा सकता है।

31.4. इसके बाद, इस न्यायालय की 3–न्यायाधीशों की पीठ ने स्टाम्प पेपर पर डिक्री को अंकित किए जाने की तारीख से परिसीमा की अवधि शुरू होने के प्रश्न पर हमीद जोहारन (ऊपर) में उपरोक्त

निर्णय पर चर्चा करने के बाद, चिरंजी लाल (डॉ.) बनाम हरि दास 35 मामले में, विशेष रूप से निम्नानुसार अभिनिर्धारित कियाः'

[34] (2001) 7 एससीसी 573
[35] 2005) 10 एससीसी 746

> "23. भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 के उद्देश्य और योजना को ध्यान में रखते हुए ऐसी व्याख्या की अनुमति नहीं है। द. स्टाम्प एक्ट एक राजकोषीय उपाय है जिसे कुछ वर्गों के लिखतों पर राज्य के लिए राजस्व सुरक्षित करने के उद्देश्य से लागू किया गया है। यह नहीं है। एक वादी को तकनीकी हथियार से लैस करने के लिए अधिनियमित किया गया अपने प्रतिद्वंद्वी के मामले का सामना करें।अधिनियम के कड़े प्रावधानों की कल्पना राजस्व के हित में की गई है।एक वर्जन जब वह वस्तु विधि के अनुसार सुरक्षित हो जाती है, तो लिखत पर अपना दावा करने वाले पक्ष को लिखत में प्रारंभिक दोष के आधार पर पराजित नहीं किया जाएगा (हिंदुस्तान स्टील लिमिटेड बनाम दिलीप कंस्ट्रक्शन कं. [(1969) 1 एससीसी 597])।"
>
> [जोर दिया गया]

31.5.यह विशेष रूप से अभिनिर्धारित किया गया था कि "विभाजन डिक्री के निष्पादन के लिए परिसीमा की अवधि की शुरुआत को स्टाम्प पेपर पर डिक्री के शामिल होने पर आकस्मिक नहीं बनाया जा सकता है।"

31.6. इस प्रकार, बिना स्टाम्प वाला/अपर्याप्त स्टाम्प वाला दस्तावेज़ किसी दस्तावेज़ की प्रवर्तनीयता को प्रभावित नहीं करता है और न ही यह किसी दस्तावेज़ को अमान्य बनाता है। 36 प्रावधानों के एक सादे अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाएगा कि एक दस्तावेज़ पर बाद के चरण में "कार्रवाई" की जा सकती है।इसलिए यह एक ठीक होने योग्य दोष है।

32.अपीलार्थी के विद्वान वकील, श्री गगन सांघी ने तर्क दिया कि धारा 35 और 33 अनिवार्य प्रावधान हैं क्योंकि इसमें "होगा" शब्द का उपयोग किया गया है और एक बिना स्टाम्प वाले दस्तावेज़ को परिबद्ध किया जाना चाहिए। सीमा। न्यायमूर्ति जी. पी. द्वारा वैधानिक व्याख्या के सिद्धांतों में सिंह 37 ने "होगा" शब्द के उपयोग और इस शब्द के अनिवार्य होने की धारणा पर कहा हैः

> " ... .प्रावधान के अनिवार्य होने के बारे में इस प्रथम दृष्टया निष्कर्ष का इस तरह के निर्माण से आने वाले अन्य विचारों से खंडन किया जा सकता है।ऐसे कई मामले हैं जहां "होगा" शब्द को केवल निर्देशिका के रूप में माना गया है।हिदायतुल्ला, जे. का मानना है कि 'विल' शब्द आम तौर पर अनिवार्य है, लेकिन कभी-कभी इसकी व्याख्या नहीं की जाती है यदि संदर्भ या इरादा अन्यथा मांग करता है और सुब्बाराव जे. को इंगित करता है। 'होगा' शब्द, प्रथम दृष्टया यह अनिवार्य है, लेकिन न्यायालय क़ानून के पूरे दायरे को ध्यान से ध्यान में रखते हुए विधायिका के वास्तविक इरादे का पता लगा सकता है।"
>
> [जोर दिया गया]

32.1 पी. बी. मैक्सवेल ने क़ानून 38 की व्याख्या पर टिप्पणी में कहा है कि एक अधिनियम पर पूरी तरह से विचार किया जाना चाहिए और व्याख्या के निम्नलिखित तीन तरीकों पर चर्चा की जानी चाहिएः

[36] गुलजारी लाल मालवारी बनाम राम गोपाल ए. आई. आर. 1937 ए. आई. आर. 765; मट्टेगुंटा धनलक्ष्मी बनाम कांतम राजू सारदांबा, ए. आई. आर. 1977 ए. पी. 328; पुरनचंद्र बनाम कालीपदा

रॉय, ए. आई. आर. 1942 ए. आई. आर. 386; बूटतम पिचिया बनाम बोयापति कोटेश्वर राव ए. आई. आर. 1964 ए. पी. 519 भी देखें।

[37] न्यायमूर्ति जी. पी. सिंहःपी. 450 पर सांविधिक व्याख्या के सिद्धांत (लेक्सिसनेक्सिस, 2016) – 451; बुर्जोर और भवानी प्रसाद बनाम भगाना आई. एल. आर. 10 कैल 557; सैनिक मोटर्स बनाम राजस्थान राज्य 1962 (1) एस. सी. आर. 517; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम बाबू राम ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 751

[38] पी. एस. टी. जे. लंगन, मैक्सवेल ने क़ानूनों की व्याख्या पर (एन. एम. त्रिपाठी प्राइवेट लिमिटेड, एच.1976); पी. 58–64

"क़ानून के बाहरी पहलुओं से इसकी सामग्री तक जाते हुए, यह एक प्राथमिक नियम है कि निर्माण सभी भागों को एक साथ किया जाना है, न कि केवल एक भाग का।

i) अलग–अलग शब्दों को अलग–अलग नहीं माना जाता है, लेकिन उनका अर्थ उस खंड में अन्य शब्दों द्वारा निर्धारित किया जा सकता है जिसमें वे होते हैं।

(ii) किसी धारा का अर्थ उसी अधिनियम की अन्य अलग–अलग धाराओं द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है।

iii) अंत में, किसी धारा का अर्थ निर्धारित किया जा सकता है, न कि क़ानून के अन्य व्यक्तिगत प्रावधानों के संदर्भ में, जैसा कि सामान्य रूप से माने जाने वाले अधिनियम की योजना द्वारा किया जाता है।

[जोर दिया गया]

32.2 न्यायमूर्ति जी. पी. सिंह ने क़ानूनों की व्याख्या में आगे [39] नोट कियाः

"यह सिद्धांत कि क़ानून को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए, समान रूप से है। एक ही खंड के विभिन्न भागों पर लागू। अनुभाग इसका समग्र रूप से यह अर्थ लगाया जाना चाहिए कि भागों में से एक बचत खंड है या परंतुक। न्यायमूर्ति सुब्बाराव ने इसे "एक प्राथमिक नियम कहा है कि एक खंड का निर्माण सभी भागों को एक साथ किया जाना है"

[जोर दिया गया]

32.3Ib इस प्रकार, धारा 35,36 और धारा 35 और 42 के परंतुक के समेकित पठन पर; इन सभी धाराओं में या यहां तक कि एक ही धारा में "कार्रवाई" शब्द का उपयोग, जिसे स्टाम्प अधिनियम 1899 के उद्देश्य और विधायी इरादे के साथ पढ़ा जाता है, यह स्पष्ट है कि धारा 35 के तहत प्रतिबंध पूर्ण होने का इरादा नहीं है; स्टाम्प शुल्क का भुगतान न करना एक उपचार योग्य दोष है क्योंकि इसका उद्देश्य राजस्व की रक्षा करना है। इसके अलावा, स्टाम्प अधिनियम, 1899 के किसी भी प्रावधान का कोई प्रभाव नहीं है। दस्तावेज़ शुरू से ही अमान्य या शून्य है।

G. मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की सांविधिक योजना।

33. इसके पीछे संसदीय इरादे का उल्लेख करना उचित है मध्यस्थता अधिनियम, 1996 का अधिनियमन जिसने मध्यस्थता को प्रतिस्थापित किया अधिनियम, 1940। इस विषय पर पहला विधि मध्यस्थता अधिनियम, 1899 था जिसका कलकत्ता, बॉम्बे और मद्रास के प्रेसीडेंसी शहरों में सीमित अनुप्रयोग था। इसके बाद, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के प्रावधानों की दूसरी अनुसूची मध्यस्थता से संबंधित थी। प्रमुख समेकित विधि मध्यस्थता अधिनियम, 1940 था जो आधारित था।

[39] न्यायमूर्ति जी. पी. सिंहःपी. 46 पर वैधानिक व्याख्या के सिद्धांत (लेक्सिसनेक्सिस, 2016);

(अंग्रेजी) मध्यस्थता अधिनियम, 1940 पर विधि आयोग ने अपने 246 एल. सी. आई. की रिपोर्ट (ऊपर) में कहा गया है कि यह मध्यस्थता व्यवस्था मध्यस्थता प्रक्रिया के अविश्वास पर आधारित थी और "1996 का अधिनियम अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता पर यू. एन. सी. आई. टी. आर. ए. एल. मॉडल विधि, 1985 और यू. एन. सी. आई. टी. आर. ए. एल. सुलह नियम, 1980 पर आधारित है।" उद्देश्य और कारणों के कथन का प्रासंगिक भाग नीचे निकाला गया हैः

> (i) अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता और सुलह के साथ–साथ घरेलू मध्यस्थता और सुलह को भी व्यापक रूप से शामिल करना;
>
> (ii) एक ऐसी मध्यस्थता प्रक्रिया का प्रावधान करना जो निष्पक्ष, कुशल और विशिष्ट मध्यस्थता की जरूरतों को पूरा करने में सक्षम हो;
>
> (iii) यह प्रावधान करना कि मध्यस्थता न्यायाधिकरण अपने मध्यस्थता निर्णय के लिए कारण देता है;
>
> (iv) यह सुनिश्चित करना कि मध्यस्थता न्यायाधिकरण अपने अधिकार क्षेत्र की सीमाओं के भीतर रहे।
>
> (v) मध्यस्थता प्रक्रिया में न्यायालयों की पर्यवेक्षी भूमिका को कम करना;
>
> (vi) विवादों के निपटारे को प्रोत्साहित करने के लिए मध्यस्थता कार्यवाही के दौरान मध्यस्थता, सुलह या अन्य प्रक्रियाओं का उपयोग करने के लिए एक मध्यस्थ न्यायाधिकरण को अनुमति देना;
>
> (vii) यह प्रावधान करना कि प्रत्येक अंतिम मध्यस्थता अधिनिर्णय को उसी तरीके से लागू किया जाता है जैसे कि यह अदालत की डिक्री हो;
>
> (viii) यह उपबंध करना कि सुलह कार्यवाही के परिणामस्वरूप पक्षों द्वारा किए गए निपटान करार की स्थिति और प्रभाव मध्यस्थता न्यायाधिकरण द्वारा प्रस्तुत विवाद के सार पर सहमत शर्तों पर मध्यस्थता अधिनिर्णय के समान होगा; और
>
> (ix) यह उपबंध करने के लिए कि विदेशी पुरस्कारों को लागू करने के प्रयोजनों के लिए, किसी ऐसे देश में किए गए प्रत्येक मध्यस्थता अधिनिर्णय, जिसके लिए विदेशी मध्यस्थता पुरस्कारों से संबंधित दो अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में से एक, जिसके लिए भारत एक पक्ष है, लागू होता है, को विदेशी अधिनिर्णय के रूप में माना जाएगा।"

[जोर दिया गया]

34. इसके अलावा, आदर्श विधि के अनुच्छेद 5 और मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 5 को पढ़ने पर, जिसमें न्यायिक ए के प्रावधान शामिल हैं।मध्यस्थता कार्यवाही में हस्तक्षेप, यह स्पष्ट है कि संसद ने UNCITRAL मॉडल विधि के अनुच्छेद 5 से परे जाकर एक गैर–अबाधित खंड जोड़ा।इस बात की पुष्टि करने के लिए, प्रावधानों को पूरी तरह से उद्धृत करना उचित है।

UNCITRAL मॉडल विधि, 1985 का अनुच्छेद 5 निम्नानुसार हैः

"अनुच्छेद 5.अदालती हस्तक्षेप का विस्तार–इस विधि द्वारा शासित मामलों में, कोई भी अदालत हस्तक्षेप नहीं करेगी सिवाय इसके कि इस विधि में ऐसा प्रावधान किया गया है।

मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 5 निम्नानुसार हैः

"5. न्यायिक हस्तक्षेप का विस्तार।— किसी भी बात के बावजूद तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में निहित, इस भाग द्वारा शासित मामलों में, कोई न्यायिक प्राधिकरण नहीं होगा इस भाग में जहां इस प्रकार का उपबंध किया गया है, उसके अलावा हस्तक्षेप करें।"

[जोर दिया गया]

35. इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 5 के उद्देश्य पर विचार करते हुए, डॉ. पीटर अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता पर UNCITRAL मॉडल विधि, 1985 में 40 टिप्पणियाँः

"1–107 :आयोग की रिपोर्ट के अनुसार, अनुच्छेद 5 का उद्देश्य "अदालत के हस्तक्षेप के सभी उदाहरणों को अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता पर (मॉडल) विधि में सूचीबद्ध करने के लिए प्रारूपकों को मजबूर करके, अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता में सहायता सहित न्यायिक हस्तक्षेप की अधिकतम परिसीमा के बारे में निश्चितता प्राप्त करना था। विश्लेषणात्मक टिप्पणी अनुच्छेद 5 के प्रभाव को "घरेलू प्रणाली में अदालतों को दी गई किसी भी सामान्य या अवशिष्ट शक्तियों को बाहर करने के रूप में वर्णित करती है जो मॉडल विधि में सूचीबद्ध नहीं हैं" विधि की स्पष्टता प्रदान करने के बड़े लाभ के अलावा, जो विदेशी पक्षों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है (उन्हें अवांछित कानूनी आश्चर्य से बचाने के लिए, अनुच्छेद 5 भी कार्य करता है जानबूझकर और विलंबकारी अदालती कार्यवाही के कारण होने वाली देरी की कम संभावना की अनुमति देने में मध्यस्थता प्रक्रिया में तेजी लाना।"

[जोर दिया गया]

36. अधिनियम की धारा 5 के तहत मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के उद्देश्य और कारणों के विवरण और आदर्श विधि के अनुच्छेद 5 के सामूहिक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाएगा कि अधिनियम के पीछे विधायी उद्देश्य अन्य बातों के साथ–साथ न्यायालयों के हस्तक्षेप को कम करना और विवादों के समय पर समाधान का प्रावधान करना था। एक अबाधित खंड जोड़कर, संसद ने धारा 5 के माध्यम से अनुच्छेद 5 से एक महत्वपूर्ण विचलन किया और उस समय लागू किसी भी अन्य विधि के प्रावधानों पर एक प्रबल प्रभाव डाला। इसने न्यायिक प्राधिकरण की भूमिका को सीमित कर दिया, विशेष रूप से न्यायालयों के संदर्भ में जो किसी भी अवशिष्ट शक्ति का प्रयोग करते हैं जो उन्हें किसी भी विधि में किसी भी प्रावधान के माध्यम से प्राप्त हो सकती है।

37. आइए अब हम मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की असंशोधित धारा 11 (6) का उल्लेख करें जो UNCITRAL मॉडल विधि के अनुच्छेद 11 पर आधारित हैः

"11 मध्यस्थों की नियुक्ति।—

(6) जहां, पार्टियों द्वारा सहमत नियुक्ति प्रक्रिया के तहत, –

(क) एक पक्ष उस प्रक्रिया के तहत आवश्यकतानुसार कार्य करने में विफल रहता है; या

(ख) पक्ष, या दो नियुक्त मध्यस्थ, उस प्रक्रिया के तहत उनसे अपेक्षित करार पर पहुंचने में विफल रहते हैं; या

[40] पी. बाइंडर, UNCITRAL में अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता और सुलह मॉडल लॉ ज्यूरिसडिक्शन 274 (दूसरा संस्करण, स्वीट एंड मैक्सवेल लंदन 2005) पी. 50–51

(ग) एक व्यक्ति, एक संस्था सहित, उस प्रक्रिया के तहत उसे सौंपे गए किसी भी कार्य को करने में विफल रहता है, एक पक्ष मुख्य न्यायाधीश या उसके द्वारा नामित किसी भी व्यक्ति या संस्थान से आवश्यक उपाय करने का अनुरोध कर सकता है, जब तक कि नियुक्ति प्रक्रिया पर करार नियुक्ति को सुरक्षित करने के लिए अन्य लिखत प्रदान नहीं करता है।"

38. भले ही मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के प्रमुख प्रावधान मुख्य रूप से UNCITRAL मॉडल विधि पर आधारित हैं, लेकिन विधायिका ने धारा 11 और धारा में संशोधन करते हुए महत्वपूर्ण परिवर्तन भी किए हैं। 8 मध्यस्थता अधिनियम, 1996।

39. इसके बाद, न्यायशास्त्र का संक्षिप्त रूप से पता लगाना उचित होगा इस उद्देश्य के लिए मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6) का इतिहास इस संदर्भ में।

i) मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6) के तहत विधि का विकास।

40. आई. सी. आई. सी. आई. लिमिटेड बनाम आई. सी. आई. सी. आई. में इस न्यायालय की 2–न्यायाधीशों की पीठ। ईस्ट कोस्ट बोट बिल्डर्स एंड इंजीनियर्स लिमिटेड 41 ने धारा 11 (6) के तहत मध्यस्थों की नियुक्ति में देरी को ध्यान में रखते हुए, विवाद की मध्यस्थता पर विचार करने के लिए धारा 11 के न्यायाधीश के अधिकार क्षेत्र के सवाल को तीन–न्यायाधीशों की पीठ को भेजा। यह ध्यान दिया गया कि के. आर. रवींद्रनाथन बनाम केरल राज्य 42 में, इस न्यायालय की दो अन्य न्यायाधीशों की पीठ ने पहले ही एक बड़ी पीठ को संदर्भित किया था, एक समान प्रश्न।

41. इसके बाद, सुंदरम फाइनेंस लिमिटेड बनाम.एन. ई. पी. सी. इंडिया लिमिटेड [43], 2–न्यायाधीशों की पीठ ने राय दी किः

"12. ... 1996 के अधिनियम के तहत, मध्यस्थ (ओं) की नियुक्ति धारा 11 के प्रावधानों के अनुसार की जाती है, जिसके लिए न्यायालय को मध्यस्थ (ओं) की नियुक्ति के लिए न्यायिक आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं होती है।"

42. एडोर में 2–न्यायाधीशों की पीठ ने उपरोक्त आदेश की पुष्टि की थी। सामिया प्राइवेट लिमिटेड बनामपीके होल्डिंग्स लिमिटेड 44 (संक्षेप में "एडोर सामिया")। भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपील के सवाल पर विचार करते हुए, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा एक मध्यस्थ की नियुक्ति के आदेश से, इस न्यायालय ने माना कि धारा 11 के तहत एक आदेश मध्यस्थता अधिनियम, 1996 का एक प्रशासनिक आदेश था। यह था। कोंकण रेलवे कार्पोरेशन बनाम मेहूल कंस्ट्रक्शन कंपनी 45 (संक्षेप में "कोंकण रेलवे (आई)") में तीन–

न्यायाधीशों की पीठ द्वारा पुष्टि की गई, जहां मामला अदोर सामिया (ऊपर) में अनुपात पर पुनर्विचार के लिए आया था। यह निम्नानुसार देखा गयाः

> "4. ... जब मामले को अधिनियम की धारा 11 के तहत मुख्य न्यायाधीश या उनके नामित व्यक्ति के समक्ष रखा जाता है, तो उक्त मुख्य न्यायाधीश या उनके नामित व्यक्ति के लिए इस विधायी इरादे को ध्यान में रखना अनिवार्य है कि मध्यस्थता प्रक्रिया को बिना किसी देरी के शुरू किया जाना चाहिए और सभी विवादास्पद मुद्दों को मध्यस्थता न्यायाधिकरण के समक्ष उठाया जाना बाकी है।उस स्तर पर मुख्य न्यायाधीश या उनके मनोनीत व्यक्ति के लिए पक्षकारों के बीच किसी भी विवादास्पद मुद्दे पर विचार करना और उसी पर निर्णय लेना उचित नहीं होगा। अधिनियम की धारा 13 और 16 को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सवाल

[41] (1998) 9 एससीसी 728
[42] (1996) 10 एससीसी 35
[43] (1999) 2 एससीसी 479
[44] (1999) 8 एससीसी 572
[45] (2000) 7 एससीसी 201

> मध्यस्थ की योग्यता, स्वतंत्रता और निष्पक्षता के संबंध में और मध्यस्थ के अधिकार क्षेत्र के संबंध में मध्यस्थ के समक्ष उठाया जा सकता है जो इसका निर्णय करेगा।"

43. तीन–न्यायाधीशों की पीठ के फैसले की बाद में पुष्टि की गई कोंकण रेलवे कार्पोरेशन बनाम मेहूल कंस्ट्रक्शन में पाँच न्यायाधीशों द्वारा को 46 (संक्षेप में "कोंकण रेलवे (II)")।इस न्यायालय ने उसमें अभिनिर्धारित किया कि मुख्य न्यायाधीश या धारा 11 के तहत उनके द्वारा नामित 'किसी व्यक्ति या संस्थान' द्वारा प्रयोग की गई शक्ति न्यायनिर्णायक नहीं है। पूर्ववर्ती की विस्तृत समीक्षा के बाद, यह अभिनिर्धारित किया गया कि धारा 11 के तहत मुख्य न्यायाधीश या उनके नामित व्यक्ति का कार्य केवल "बचे हुए अंतराल को भरना" है और शीघ्र गठन और मध्यस्थता कार्यवाही शुरू करने के लिए एक मध्यस्थ की नियुक्ति करना है।

44. एस. बी. पी. (ऊपर) में इस न्यायालय के सात न्यायाधीशों ने कोंकण रेलवे (II) (ऊपर) में निर्णय को पलट दिया।इसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि नियुक्ति के लिए आवेदन का निर्णय लेना 'प्रशासनिक' शक्ति के विपरीत 'न्यायिक' शक्ति का प्रयोग है और न्यायालय साक्ष्य दर्ज करने के लिए भी अधिकृत हैः

> "39. ... .[च] या इन पहलुओं पर निर्णय लेने के उद्देश्य से, मुख्य न्यायाधीश या तो हलफनामों और प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों के आधार पर आगे बढ़ सकते हैं या ऐसा साक्ष्य ले सकते हैं या ऐसा साक्ष्य दर्ज करा सकते हैं।

45. हालांकि, न्यायमूर्ति सी. के. ठक्कर ने बहुमत की राय से असहमति जताई और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यह निम्नलिखित अंश में एक प्रशासनिक शक्ति थीः

> "85. ... मेरे दिमाग में इसमें कोई संदेह नहीं है कि उस स्तर पर, आवश्यक संतुष्टि केवल प्रथम दृष्टया प्रकृति की होती है और मुख्य न्यायाधीश न तो पक्षकारों के बीच विवादास्पद मुद्दों पर निर्णय लेते हैं और न ही।धारा 11 में न तो विस्तृत जांच पर विचार किया गया है, न ही परीक्षण और न ही विवादास्पद या विवादित मामलों पर निष्कर्ष पर विचार किया गया है।"

46. असहमति के चार मुख्य कारणों को संक्षेप में नीचे दिया जा सकता हैः

"111. ... .सबसे पहले, न्यायालय का कार्य प्रावधान की व्याख्या करना है न कि व्याख्यात्मक प्रक्रिया द्वारा संशोधन, परिवर्तन या प्रतिस्थापन करना।दूसरा, यह विधायिका का काम है कि वह किसी विधि को लागू करे उसके द्वारा विचार की गई कुछ स्थितियों के लिए और न्यायपालिका के पास 'विधायी ज्ञान' में प्रवेश करने की कोई शक्ति नहीं है। तीसरा, जैसा कि मैंने अभिनिर्धारित किया है, मुख्य न्यायाधीश का 'निर्णय' केवल प्रथम दृष्टया निर्णय है और धारा 16 की उप–धारा (1) मध्यस्थ न्यायाधिकरण को अपनी अधिकारिता पर शासन करने की शक्ति प्रदान करती है। चौथा, यह मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश द्वारा उत्पन्न स्थितियों से निपटने के लिए वह उपाय प्रदान करता है। उनकी असहमति का आधार यह है कि किसी विधि की व्याख्या करने की आड़ में न्यायिक विधि बनाने की अनुमति नहीं है।"

47. पैराग्राफ 95 और 96 में असहमति की राय में, न्यायमूर्ति ठक्कर ने आगे कहाः

---

[46] (2002) 2 एससीसी 388

"95. अब, हम अधिनियम की धारा 16 पर विचार करते हैं। यह धारा नई है और इसे 1940 के पुराने अधिनियम में जगह नहीं मिली।उस धारा की उप–धारा (1) मध्यस्थ न्यायाधिकरण को अपनी अधिकारिता पर निर्णय लेने में सक्षम बनाती है।यह आगे प्रावधान करता है कि न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र में मध्यस्थता करार के अस्तित्व या वैधता के संबंध में किसी भी आपत्ति पर निर्णय शामिल है। उप–धारा (2), (3) और (4) मध्यस्थ न्यायाधिकरण की अधिकारिता के बारे में याचिका दायर करने और ऐसी याचिका पर विचार करने की प्रक्रिया निर्धारित करती हैं। उप–धारा (5) आदेश देती है कि मध्यस्थता न्यायाधिकरण ऐसी याचिका पर "निर्णय लेगा" और "जहां मध्यस्थता न्यायाधिकरण याचिका को अस्वीकार करने का निर्णय लेता है, मध्यस्थता कार्यवाही जारी रखे और एक मध्यस्थता अधिनिर्णय दे।" उप–धारा (6) समान रूप से महत्वपूर्ण है और स्पष्ट रूप से यह अधिनियमित करती है कि मध्यस्थता अधिनिर्णय से व्यथित कोई पक्ष इस तरह के अधिनिर्णय को रद्द करने के लिए अधिनियम की धारा 34 का आह्वान कर सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रावधान विलंबकारी रणनीति और अदालत से संपर्क करने के तत्काल अधिकार के दुरुपयोग को रोकने के लिए किया गया है। यदि किसी पीड़ित पक्ष को अदालत में जाने का अधिकार है, तो अदालत को स्थगन या अंतरिम राहत देने से रोकना संभव नहीं होता, जिससे मध्यस्थता की कार्यवाही रुक जाती।धारा 5 के साथ पठित धारा 16 (6) के प्रावधान अब कानूनी स्थिति को स्पष्ट, असंदिग्ध और संदेह से मुक्त बनाते हैं।

96. धारा 16 (1) में कोम्पेटेंज़–कोम्पेटेंज़ या योग्यता के प्रसिद्ध सिद्धांत को शामिल किया गया है।यह एक महत्वपूर्ण सिद्धांत को मान्यता देता है और स्थापित करता है कि शुरू में और मुख्य रूप से, यह स्वयं मध्यस्थ न्यायाधिकरण को निर्धारित करना है कि क्या इस मामले में उसका अधिकार क्षेत्र है, निश्चित रूप से, अंतिम न्यायालय–नियंत्रण के अधीन है। इस प्रकार यह कालानुक्रमिक प्राथमिकता का नियम है।कोम्पेटेंज़–कोम्पेटेंज़ आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय की व्यापक रूप से स्वीकृत विशेषता है। मध्यस्थता, और मध्यस्थता न्यायाधिकरण को मध्यस्थता करार के अस्तित्व या वैधता के संबंध में किसी भी आपत्ति पर निर्णय लेने सहित अपने स्वयं के अधिकार क्षेत्र का निर्णय करने की अनुमति देता है, जो विधि के एक सक्षम न्यायालय यानी अधिनियम की धारा 34 के अधीन अंतिम समीक्षा के अधीन है।

48. न्यायमूर्ति ठक्कर की असहमति में तर्क की उपरोक्त रेखा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त कोम्पेटेंज़ कॉम्पटेनज़ के सिद्धांत और पृथक्करण के सिद्धांत के साथ प्रतिध्वनित होती है। एस. बी. पी. (ऊपर) में बहुमत की राय बताती है कि धारा 11 न्यायालय पूर्व-संदर्भित चरण में एक लघु-परीक्षण कर सकता है। एस. बी. पी. (ऊपर) की न्यायशास्त्रीय शुद्धता पर संदेह किया गया है और 246 वीं एल. सी. आई. रिपोर्ट (ऊपर) द्वारा इसे अत्यधिक न्यायिक हस्तक्षेप माना गया है। इसे मध्यस्थता अधिनियम, 1996 में बाद के संशोधनों द्वारा विधायी रूप से खारिज कर दिया गया है, जिस पर बाद में इस निर्णय में चर्चा की जाएगी।

49. इसके बाद, एस. बी. पी. (ऊपर) का अनुसरण करने वाली बोघरा पॉलीफैब (ऊपर) में दो-न्यायाधीशों की पीठ ने अदालत को अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित मुद्दों की जांच करने की अनुमति दीः

> "22.2. (क) क्या दावा एक मृत (लंबे समय से वर्जित) दावा है या एक जीवित दावा है।
>
> (ख) क्या पक्षों ने अपने पारस्परिक अधिकारों और दायित्वों की संतुष्टि दर्ज करके या बिना किसी आपत्ति के अंतिम भुगतान प्राप्त करके संविदा/लेनदेन का समापन किया है।"

50. एस. बी. पी. (ऊपर) और बोघारा (ऊपर) दोनों पर चर्चा करते हुए 246 वीं एल. सी. आई. रिपोर्ट (ऊपर) में महत्वपूर्ण रूप से उल्लेख किया गया है कि वास्तविक मुद्दा न्यायिक हस्तक्षेप का "दायरा" और "प्रकृति" हैः

> "29. उच्चतम न्यायालय को विशेष रूप से अधिनियम की धारा 11 के संदर्भ में अनुमेय पूर्व-मध्यस्थ न्यायिक हस्तक्षेप के दायरे और प्रकृति पर विचार-विमर्श करने का अवसर मिला है। दुर्भाग्य से, हालांकि, सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सवाल इस संदर्भ में तैयार किया गया था कि क्या ऐसी शक्ति "न्यायिक" है या "प्रशासनिक" है। शक्ति-जो इस तरह के अंतर्निहित वास्तविक मुद्दे को अस्पष्ट करती है नामकरण/विवरणः-
>
> ऐसी शक्तियों का दायरा-अर्थात उन तर्कों का दायरा जिन पर एक न्यायालय (मुख्य न्यायाधीश) यह तय करते समय विचार करेगा कि मध्यस्थ की नियुक्ति की जाए या नहीं-अर्थात क्या

मध्यस्थता करार मौजूद है, क्या यह अमान्य है, क्या यह अमान्य है आदि; और इनमें से किसे मध्यस्थता न्यायाधिकरण के निर्णय के लिए छोड़ना चाहिए।

> -इस तरह के हस्तक्षेप की प्रकृति-यानी न्यायालय (प्रमुख) न्याय) एक विस्तृत परीक्षण पर मुद्दों पर विचार करें और क्या उनका अंत में निर्णय लिया जाएगा या मध्यस्थता न्यायाधिकरण के निर्धारण के लिए छोड़ दिया जाएगा।
>
> [जोर दिया गया]

51. जहां तक प्रकृति का संबंध है, 246 वीं एल. सी. आई. रिपोर्ट (उपर्युक्त) में उल्लेख किया गया है कि इस मुद्दे पर विधि की व्याख्या शिन एत्सु (उपर्युक्त) में पाई जाती है, जहां इस न्यायालय ने मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 45 की व्याख्या करते हुए कहा कि इस मुद्दे को केवल "प्रथम दृष्टया" आधार पर देखा जाना चाहिए।दायरे में, यह सिफारिश की गई थी कि न्यायालय

को इस बात की जांच तक सीमित रहना चाहिए कि क्या करार "अमान्य" है और यदि न्यायालय को पता चलता है कि करार मौजूद नहीं है, तो वह निर्णय अंतिम होगा। इसने संविधान की धारा 8 और 11 के संबंध में निम्नलिखित सिफारिशें कीं।मध्यस्थता अधिनियम, 1996:

> "33. ... न्यायिक हस्तक्षेप का दायरा केवल उन स्थितियों तक सीमित है जहां न्यायालय/न्यायिक प्राधिकरण को पता चलता है कि मध्यस्थता करार मौजूद नहीं है या अमान्य है। जहाँ तक हस्तक्षेप की प्रकृति का संबंध है, यह अनुशंसा की जाती है कि यदि न्यायालय/न्यायिक प्राधिकरण मध्यस्थता करार को चुनौती देने वाले तर्क के खिलाफ प्रथम दृष्टया संतुष्ट हो जाता है, तो वह मध्यस्थ की नियुक्ति करेगा और/या पक्षकारों को मध्यस्थता के लिए भेजेगा, जैसा भी मामला हो।"

52. 2015–संशोधन ने हस्तक्षेप के दायरे को और भी सीमित कर दिया जैसा कि हम नीचे देखेंगे।

ii) 2015 के बाद की व्यवस्थाःधारा 11 (6ए) का समावेशन

53. 2015 के संशोधन के बाद एक बड़ा बदलाव आया है मध्यस्थता अधिनियम, 1996 में धारा 11 (6ए) का समावेशन। विधायी धारा 11 (6ए) के स्पष्ट पाठ से आशय स्पष्ट है जैसा कि नीचे निकाला गया हैः

> "उच्चतम न्यायालय या, यथास्थिति, उच्च न्यायालय, उप–धारा (4) या उप–धारा (5) या उप–धारा (6) के तहत किसी भी आवेदन पर विचार करते समय, किसी भी निर्णय के बावजूद, किसी भी न्यायालय की डिक्री या आदेश, एक मध्यस्थता करार के अस्तित्व की जांच तक सीमित है।"
>
> [जोर दिया गया]

54. इस संशोधन का आधार, जैसा कि 246 वीं एल. सी. आई. रिपोर्ट (ऊपर) में समझाया गया है, एस. बी. पी. (ऊपर) और बोघारा (ऊपर) के प्रभाव को पूर्ववत करना था, जिसने एस. बी. पी. (ऊपर) और बोघारा (ऊपर) के तहत एक अदालत द्वारा जांच और हस्तक्षेप का दायरा बढ़ाया। मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6)। धारा 11 (6ए) का उपयोग करता हैः वाक्यांश "किसी भी न्यायालय के किसी भी निर्णय, डिक्री या आदेश के बावजूद" और उन निर्णयों को प्रभावी ढंग से निरस्त करता है जो जांच के दायरे को बढ़ाते हैं।धारा 11 (6ए) में विधि आयोग द्वारा अनुशंसित "शून्य और निरर्थक" शब्द का उपयोग नहीं किया गया है। इस प्रकार, विधायिका एक कदम आगे बढ़ी और परीक्षण को मध्यस्थता करार के "अस्तित्व" तक सीमित कर दिया।

55. आइए अब हम मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 8,11 और 45 में उपयोग की गई भाषा पर ध्यान दें, जो सभी पूर्व–मध्यस्थ स्तर पर न्यायालयों की शक्तियों से संबंधित हैं।

55.1.मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 8 जिसका शीर्षक है– पक्षकारों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करें जहाँ एक मध्यस्थता करार है जिसे 2015 में निम्नलिखित भाषा के साथ संशोधित किया गया हैः"जब तक वह नहीं पाता कि प्रथम दृष्टया कोई वैध मध्यस्थता करार मौजूद नहीं है।

55.2."मध्यस्थता के लिए पक्षों को संदर्भित करने के लिए न्यायिक प्राधिकरण की शक्ति" शीर्षक वाले भाग II की धारा 45 को भी 2019 में संशोधित और अधिसूचित किया गया है। धारा 45 में संशोधन शिन एत्सु (उपरोक्त) में तीन न्यायाधीशों के फैसले के बाद किया गया था, जहां

अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता के मामले में, इस न्यायालय के समक्ष सवाल यह था कि जब धारा 45 के तहत एक आवेदन दायर किया जाता है, तो क्या न्यायालय को मामले के गुण–दोष के आधार पर प्रथम दृष्टया निष्कर्ष या अंतिम निष्कर्ष पारित करने की आवश्यकता होती है, जिसके परिणामस्वरूप एक पूर्ण परीक्षण होगा? बहुमत की राय में, यह निम्नानुसार माना गया थाः

> "105. ... यदि मध्यस्थता शुरू होने के बाद भी अदालत में कार्यवाही लंबित रहती है तो अधिनियम का उद्देश्य विफल हो जाएगा। ठीक इसी कारण से मेरा यह विचार है कि धारा 45 द्वारा विचार किए गए पूर्व–संदर्भ स्तर पर, न्यायालय को निर्देश देने के लिए केवल प्रथम दृष्टया दृष्टिकोण लेने की आवश्यकता है, जिससे पक्षकारों को या तो मध्यस्थ न्यायाधिकरण के समक्ष या अधिनिर्णय के बाद के स्तर पर न्यायालय के समक्ष पूर्ण परीक्षण के लिए छोड़ दिया जाता है।

55.3 शिन एत्सु (सुप्रा) के अनुसार, 2019 का संशोधन धारा 45 में कहा गया हैः "... जब तक कि यह प्रथम दृष्टया यह नहीं पाता है कि उक्त करार अमान्य,

निष्क्रिय या होने में असमर्थ है। प्रदर्शन किया "। इस प्रकार, उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि धारा 8 "वैधता" शब्द का उपयोग करती है और धारा 45 "शून्य और निरर्थक, निष्क्रिय या निष्पादित होने में असमर्थ" वाक्यांश का उपयोग करती है।इस मायने में, धारा 11 (6ए) एक अनूठा प्रावधान है जो मध्यस्थता करार के "अस्तित्व" तक सीमित है न कि इसकी "वैधता" तक।संशोधित प्रावधान को UNCITRAL मॉडल विधि में भी जगह नहीं मिलती है। विद्वान न्यायमित्र ने पी . रामनाथ अय्यर की रचना में परिसीमा की परिभाषा की ओर इशारा किया। उन्नत विधि शब्दकोश 47 में कहा गया हैः"कैद; हिरासत में रखें।घेराबंदी की सीमा के भीतर रखना "।

56. मध्यस्थता अधिनियम 1996 की धारा 5 के साथ धारा 11 (6ए) की भाषा को पढ़ने और विधायी इरादे पर आधारित व्याख्या करने पर, यह स्पष्ट है कि धारा 11 (6ए) के तहत दायरा बहुत संकीर्ण है।

iii) 2019 के बाद का संशोधन और उच्च स्तरीय रिपोर्ट भारत में मध्यस्थता तंत्र के संस्थागतकरण की समीक्षा के लिए समिति।

57. न्यायमूर्ति श्रीकृष्णा 48 के नेतृत्व वाली समिति ने मध्यस्थता अधिनियम, 1996 में और बदलाव की सिफारिश की थी। इसने धारा 11 (6ए) को हटाने की सिफारिश की थी, जिसमें मध्यस्थों की नियुक्ति की शक्ति पूरी तरह से मध्यस्थ संस्थानों पर छोड़ दी गई थी।सिंगापुर , हांगकांग, यूनाइटेड किंगडम आदि से प्रेरणा लेते हुए समिति ने सिफारिश की कि यह आगे की देरी को रोकेगा और भारत में संस्थागत मध्यस्थता के लिए गति निर्धारित करेगा।संशोधित धारा 11 (6) के तहत मध्यस्थों की नियुक्ति मध्यस्थ संस्था द्वारा की जानी हैः

> "... नियुक्ति, पक्षकार के आवेदन पर, उच्चतम न्यायालय द्वारा नामित मध्यस्थ संस्था द्वारा, अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता के मामले में, या उच्च न्यायालय द्वारा, अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता के अलावा अन्य मध्यस्थता के मामले में, जैसा भी मामला हो, की जाएगी।"

58. 2016 के अधिनियम 3 द्वारा धारा 6 (बी) का समावेशन, जिसे अभी तक अधिसूचित नहीं किया गया है, निम्नानुसार हैः

"(6(ख) उच्चतम न्यायालय या, यथास्थिति, उच्च न्यायालय द्वारा, निम्नलिखित प्रयोजनों के लिए किसी व्यक्ति या संस्था का पदनाम – इस धारा को न्यायिक प्रतिनिधि मंडल के रूप में नहीं माना जाएगा। उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा शक्ति।]"

[जोर दिया गया]

भले ही संशोधनों को अभी तक अधिसूचित नहीं किया गया है और प्रक्रिया पर सीमित स्पष्टता है, हम विधायिका के इरादे के बारे में संकेत ले सकते हैं जो मध्यस्थ की नियुक्ति के पूर्व–संदर्भित चरण में न्यूनतम न्यायिक हस्तक्षेप सुनिश्चित करना प्रतीत होता है।

59. अब सबसे पसंदीदा मध्यस्थ संस्थानों यानी अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता संस्थानों के बीच प्रचलित स्थिति का उल्लेख करना उचित होगा। चैंबर ऑफ कॉमर्स कोर्ट (आईसीसी कोर्ट), लंदन कोर्ट ऑफ इंटरनेशनल आर्बिट्रेशन (एलसीआईए), हांगकांग इंटरनेशनल आर्बिट्रेशन सेंटर (एचकेआईएसी), सिंगापुर इंटरनेशनल आर्बिट्रेशन सेंटर (एसआईएसी) और स्टॉकहोम का आर्बिट्रेशन इंस्टीट्यूट वाणिज्य मंडल (एस. सी. सी.) जिनका उल्लेख उच्च स्तरीय समिति की रिपोर्ट में किया गया था और जिनका व्यापक रूप से उल्लेख किया जा सकता है:–

---

[47] पी. रामनाथ अय्यर, द एनसाइक्लोपेडिक लॉ डिक्शनरी विद वर्ड्स एंड फ्रेजेस, लीगल मैक्सिम्स एंड लैटिन टर्म्स (5 वां संस्करण); पी. 1037

[48] भारत सरकार, 'भारत में मध्यस्थता तंत्र के संस्थागतकरण की समीक्षा के लिए उच्च स्तरीय समिति की रिपोर्ट (एचएलसी रिपोर्ट, जुलाई 2017) इस वेबसाइट पर उपलब्ध://वैधानिकताएँ।गव.इन/साइट/डिफ़ॉल्ट/फाइल/रिपोर्ट–HLC.pdf <अंतिम वर्जन 19.3.2023> पर पहुँचा गया

1. आई. सी. सी. मध्यस्थता नियम, 2021:

"अनुच्छेद 6.मध्यस्थता करार का प्रभाव।—

(4) अनुच्छेद 6 (3) के तहत न्यायालय को भेजे गए सभी मामलों में मध्यस्थता तब आगे बढ़ेगी जब और इस हद तक कि न्यायालय प्रथम दृष्टया संतुष्ट है कि नियमों के तहत एक मध्यस्थता करार मौजूद हो सकता है।

(5) अनुच्छेद 6 (4) के तहत न्यायालय द्वारा तय किए गए सभी मामलों में, मध्यस्थता न्यायाधिकरण की अधिकारिता के बारे में कोई भी निर्णय, पक्षों या दावों को छोड़कर, जिनके संबंध में न्यायालय निर्णय लेता है कि मध्यस्थता आगे नहीं बढ़ सकती है, तब मध्यस्थता न्यायाधिकरण द्वारा लिया जाएगा। स्वयं मध्यस्थ न्यायाधिकरण।"

2. एच. के. आई. ए. सी. मध्यस्थता नियम:"

अनुच्छेद 11–एच. के. आई. ए. सी. की कार्यवाही करने की प्राथमिक शक्ति 11.1 मध्यस्थता तब और उस हद तक आगे बढ़ेगी जब एच. के. आई. ए. सी. संतुष्ट है, प्रथम दृष्टया, कि एक मध्यस्थता करार इन प्रक्रियाओं के तहत मौजूद हो सकते हैं। इस बारे में कोई सवाल मध्यस्थ न्यायाधिकरण की अधिकारिता का निर्णय एक वर्जन गठित होने के बाद मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा किया जाएगा।

11.2 अनुच्छेद 11.1 के अनुसार एच. के. आई. ए. सी. का निर्णय किसी भी पक्ष की दलीलों की स्वीकार्यता या गुणागुण के प्रति पूर्वाग्रह के बिना है।"

3. एल. सी. आई. ए. मध्यस्थता नियमः

"अनुच्छेद 23.अधिकारिता और प्राधिकरण

23.1 मध्यस्थ न्यायाधिकरण के पास अपने स्वयं के अधिकार क्षेत्र और प्राधिकरण पर निर्णय लेने की शक्ति होगी, जिसमें मध्यस्थता करार के प्रारंभिक या निरंतर अस्तित्व, वैधता, प्रभावशीलता या दायरे पर कोई आपत्ति शामिल है।"

4. एस. आई. ए. सी. अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता केंद्र नियम, 2016:

"अनुच्छेद 28.न्यायाधिकरण का अधिकार क्षेत्र

28.1 यदि कोई पक्ष मध्यस्थता करार के अस्तित्व या वैधता पर या गठित न्यायाधिकरण के समक्ष मध्यस्थता करने के लिए एस. आई. ए. सी. की क्षमता पर आपत्ति करता है, तो पंजीयक यह निर्धारित करेगा कि ऐसी आपत्ति को न्यायालय को भेजा जाएगा या नहीं।यदि पंजीयक ऐसा निर्धारित करता है, तो न्यायालय यह तय करेगा कि क्या यह प्रथम दृष्टया संतुष्ट है कि मध्यस्थता आगे बढ़ेगी।यदि न्यायालय इतना संतुष्ट नहीं है तो मध्यस्थता समाप्त कर दी जाएगी।पंजीयक या न्यायालय द्वारा कोई भी निर्णय कि मध्यस्थता आगे बढ़ेगी, न्यायाधिकरण की अपनी अधिकारिता पर शासन करने की शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना है।

28.2 न्यायाधिकरण के पास मध्यस्थता करार के अस्तित्व, वैधता या दायरे के संबंध में किसी भी आपत्ति सहित अपने स्वयं के अधिकार क्षेत्र पर निर्णय लेने की शक्ति होगी।एक मध्यस्थता करार जो एक संविदा का हिस्सा है, उसे संविदा की अन्य शर्तों से स्वतंत्र एक करार के रूप में माना जाएगा।"

5. मध्यस्थता संस्थान एस. सी. सी. नियमः

"अनुच्छेद 11.बोर्ड के फैसले

बोर्ड इन नियमों के तहत दिए गए निर्णय लेता है, जिसमें निर्णय लेना भी शामिल हैः

(i) क्या एस. सी. सी. के पास अनुच्छेद 12 (i) के अनुसार विवाद पर स्पष्ट रूप से अधिकार क्षेत्र का अभाव है;

अनुच्छेद 12 (i)।बर्खास्तगी

बोर्ड किसी मामले को पूरी तरह या आंशिक रूप से खारिज कर देगा, यदिः

((i) विवाद पर एस. सी. सी. के पास स्पष्ट रूप से अधिकार क्षेत्र का अभाव है।

60. इस प्रकार, दुनिया भर में प्रतिष्ठित मध्यस्थ संस्थानों के दृष्टिकोण से पता चलेगा कि कोम्पेटेंज़-कोम्पेटेंज़ के सिद्धांत की स्पष्ट मान्यता है और न्यायालयों की भूमिका प्रारंभिक प्रथम दृष्टया परीक्षा तक सीमित है।उपरोक्त नियमों को पढ़ने से यह भी पता चलेगा कि मध्यस्थता संस्थानों ने मध्यस्थता करार के अस्तित्व को निर्धारित करने के लिए प्रथम दृष्टया परीक्षण को मान्यता दी है।

प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता संस्थानों के नियमों पर चर्चा करते हुए, विलियम पार्क ने "चुनौतीपूर्ण मध्यस्थता क्षेत्राधिकारः" शीर्षक वाले एक लेख में कहा।संस्थागत नियमों की भूमिका "49 में लिखा हैः

> " हालाँकि, कभी–कभी मध्यस्थता प्रक्रिया के लिए सहमति के न्यूनतम संकेत के बिना भी मध्यस्थता दायर की गई है।ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा कोई लिखत मौजूद नहीं है जिसमें कहा गया हो कि प्रत्यर्थी वास्तव में दावेदार के साथ मध्यस्थता करने के लिए सहमत था। ऐसे मामलों में, प्रतिवादी के इस तर्क पर जल्दी विचार करके दक्षता हासिल की जाएगी कि मामला आगे नहीं बढ़ना चाहिए।इसके लिए, आई. सी. सी. नियम आई. सी. सी. न्यायालय को स्पष्ट क्षेत्राधिकार संबंधी दोषों पर विचार करने की अनुमति देते हैं, जिसमें मध्यस्थता केवल उस हद तक आगे बढ़ती है जब आई. सी. सी. न्यायालय प्रथम दृष्टया संतुष्ट होता है कि एक मध्यस्थता करार मौजूद हो सकता है।"

61. इस प्रकार, किसी पक्ष को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करते समय प्रथम दृष्टया परीक्षण के पीछे का उद्देश्य यह भी सुनिश्चित करना है कि एक गैर–सहमति देने वाला पक्ष मध्यस्थता की प्रक्रिया के लिए बाध्य नहीं है और पक्ष की स्वायत्तता के सिद्धांत को अदालतों के न्यूनतम हस्तक्षेप के साथ बरकरार रखा जाता है।

62. जे. चंद्रचूड़ (जैसा कि वे तब थे) ने सहमति व्यक्त की ए. अय्यासामी बनाम ए. परमशिवम और अन्य 50 (संक्षेप में "अय्यासामी") इस बात पर ध्यान दिया कि भारत में न्यायशास्त्र को न्यायालयों के न्यूनतम हस्तक्षेप के साथ मध्यस्थता की संस्थागत प्रभावशीलता को मजबूत करना चाहिएः

[49] पार्क, विलियम।"मध्यस्थता क्षेत्राधिकार को चुनौती देनाः संस्थागत नियमों की भूमिका ", बोस्टन यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ लॉ, पब्लिक लॉ रिसर्च पेपर (2015)

[50] (2016) 10 एससीसी 386

> "53. मेरे विचार में मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की व्याख्या की जानी चाहिए ताकि इसकी व्याख्या में अंतर्निहित सिद्धांतों को इस तरह से लाया जा सके जो सामान्य विधि की दुनिया में प्रचलित दृष्टिकोणों के अनुरूप हो। भारत में न्यायशास्त्र का होना आवश्यक है
>
> मध्यस्थता की संस्थागत प्रभावशीलता को मजबूत करने की दिशा में विकास करना।दलों द्वारा अपने सभी दावों को हल करने के लिए एक पूर्ण उपाय के रूप में चुने गए मंच का बचाव करना उस विकास का हिस्सा है। अदालतों के हस्तक्षेप को कम करना फिर से उसी सिद्धांत की मान्यता है।"
>
> [जोर दिया गया]

63. इसने द्वारा प्रस्तावित वन–स्टॉप मध्यस्थता सिद्धांत को बरकरार रखा फियोना ट्रस्ट एंड होल्डिंग कॉर्पोरेशन बनाम प्रीवालोव 51 में हाउस ऑफ लॉर्ड्स।

> "46. फियोना ट्रस्ट एंड होल्डिंग कॉर्प में ।v. प्रीवालोव [फियोना] ट्रस्ट एंड होल्डिंग कार्पोरेशन ।v. प्रीवालोव, (2007) 1 ऑल ईआर (कॉम) 891:2007 बस एल. आर. 686 (सी. ए.)], अपील न्यायालय ने मध्यस्थता करारों को व्यावसायिक प्रभावकारिता प्रदान करने में एक नई शुरुआत करने की आवश्यकता पर जोर दिया।अपील न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया किः(बस एल. आर. पीपी. 695 एच–696 बी एंड एफ, पैरा 17 और 19)

"17. ... हमारी ओर से हम मानते हैं कि अब समय आ गया है कि किसी प्रकार की रेखा खींची जाए और अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक संदर्भ में उत्पन्न होने वाले मामलों के लिए किसी भी तरह से एक नई शुरुआत की जाए।आम व्यापारी मामलों में किए गए अच्छे अंतर और इस बात पर बहस करने में लगने वाले समय पर आश्चर्यचकित होंगे कि क्या कोई विशेष मामला शब्दों के एक समूह के भीतर आता है या शब्दों के दूसरे बहुत समान समूह के भीतर आता है। यदि व्यापारी इस बात पर सहमत होने की परेशानी में पड़ जाते हैं कि उनके विवादों की सुनवाई किसी विशेष देश की अदालतों में या उनकी पसंद के न्यायाधिकरण द्वारा की जाएगी, तो वे उम्मीद नहीं करते हैं (किसी भी तरह से जब वे पहली जगह में संविदा कर रहे होते हैं) कि समय और खर्च कार्रवाई के विशेष कारणों की प्रकृति के बारे में लंबे तर्क में लिया जाएगा और क्या कार्रवाई का कोई विशेष कारण उनके मध्यस्थता खंड में चुने गए विशेष वाक्यांश के अर्थ के भीतर आता है।यदि कोई व्यापारी किसी अधिनियम की वैधता के बारे में विवादों को बाहर करना चाहता है, तो ऐसा कहना तुलनात्मक रूप से सरल होगा।

***

19. मामलों में मध्यस्थता खंड के उदार निर्माण के लिए दिए गए कारणों में से एक पक्ष में धारणा है।

---

[51] (2007) 1 सभी ईआर (कॉम) 891 (पारस 17–18)

एक–स्टॉप मध्यस्थता। यह उम्मीद नहीं की जानी चाहिए कि कोई भी वाणिज्यिक व्यक्ति जानबूझकर एक ऐसी प्रणाली बनाएगा जिसके लिए आवश्यक है कि अदालत को पहले यह तय करना चाहिए कि संविदा को ठीक किया जाना चाहिए या टाला जाना चाहिए या रद्द किया जाना चाहिए (जैसा भी मामला हो) और फिर, यदि संविदा को वैध माना जाता है, तो मध्यस्थ को उन मुद्दों को हल करने की आवश्यकता होती है जो उत्पन्न हुए हैं। यह वास्तव में एक उदार निर्माण का एक शक्तिशाली कारण है।"

मध्यस्थता को समाधान के लिए एक वन–स्टॉप फोरम प्रदान करना चाहिए विवाद। अपील न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यदि मध्यस्थ यह तय कर सकते हैं कि कोई संविदा प्रारंभिक अवैधता के लिए अमान्य है या नहीं, तो उन्हें यह तय नहीं करना चाहिए कि कोई संविदा रिश्वत द्वारा प्राप्त किया गया है या नहीं, जितना कि वे यह तय कर सकते हैं कि किसी संविदा को गलत तरीके से प्रस्तुत करके या गैर–प्रकटीकरण द्वारा दूषित किया गया है या नहीं।

[जोर दिया गया]

64. इस प्रकार, एकतरफा मध्यस्थता दृष्टिकोण यह सुनिश्चित करेगा कि प्रारंभिक अवैधता पर सभी मुद्दे या क्या कोई संविदा अमान्य है, यह मध्यस्थ संस्थानों द्वारा निश्चित रूप से न्यायालयों के अंतिम पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के अधीन निर्णय लिया जा सकता है।मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 34 में विधायी अधिदेश के अनुसार न्यायालय द्वारा एक मध्यस्थता अधिनिर्णय को अलग किया जा सकता है।यह न्यायालयों और न्यायाधिकरणों में कार्यवाही की बहुलता को रोकेगा और न्यूनतम न्यायिक हस्तक्षेप सुनिश्चित करेगा।

एच. एस. एम. एस. चाय पर चर्चाः

65. स्टाम्प एक्ट, 1899 और आर्बिट्रेशन एक्ट, 1996 की विधायी योजना पर व्यापक रूप से चर्चा करने के बाद, आइए अब एन. एन. ग्लोबल (उपरोक्त) में निर्दिष्ट निर्णयों की शुद्धता की जांच करें।

66. एस.एम एस टी.ए. (ऊपर) में इस न्यायालय के 2011 के फैसले से एक बिना स्टाम्प वाले या अपर्याप्त स्टाम्प वाले करार में निहित मध्यस्थता करार की प्रवर्तनीयता पर न्यायिक स्थिति का पता लगाया जा सकता है। मामले के तथ्य यह थे कि अपीलार्थी को 30 साल की अवधि के लिए दो चाय बागानों का पट्टा दिया गया था। पट्टा विलेख में एक मध्यस्थता खंड था। चाय बागानों से प्रत्यर्थी द्वारा अचानक बेदखल किए जाने पर, अपीलार्थी ने मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 के तहत एक आवेदन दायर किया। गुवाहाटी उच्च न्यायालय के विद्वान मुख्य न्यायाधीश ने धारा 11 के आवेदन को खारिज कर दिया और कहा कि पट्टा विलेख पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 के संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 106 तहत अनिवार्य रूप से पंजीकृत होना था। और चूंकि पट्टा विलेख पंजीकृत नहीं था, इसलिए मध्यस्थता का मामला इस न्यायालय में पहुँचा जहाँ एक सवाल यह था कि क्या एक अपंजीकृत लिखत में एक मध्यस्थता करार, जिस पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगी है, वैध और प्रर्वतनीय है। यह देखा गया कि एक अनस्टैम्प्ड या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प्ड लिखत में मध्यस्थता करार शून्य है, यह देखते हुए कि स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 स्पष्ट रूप से उस प्राधिकरण को प्रतिबंधित करती है जिसके सामने इस तरह के अनस्टैम्प्ड या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प्ड लिखत को ऐसे लिखत पर कार्य करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। इस स्तर पर, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि एस.एम.एस.(सुप्रा) में निर्णय ऐसे समय में आया जब एस.बी.पी. (सुप्रा) और बोघारा पॉलीफैब (सुप्रा) ने अधिनियम में धारा

11 (6ए) को शामिल करने से पहले अपना अधिकार बनाए रखा था। इस प्रकार, धारा 11 के स्तर पर भी, 2015 के संशोधन से पहले मौजूद विधि के तहत, न्यायालय के पास व्यापक शक्तियां थीं और वह विस्तृत निर्णय भी ले सकता था। भले ही इस न्यायालय ने एस. एम. एस. टी. (उपरोक्त) में पंजीकरण अधिनियम, 1908 के संदर्भ में पृथकता के सिद्धांत को संक्षिप्त रूप से मान्यता दी, लेकिन यह अभिनिर्धारित किया कि स्टाम्प शुल्क का भुगतान न करने पर स्टाम्प अधिनियम, 1899 के सख्त और अनिवार्य प्रावधानों को प्रासंगिक प्रावधानों के साथ सामंजस्यपूर्ण रूप से नहीं पढ़ा जा सकता है। मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के प्रासांगिक प्रावधानो के साथ इसें निम्नानुसार आयोजित किया गया थाः

" 22.1. अदालत को किसी भी दस्तावेज़ को साक्ष्य के रूप में स्वीकार करने या ऐसे दस्तावेज़ पर कार्रवाई करने से पहले, यह जांच करनी चाहिए कि क्या लिखत/दस्तावेज़ पर विधिवत स्टाम्प लगी है और क्या यह एक ऐसा लिखत है जो अनिवार्य रूप से पंजीकरण योग्य है।

22.2. यदि दस्तावेज़ पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगी है, तो स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 उक्त दस्तावेज़ पर कार्रवाई करने से रोकती है। नतीजतन, उसमें मध्यस्थता खंड पर भी कार्रवाई नहीं की जा सकती है। इसके बाद अदालत को स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 के तहत दस्तावेज़ को परिबद्ध करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए और स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 और 38 के तहत प्रक्रिया का पालन करना चाहिए।

67. नैना ठक्कर एवं ब्लैक पर्ल होटल्स बनाम प्लैनेट एम. रिटेल लिमिटेड **52** में (संक्षेप में "ब्लैक पर्ल होटल्स") में एस.एम.एस. टी. (ऊपर) के फैसले को बरकरार रखा गया है। धर्मरत्नाकर (ऊपर) कें इस न्यायालय के 3 न्यायाधीशों द्वारा हाल ही में दिये गये एक फैसले में इसे अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, गरवारे (ऊपर) में न्यायालय ने एस. एम. एस. टी. (ऊपर) का अनुसरण किया, जिसे विद्या ड्रोलिया (ऊपर) में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया है। इस कानूनी प्रस्ताव पर इस न्यायालय द्वारा एन.एन. ग्लोबल (ऊपर) में इस न्यायालय नें संदेह जताया है और हमें संदर्भित किया गया है।

68. जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है धारा 11 (6ए) , एक गैर–अप्रत्याशित खंड से शुरू होती है अर्थात "किसी भी न्यायालय के किसी भी निर्णय, डिक्री या आदेश के बावजूद" और उन सभी निर्णयों को प्रभावी ढंग से रद्द कर देती है जो परीक्षा के दायरे को बढ़ाते हैं।

69. इस पहलू पर अपीलार्थी के विद्वान वकील श्री गगन सांघी द्वारा हमारे समक्ष पहली प्रस्तुति यह थी कि धर्मरत्नाकर (ऊपर) और ब्लैक पर्ल होटल्स (ऊपर) में दो अलग–अलग तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसलों की टिप्पणियों पर एन .एन. ग्लोबल (ऊपर) में विचार नहीं किया गया है जो कि एक और तीन अन्य न्यायाधीशों की पीठ है और यह एन.एन. ग्लोबल (ऊपर) के निष्कर्ष पर गंभीरता से सवाल उठाता है।

70. यहाँ यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि उपरोक्त दो निर्णयों में हाल के 11 (6ए) संशोधन पर विचार नहीं किया गया था। ब्लैक पर्ल होटल्स (उपरोक्त) को 11 (6ए) से पहले वितरित किया गया था और इसलिए इसे विधायी रूप से खारिज कर दिया गया है।

धर्मरत्नाकर (ऊपर) में, ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 11 (6ए) में संशोधन को न्यायालय के संज्ञान में नहीं लाया गया था और गरवारे (ऊपर) में पहले के फैसले पर विचार नहीं किया

गया था। ऐसा इसलिए भी हो सकता है क्योंकि न्यायालय ने उस आदेश पर विचार किया जो धारा 11 (6ए) को लागू करने से पहले पारित किया गया था। धर्मरत्नाकर (ऊपर) में, न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह था कि क्या पक्षों के बीच निष्पादित किया गया दस्तावेज़ एक पट्टा विलेख था या "पट्टे पर देने का करार", और क्या उक्त दस्तावेज़ के तहत मध्यस्थता का आह्वान किया जा सकता है।कर्नाटक उच्च न्यायालय के पंजीयक (न्यायिक) द्वारा यह निर्धारित करने के बाद भी कि संबंधित दस्तावेज एक पट्टा विलेख था, घाटे के स्टाम्प शुल्क का भुगतान नहीं किया गया था। न्यायालय ने एस. एम. एस. टी. (उपरोक्त) पर भरोसा करते हुए कहा कि जब तक स्टाम्प शुल्क का भुगतान नहीं किया जाता है, तब तक मध्यस्थता करार पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है।

71. उपरोक्त चर्चा से, यह स्पष्ट है कि धर्मरत्नाकर (उपरोक्त) 2015 के बाद की संशोधन व्यवस्था के आलोक में सही स्थिति निर्धारित नहीं करते हैं। संशोधन अधिनियम के माध्यम से, एस एम.एस. टी. (उपरोक्त) को विधायी रूप से खारिज कर दिया गया है।

72. धारा 11(6ए) को शामिल करने के बाद विधि की सही व्याख्या ड्यूरो फेलगुएरा, एस. ए. बनाम गंगावरम पोर्ट लिमिटेड [53] (संक्षेप में "ड्यूरो फेलगुएरा") में पाया गया जहा यह माना गया था कि, "(ए)(2015) संशोधन, अदालतों को केवल यह देखने की आवश्यकता है कि क्या मध्यस्थता करार मौजूद है– न कुछ अधिक, न कुछ भी कम। विधायी नीति और उद्देश्य अनिवार्य रूप से मध्यस्थ की नियुक्ति के स्तर पर न्यायालय के हस्तक्षेप को कम करना है । धारा 11 (6–ए) में शामिल इरादे का सम्मान किया जाना चाहिए।" इसें मायावती ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड बनाम प्रद्युत देब बर्मन [54] मामले में तीन न्यायाधीशों की पीठ ने इसकी फिर से पुष्टि की गयी है। जहाँ इसें इस प्रकार रखा गया थाः

> "10. यह स्थिति होने के कारण, यह स्पष्ट है कि 2015 के संशोधन से पहले का विधि जो इस न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया है, जिसमें यह शामिल होगा कि क्या करार और संतुष्टि हुई है, अब विधायी रूप से खारिज कर दिया गया है। यह स्थिति होने के कारण, उपरोक्त निर्णय में निहित तर्क से सहमत होना मुश्किल है क्योंकि धारा 11 (6ए) एक मध्यस्थता करार के अस्तित्व की 15 वीं जांच तक ही सीमित है और इसे संकीर्ण अर्थों में समझा जाना चाहिए जैसा कि इसमें निर्धारित किया गया है। निर्णय ड्यूरो फेलगुएरा, एस. ए. (ऊपर) पैरा 48 और 59 देंखें "

73. प्रवीण इलेक्ट्रिकल्स (पी) लिमिटेड बनाम गैलेक्सी इन्फ्रा एंड इंजीनियरिंग से निम्नलिखित उद्धरण (पी) लिमिटेड 55 भी समान रूप से प्रासंगिक है जहां न्यायालय ने धारा 11 (6ए) की व्याख्या करते हुये निर्णायक रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 11 का न्यायाधीश उस स्तर पर लघु–विचारण का संचालन नहीं कर सकता हैः

"29. इस मामले के तथ्य एलिस इन वंडरलैंड की याद दिलाते हैं। लुईस कैरोल की क्लासिक के दूसरे अध्याय में, छोटी ऐलिस के खरगोश के छेद से नीचे उतरने के बाद, वह कहती है, "जिज्ञासु और जिज्ञासु!" और लुईस

53 (2017) 9 एससीसी 729 ए
54 (2019) 8 एससीसी 714
55 (2021) 5 एससीसी 671 ए

कैरोल कहते हैं "(वह इतनी हैरान थी कि उस पल के लिए वह अच्छी अंग्रेजी बोलना भूल गई)।"यह एक ऐसा मामला है जो दस्तावेजी साक्ष्य और प्रतिपरीक्षा के माध्यम से पक्षों के बीच सच्चाई सामने आने के लिए प्रमुखता से चिल्लाता है। इस मामले में पक्षों के बीच दस्तावेजी साक्ष्य बनाने वाली पहेली के बड़े टुकड़े अधूरे रह गये। 22 जुलाई, 2014 और 25 जुलाई, 2014 को पहली वर्जन यहां प्रस्तुत किए गए ईमेल के साथ–साथ एस. बी. पी. डी. सी. एल. और प्रतिवादी (प्रत्यर्थी) के बीच कुछ पत्राचार से पता चलता है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच एस. बी. पी. डी. सी. एल. द्वारा जारी एक निविदा के लिए कुछ लेन देन है, लेकिन यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है कि पक्षों के बीच एक संपन्न संविदा है, जिसमें एक मध्यस्थता खंड शामिल है। सी. एफ. एस. एल. द्वारा निष्कर्ष की अनिर्णायक प्रकृति को देखते हुए, हरियाणा में उन पक्षों द्वारा करार पर हस्ताक्षर किए गए जिनके पंजीकृत कार्यालय बॉम्बे और बिहार में हैं, जिन्हें बिहार में निष्पादित किया जाना है। जिस करार पर हस्ताक्षर किये गये थे, वह ऐसा करने के लिए अधिकृत नहीं था और इस मामले के तथ्यों पर उत्पन्न होने वाली कई अन्य उलझनें, किसी न किसी तरह से यह निष्कर्ष निकालना असुरक्षित है कि एक मध्यस्थता करार उभय पक्षों के बीच मौजूद है। विद्या द्रोलिया (उपरोक्त) में कही गई प्रथम दृष्टया समीक्षा से इस मामले के तथ्यों पर केवल एक ही निष्कर्ष निकल सकता है–कि क्या उभय पक्षों के बीच मध्यस्थता करार मौजूद है या नहीं, इस पर गहन विचार एक मध्यस्थ पर छोड़ दिया जाना चाहिए जो दस्तावेजी साक्ष्य की विस्तार से जांच करेगा। गवाहों के जिरह होने के बाद विस्तार से उनके सामने पेश किया जायेगा । इन सभी कारणों से, हम दिल्ली उच्च न्यायालय के विवादित फैसले को तब तक दरकिनार कर देते हैं जब तक कि यह निर्णायक रूप से पाता है कि पक्षों के बीच एक मध्यस्थता करार है।"

[emphasis supplied] [जोर दिया गया]

74. इस बिंदु पर, यह ध्यान रखना पर्याप्त होगा कि एस.एम.एस. टी. (उपरोक्त) में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यदि अंतर्निहित संविदा पर स्टाम्प नहीं लगाई गयी है तो एक मध्यस्थ करार साक्ष्य में अस्वीकार्य हों जाएगा। हालाँकि, इसमें यह नहीं बताया गया के बिना स्टाम्प लगें मध्यस्थता करार को अमान्य कर दिया जाएगा जैसा कि बाद के निर्णय में गरवारे (ऊपर) में माना गया था। जबकि एस.एम.एस. टी. (उपरोक्त) ने पंजीकरण अधिनियम, 1908 के संदर्भ में पृथक्करण की धारणा को बढ़ाया, हम नीचे देखेंगे कि इस

धारणा को सामंजस्यपूर्ण निर्माण के माध्यम से स्टाम्प अधिनियम, 1899 के संदर्भ में भी बढ़ाया जा सकता है।

I. गरवारे पर चर्चा

75. गरवारे (उपरोक्त) में तथ्य यह थे कि ओडिशा के पेंठा गांव में तटीय कटाव से बचाव के लिए नियोक्ता द्वारा टो माउंड के साथ भू- टेक्सटाइल ट्यूब तटबंध की स्थापना के लिये एक उप-संविदा प्रदान किया गया था। उभय पक्षों के बीच विवादों के कारण, उप-संविदा को समाप्त कर दिया गया था। प्रत्यर्थी / प्रतिवादी ने धारा 11 के तहत एक याचिका दायर की जिसे बॉम्बे उच्च न्यायालय ने अनुमति दें दी और एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त किया गया।

> अपील पर, इस न्यायालय ने मुख्य रूप से एस.एम.एस. टी. (उपरोक्त)पर भरोसा करते हुए कहा कि एक <u>बिना स्टाम्प लगे</u>(अनस्टैम्प्ड) दस्तावेज़ में मध्यस्थता करार पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है और इसलिए, एक मध्यस्थ की नियुक्ति तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि <u>बिना स्टाम्प लगे</u> (अनस्टैम्प्ड) करार को परिबद्ध नहीं कर लिया जाता। संशोधित धारा 11 (6ए) और 246 वीं एल.सी.आई. रिपोर्ट (उपरोक्त) पर विचार करने के बावजूद कि एस.बी.पी. (उपर्युक्त) और बोघारा (उपर्युक्त) को खारिज कर दिया गया है, अदालत ने कहा कि "एस.एम.एस. टी एस्टेटस(डी) कों किसी भी तरह से प्रभावित नहीं किया गया है ।

धारा 11 (6-ए) "क्योंकि इसे 246 वीं एल. सी. आई. रिपोर्ट (ऊपर) या 2015 के संशोधन के उद्देश्य और कारणों के विवरण से बाहर नहीं किया गया था। यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि भारतीय संविदा अधिनियम 1872 की धारा 2 (एच) के अनुसार, एक करार केवल तभी संविदा बनता है जब वह विधि द्वारा लागू किया जा सके और इसलिए, स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 के तहत प्रतिबंध के कारण एक बिना स्टाम्प वाला दस्तावेज अप्रवर्तनीय होगा। निम्नलिखित पैराग्राफ पर एन.एन. ग्लोबल (ऊपर) द्वारा संदेह किया गया हैः

> "22. जब एक मध्यस्थता खंड "एक संविदा में" निहित होता है, तो यह महत्वपूर्ण है कि करार केवल तभी एक संविदा बन जाता है जब यह विधि द्वारा लागू किया जा सके। हमने देखा है कि कैसे, स्टाम्प अधिनियम के तहत, एक करार एक संविदा नहीं बनता है, अर्थात्, यह विधि में प्रर्वतनीय नहीं है , जब तक कि उस पर विधिवत स्टाम्प न लगाई गयी हों । इसलिए, धारा 11 (6-ए) को जब 1996 के अधिनियम की धारा 7 (2) और संविदा अधिनियम की धारा 2 (एच) के साथ पढ़ा जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी करार में मध्यस्थता खंड तब मौजूद नहीं होगा जब वह विधि द्वारा लागू नहीं किया जा सकता है। यह भी एक संकेतक है कि धारा 11 (6-ए) के संशोधन ने किसी भी तरह से एस.एम.एस. टी एस्टेट को प्रभावित नहीं किया है।"

76. गरवारे (ऊपर) में विधि का उपरोक्त प्रस्ताव गलत प्रतीत होता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, एस.एम.एस. टी. (उपरोक्त) में निर्णय विधायी रूप से

खारिज कर दिया गया है क्योंकि यह 2015 से पहले की संशोधन व्यवस्था में दिया गया था। भले ही 246 वीं एल.सी.आई. रिपोर्ट (ऊपर) में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है, लेकिन गैर–अस्थाई खंड प्रभावी रूप से इसे खारिज कर देता है।

77. आइए अब हम भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 2 (जी) और 2 (एच) पर विचार करें जो निम्नानुसार हैः

> "(छ) विधि द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होने वाले करार को शून्य कहा जाता है;
> (ज) विधि द्वारा प्रवर्तनीय करार एक संविदा है।

गरवारे (ऊपर) में सिद्धांत कों शामिल करने का मतलब होगा कि संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 2 (जी) और (एच) के अनुसार, एक करार पर स्टाम्प नहीं लगी है, तो इसे शुरू से ही शून्य कर दिया जाएगा। हालाँकि यह स्टाम्प अधिनियम, 1899 की विधायी योजना के विपरीत होगा, जिसके अनुसार गैर–स्टाम्पिंग/अपर्याप्त स्टाम्पिंग एक उपचार योग्य दोष है जैसा कि पहले चर्चा की गई थी। इसके अलावा, स्टाम्प शुल्क लिखत पर लगाया जाता है न कि लेनदेन पर। [56]

77.1. गुलजारी लाल मालवारी बनाम राम गोपाल लॉर्ड विलियम्स जे [57] में स्टाम्प एक्ट, 1899 की धारा 35 पर चर्चा करते हुए कहा गया कि स्टाम्प अधिनियम 1899 में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो किसी दस्तावेज़ को अमान्य करता हैः

> "दस्तावेजों की अमान्यता और अस्वीकार्यता के बीच एक स्पष्ट अंतर किया जाना चाहिए।कुछ क़ानून और धाराएँ दस्तावेज़ों को अमान्य बना देती हैं यदि उन पर स्टाम्प नहीं लगाई जाती है। भारतीय स्टाम्प अधिनियम की किसी यह प्रभाव नही है, लेकिन किसी दस्तावेंज को अमान्य किये जानें का एक एक उदाहरण है स्टाम्पों का लोंप अंग्रेजी स्टाम्प अधिनियम में धारा 93 में निहित है, जो प्रदान करती हैः —
>
> समुद्री बीमा के लिए संविदा (मर्चेंट शिपिंग एक्ट, संशोधन अधिनियम, 1862 की धारा 55 में संदर्भित ऐसे बीमा के अलावा) तब तक वैध नहीं होगा जब तक कि यह समुद्री बीमा पॉलिसी में व्यक्त नहीं किया गया हो।

77.2 इसके अलावा, धारा 11 (6ए) की भाषा जांच के दायरे को केवल "अस्तित्व" तक सीमित रखती है । और यह भी नहीं कि कोई संविदा शून्य है या नहीं, जैसा कि 246 वीं एल. सी. आई. रिपोर्ट (उपर्युक्त) द्वारा अनुशंसित है। वैधता और अस्तित्व पर प्रश्न पर मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 16 के तहत मध्यस्थ द्वारा किया जा सकता है न कि मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 के तहत अदालत द्वारा।

> जे. – स्टाम्प अधिनियम 1899, संविदा अधिनियम 1872 और मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के बीच अंतःक्रिया

(i) मध्यस्थता अधिनियम, 1996 एक विशेष विधि है।

78. तीनों अधिनियमों के बीच परस्पर क्रिया को समझने के लिए, प्रासंगिक प्रावधानों का संदर्भ आवश्यक है।

(i) स्टाम्प अधिनियम, 1899:

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की अनुसूची के अनुच्छेद 5 (सी) में "समझौतों" शीर्षक के साथ अवशिष्ट प्रविष्टि, में कहा गया है कि "यदि इसके लिए अन्यथा प्रावधान नहीं किया गया है", जैसा हमारे अनुसार है, तो एक मध्यस्थता करार को भी इसके दायरे में लाता है।

अब, धारा 2 (14) के तहत लिखत को निम्नानुसार परिभाषित किया गया हैः

56 राजस्व बोर्ड बनाम एन. नरसिम्हन ए. आई. आर. 1961 मद 504; ए. बापिराजू बनाम जिला पंजीयक ए. आई. आर. 1968 ए. पी. 142 ए

57 ए. आई. आर. 1937 कैल 765 ए

"(14) ""लिखत" में प्रत्येक दस्तावेज शामिल होता है जिसके द्वारा कोई अधिकार या दायित्व बनाया जाता है, हस्तांतरित किया जाता है, सीमित किया जाता है, विस्तारित किया जाता है, समाप्त किया जाता है या रिकॉर्ड किया जाता है।"

धारा 17 स्टाम्पिंग के समय का प्रावधान करती हैः" भारत में निष्पादित लिखत —[भारत] में किसी भी व्यक्ति द्वारा शुल्क के साथ प्रभार्य और निष्पादित सभी लिखत निष्पादन से पहले या समय पर स्टाम्प।"

""निष्पादन" को धारा 2 (12) में परिभाषित किया गया हैः"लिखतो के संदर्भ में उपयोग किए जाने वाले निष्पादित "या" निष्पादन "का अर्थ है" हस्ताक्षरित "और" हस्ताक्षर "

(ii) भारतीय संविदा अधिनियम, 1872:

भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 के तहत एक करार को धारा 2 (ई) में निम्नानुसार परिभाषित किया गया हैः

"प्रत्येक वादा और वादों का प्रत्येक सेट, एक दूसरे के लिए विचार करना, एक करार है।

भारतीय संविदा की धारा 2 (जी), 2 (एच) और 2 (जे) और धारा 10 अधिनियम, 1872 में कहा गया हैः

(छ) विधि द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होने वाले करार को शून्य कहा जाता है;

(ज) विधि द्वारा प्रवर्तनीय करार एक संविदा है।

(जे) एक संविदा जो विधि द्वारा प्रवर्तनीय नहीं रह जाता है, वह शून्य हो जाता है जब वह प्रवर्तनीय नहीं रह जाता है।

(10) सभी करार संविदा हैं यदि वे संविदा करनें में सक्षम पक्षों की स्वतंत्र सहमति से, एक वैध विचार के लिए और एक वैध उद्देश्य के साथ किए जाते हैं, और इसके द्वारा स्पष्ट रूप से शून्य घोषित नहीं किए जाते हैं।

(iii) मध्यस्थता अधिनियम, 1996:

धारा 2 (बी) निम्नानुसार प्रदान करती है:"(ख) "मध्यस्थता करार" का तात्पर्य एक करार सें है

आइए अब मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 7 पर विचार करें जो विशेष रूप से मध्यस्थता करार को परिभाषित करता है:

"7 मध्यस्थता करार।

(1) इस भाग में, "मध्यस्थता करार" का अर्थ है पक्षकारों द्वारा मध्यस्थता को सभी या कुछ विवादों को प्रस्तुत करने के लिए एक करार जो उत्पन्न हुए हैं या जो एक परिभाषित कानूनी संबंध के संबंध में उनके बीच उत्पन्न हो सकते हैं, चाहे वे संविदात्मक हों या नहीं।

(2) एक मध्यस्थता करार एक संविदा में एक मध्यस्थता खंड के रूप में या एक अलग करार के रूप में हो सकता है।

(3) एक मध्यस्थता करार लिखित रूप में होगा।

(4) एक मध्यस्थता करार लिखित रूप में होता है यदि यह इसमें निहित है –

(क) पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित एक दस्तावेज;

(बी) पत्रों, टेलेक्स, तारों या दूरसंचार के अन्य साधनों का आदान–प्रदान जो करार का रिकॉर्ड प्रदान करते हैं; या

(सी) दावे और बचाव के बयानों का आदान–प्रदान जिसमें करार के अस्तित्व का आरोप एक पक्ष द्वारा लगाया जाता है और दूसरे द्वारा इनकार नहीं किया जाता है।

(5) मध्यस्थता खंड वाले दस्तावेज़ के लिए एक संविदा में संदर्भ एक मध्यस्थता करार का गठन करता है यदि संविदा लिखित रूप में है और संदर्भ ऐसा है कि उस मध्यस्थता खंड को संविदा का हिस्सा बनाया जाए।"

78.1 तीन अधिनियमों में उपरोक्त प्रावधानों के समेकित अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं:

(i) मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 7 या समग्र रूप से मध्यस्थता अधिनियम, 1996 में किसी अन्य प्रावधान में कोई विशिष्ट आवश्यकताएं नहीं हैं, जो मध्यस्थता करार की वैधता के लिए आवश्यक स्टाम्प लगाने या आम तौर पर उसी पर विस्तृत जानकारी देंती हैं।

(ii) भले ही भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 10 मौखिक करारों को मान्यता देती है, एक वैध मध्यस्थता करार के लिए एक लिखित करार अनिवार्य है।

(iii) "हस्ताक्षर करना " केवल उन शर्तों में से एक का उदाहरण मात्र है जो मध्यस्थता करार के प्रारूप को पूरा कर सकती हैं। इस प्रकार, मध्यस्थता अधिनियम 1996 की धारा 7 में मध्यस्थता करार के लिए हस्ताक्षर की अनिवार्य आवश्यकता को खारिज कर दिया गया है। चूकि मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 7 (2) (सी) लिखित रूप में दावें और बचाव के आदान–प्रदान को भी मान्यता देता है । मध्यस्थता करारों पर हस्ताक्षर करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यहा तक की यदि लिखित मध्यस्थता करार पर हस्ताक्षर नहीं किए गए हों, तों भी पक्षकार एक मध्यस्थता करार के लिए बाध्य हो सकती हैं। हालांकि, स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 17 में स्टाम्पिंग के समय यानी निष्पादन से पहले या समय का प्रावधान है और स्टाम्प अधिनियम, 1899 में "निष्पादन" शब्द को परिभाषित किया गया है जिसका अर्थ है "हस्ताक्षर"।

58 चेन्नई कंटेनर टर्मिनल प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ, 2007 3 अरब एल. आर. 218 (मैड), फिसर बनाम अंतर्राष्ट्रीय बैंक, 282 एफ. 2 डी. 231,233 (2 डी सी. आर. 1960), त्रावणकोर देवस्वम बोर्ड बनाम पंचामी पैक, 2004 13

एस. सी. सी. 510; यह भी देखें, डेविड सेंट जॉन सटन, जूडिथ गिल और मैथ्यू गियरिंग, मध्यस्थता पर रसेल (24 वां संस्करण); पी. 49 ए.

(iv) भले ही मध्यस्थ "अधिनिर्णय" स्टाम्प अधिनियम, 1899 की मद 12 के तहत स्टाम्प शुल्क के लिए उत्तरदायी हैं और विशेष रूप से अनुसूची । में उल्लिखित हैं; स्टाम्प शुल्क के उद्देश्य के लिए मध्यस्थता करार, केवल अनुच्छेद 5 (ग) में अवशिष्ट प्रविष्टि अर्थात "यदि अन्यथा प्रावधान नहीं किया गया है" स्टाम्प शुल्क के तहत शामिल होता है। स्टाम्प अधिनियम, 1899 विशेष रूप से मध्यस्थता करार का उल्लेख नहीं करता है।

(v) मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 7 के अनुसार, मध्यस्थता करार गैर–संविदात्मक भी हो सकता है।

(vi) मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 7(4)(सी) में परिकल्पना की गई है कि मध्यस्थता का दायरा शुरू में मध्यस्थता के लिए संदर्भित विवाद तक ही सीमित नहीं है, बल्कि पक्षकारो के दलीलों यानी दावें के बयान में शामिल किसी भी विवाद कों भी शामिल करता है ।

78.2 भारत कें मुख्य न्यायाधीश द्वारा मध्यस्थों की नियुक्ति योजना, 1996 अन्य बातों के साथ–साथ धारा 11 (6) आवेदन के लिए "मध्यस्थता करार" की मूल या प्रमाणित प्रति के लिए प्रावधान करती है। मैं अपनें विद्वान भाई, न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ की राय से पूरी तरह से सहमत हूं कि एक मध्यस्थता करार को संविदा अधिनियम, 1872 के तहत अनिवार्य आवश्यकताओं का पालन करना होगा जैसे कि संविदा करने की क्षमता और स्वस्थ दिमाग की उपस्थिति। हालाँकि, जब "औपचारिक" वैधता की बात आती है जिसमें हस्ताक्षर, टिकट, स्टाम्पो की आवश्यकताएँ शामिल हो सकती हैं; मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ कि समझौतें को " 'शून्य" बनाने के लिये स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 के तहत साक्ष्य संबंधी प्रतिबंध को संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 2 (जी) और (2एच) के साथ जोड़ा जाना चाहिए। उदाहरण के लिए,संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 10 के अनुसार, मौखिक करार भी हैंA एक वैध लेकिन मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 7 में प्रदान किए गए मध्यस्थता करार के "रूप" के अनुसार, इसे अनिवार्य रूप से लिखित रूप में होना चाहिए। ध्यान देने योग्य एक अन्य बात यह है कि यदि कोई मध्यस्थता करार उदाहरण के लिए गैर–संविदात्मक भी हो सकता है और इसमें हस्ताक्षर की आवश्यकता नहीं है, तो स्टाम्प अधिनियम, 1899 और संविदा अधिनियम, 1872 के सामान्य प्रावधान मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 (6) के तहत प्रस्तुत मध्यस्थता करार की "औपचारिक" वैधता को साबित करने के लिए कहाँ तक लागू हो सकते हैं? संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 2 (एच) में कहा गया है कि विधि द्वारा प्रर्वतनीय करार एक संविदा है, लेकिन मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 7 का एक सादा अध्ययन यह भी साबित कर सकता है कि एक "मध्यस्थता करार" गैर–संविदात्मक हो सकता है। इसका मतलब यह नहीं है कि संविदा अधिनियम , 1872 या स्टाम्प अधिनियम, 1899 के प्रावधान लागू नहीं होंगे। जैसा कि विद्या द्रोलिया (उपर्युक्त) में ठीक ही कहा गया है और मेरे विद्वान भाई न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ ने उल्लेख किया है, संविदा अधिनियम, 1872 के तहत संविदा के गठन की पूर्व शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए जिसमें पक्षों की स्वतंत्र सहमति , धोखाधड़ी का अभाव और गलत प्रतिनिधित्व आदि शामिल हैं। हालाँकि, मेरे विचार में, इस संदर्भ में, हम एक औपचारिक आवश्यकता से

चिंतित हैं। मुद्दा यह है कि जब कोई विशेष विधि मध्यस्थता करार की "औपचारिक" वैधता के लिए विशिष्ट आवश्यकताओं का प्रावधान करता है, तो इसे सामान्य विधि द्वारा अमान्य नहीं किया जा सकता है।एक मध्यस्थता करार में विशेष विशेषताएँ [59] होती हैं और यह उस अर्थ में एक पारंपरिक करार नहीं है। इसके अलावा, स्टाम्प अधिनियम, 1899 के प्रावधानों में से कोई भी हमें इस निष्कर्ष पर नहीं ले जाएगा कि एक मध्यस्थता करार अमान्य/अमान्य होगा जब उस पर स्टाम्प नहीं लगाई जाएगी। इस प्रकार, गरवारे (ऊपर) में यह निष्कर्ष कि एक अप्रकाशित करार को अमान्य कर दिया जाएगा, न केवल मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 7 के साथ असंगत है, बल्कि स्टाम्प अधिनियम, 1899 के साथ भी असंगत है, जिसके अनुसार एक दस्तावेज़ को साक्ष्य में अधिक से अधिक अस्वीकार्य बनाया जा सकता है।

78.3 मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के एक विशेष विधि होने के संदर्भ में, सी. आर. दत्ता का वाणिज्यिक और घरेलू मध्यस्थता [60] टिप्पणियों से संबंधित विधि शीर्षक वाला ग्रंथः

> "1996 का अधिनियम एक विशेष अधिनियम और एक केंद्रीय अधिनियम है जिसमें यह प्रावधान है कि जहां तक इस अधिनियम द्वारा शासित मामलों का संबंध है, यह अधिनियम किसी भी अन्य विधि पर प्रबल होगा। विधि का प्राधिकरण

न्यायालयों को बंद कर दिया गया है। न्यायालय इस अधिनियम के भाग । द्वारा निपटाए गए किसी भी तरीके से हस्तक्षेप नहीं कर सकती हैं जब तक कि ऐसा करने के लिए विशेष रूप से सशक्त न हो। एक न्यायिक प्राधिकारी अधिनियम की धारा 8, 9, 11, 13, 14, 16, 17, 27, 34 ,36, 37, 42, 43, 45, 50,54, 58, 59,70,74,77,81 और 82 में निर्दिष्ट सीमा तक हस्तक्षेप या अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। भारत संघ बनाम पांपुलर कंस्ट्रक्शन कंपनी 2001 8 एस. सी. सी. 470, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी बनाम कुमार टेक्सचराइजर्स ए. आई. आर. 1999 बाम 118 देखें) धारा 5 न्यायालयों को 1996 में प्रदान किए गए तरीके को छोड़कर मध्यस्थता की प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने से रोकती है। सीडीसी फाइनेंशियल सर्विसेज (मॉरीशस) लिमिटेड बनाम बी. पी. आई. कम्युनिकेशंस लिमिटेड 2005 (पूरक) अरब एलआर 558 (एससी) "

78. 4 पुनरावृत्ति की कीमत पर, आइए अब अधिनियम की विशेष प्रकृति को समझने के लिए मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 5 का उल्लेख करें। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मध्यस्थता अधिनियम, 1996 एक विशेष विधान है और धारा 5 एक गैर–अस्थाई खंड के साथ शुरू होती है जो मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के अलावा किसी अन्य विधि के तहत कार्य करने वाले न्यायिक अधिकारियों की शक्तियों को खत्म कर देंती है। जैसा कि हस्तक्षेपकर्ता के विद्वान वकील, देबेश पांडा द्वारा तर्क दिया गया है, अधिनियम की विशेष प्रकृति भी गैर से स्थापित की गई है मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 5 में अवरोधक खंड, जिस पर मध्यस्थता अधिनियम एक स्व–निहित संहिता होने के कारण, न्यायमूर्ति इंदु मल्होत्रा [61] निम्नलिखित टिप्पणी करती हैंः

59. ओ. पी. मल्होत्रा और इंदु मल्होत्रा, द लॉ एंड प्रैक्टिस ऑफ आर्बिट्रेशन एंडसुलह, लेक्सिस नेक्सिस, दूसरा संस्करण; पी. 270

60. सी. आर. दत्ता, वाणिज्यिक और घरेलू मध्यस्थता से संबंधित विधि (एडीआर के साथ)पी. 98; भारत संघ बनाम लोकप्रिय निर्माण कंपनी 2001 (8) एस. सी. सी. 470; यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड. वी. कुमार टेक्सचराइजर्स ए. आई. आर. 1999 बॉम 118 एएच.
61 न्यायमूर्ति इंदु मल्होत्रा, मध्यस्थता के विधि पर टिप्पणी, खंड। I, चौथा संस्करण, पी. 248 ए

"मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 एक स्व–निहित संहिता है जो मध्यस्थता से संबंधित विधि को नियंत्रित करती है, जिसमें धारा 5 भी शामिल है जो इसे कानूनों पर एक प्रबल प्रभाव देती है। एक वर्जन जब यह माना जाता है कि 1996 का अधिनियम एक स्व–निहित संहिता है और संपूर्ण है, तो यह नकारात्मक महत्व रखता है कि केवल ऐसे कार्य किए जा सकते हैं जो क़ानून में अनुमत हैं, और कोई अन्य नहीं।"

78.5 धारा 5 में "इस प्रकार प्रदान की गई" अभिव्यक्ति का उपयोग, भाग । में निर्दिष्ट को छोड़कर सभी प्रकार के हस्तक्षेप की अवहेलना करता है। ऐसा इरादा गैर–अस्थाई खंड की भाषा से स्पष्ट है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, यह प्रावधान एक और उदाहरण है जहां संसद ने1985 कें UNCITRAL G में मॉडल विधि में प्रयुक्त भाषा से एक कदम आगे बढ़कर काम किया है ।

78.6 सामान्यता विशेष का सिद्धांत गैर अपमानजनक अर्थात सामान्य विधि भारतीय में अच्छी तरह से स्थापित विशेष विधि के अनुरूप होगा। एक न्यायशास्त्र मध्यस्थता अधिनियम 1996 धारा 8 पर अय्यासामी (ऊपर) में चंद्रचूड़ डी. वाई. जे. की सहमति में (जैसा कि उन्होंने कहा था)

"44. ... .एक वर्जन मध्यस्थता अधिनियम की धारा 8 के उचित अनुपालन में एक आवेदन दायर किए जाने के बाद, दीवानी अदालत का दृष्टिकोण यह देखने के लिए नहीं होना चाहिए कि अदालत का अधिकार क्षेत्र है या नहीं। यह देखना चाहिए कि क्या इसके अधिकार क्षेत्र को हटा दिया गया है। इन दोनों दृष्टिकोणों के बीच में बहुत अंतर है। एक वर्जन जब यह अदालत के ध्यान में लाया जाता है कि एक विशेष क़ानून के तहत निर्धारित प्रक्रिया के संदर्भ में उसकी अधिकारिता को छीन लिया गया है, तो दीवानी अदालत को पहले यह देखना चाहिए कि क्या विशेष क़ानून के तहत प्रक्रिया के संदर्भ में अधिकार क्षेत्र को हटा दिया गया है या अनुपालन किया गया है। सामान्य विधि को विशेष विधि के अधीन होना चाहिए । ऐसी स्थिति में, दृष्टिकोण यह देखने के लिए नहीं होगा कि सामान्य विधि के तहत दीवानी अदालत में अभी भी अधिकार क्षेत्र है या नहीं।इस तरह के दृष्टिकोण केवल विवादों के समाधान में देरी करेंगे और शिकायतों के निवारण को जटिल बना देंगे और निश्चित रूप से अदालत में लंबित मामलों में अनावश्यक रूप से वृध्दि होगी ।"

78.7 यह ध्यान में रखते हुए कि मध्यस्थता अधिनियम, 1996 एक विशेष विधान है, और यह कि सामान्य विधि को विशेष विधि के अधीन होना चाहिए, आइए अब हम इस संदर्भ के उद्देश्य के लिए सामंजस्यपूर्ण निर्माण के सिद्धांत की जांच करें।

(ii) सामंजस्यपूर्ण निर्माण

79. सेंट स्टीफन कॉलेज बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय [62] कें मामलें में अपनी आंशिक असहमति व्यक्त करते हुए न्यायमूर्ति कासलीवाल द्वारा बताए गए सामंजस्यपूर्ण निर्माण के सिद्धांत के अनुप्रयोग का उल्लेख करना उचित होगाः

> "140. ... व्याख्या का सुनहरा नियम यह है कि शब्दों को सामान्य, प्राकृतिक और व्याकरणिक अर्थ में पढ़ा जाना चाहिए और सामंजस्यपूर्ण निर्माण का सिद्धांत केवल इस नियम को लागू करता है कि जहां किसी विषय से संबंधित विधि का सामान्य प्रावधान है, और एक ही विषय से संबंधित विशेष प्रावधान है, तो सामान्य पर विशेष हावी होता है। यदि इसका निर्माण इस तरह से नहीं किया जाता है तो इसका परिणाम यह होगा कि विशेष प्रावधान पूरी तरह से विफल हो जाएगा। हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने वारबर्टन बनाम लवलैंड [(1831) 2 डाउ और सी. एल. 480 में कहाः 6 ई. आर. 806:(1824–34) सभी ई. आर. प्रतिनिधि 589 (एच. एल.)] निम्नानुसार हैंः(ई. आर. पी. 814) 'निर्माण के किसी भी नियम के लिए यह आवश्यक नहीं हो सकता है कि जब किसी क़ानून के एक भाग के शब्द एक स्पष्ट अर्थ व्यक्त करते हैं. तो क़ानून के दूसरे भाग को पेश करना आवश्यक होगा जो कम स्पष्टता के साथ बोलता है, और जिसके शब्द ऐसे निर्माण में सक्षम हो सकते हैं, जिससे [प्रथम भाग] [63] की प्रभावशीलता को कम करने की संभावना हो।'

79.1 पहले उद्धृत तीन अलग–अलग अधिनियमों के प्रावधानों में विसंगतियों के सामंजस्यपूर्ण अध्ययन पर, हम पाते हैं कि सामान्य विधि को विशेष विधि को इस अर्थ में स्वीकार करना चाहिए कि एक मध्यस्थता करार को सामान्य विधि द्वारा अपर्याप्त स्टाम्प लगाने पर अमान्य नहीं किया जा सकता है, विशेष रूप से जब मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के किसी भी प्रावधान में स्टाम्प लगाने का प्रावधान नहीं है। अधिनियम की विशेष प्रकृति और न्यूनतम न्यायिक हस्तक्षेप के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 7 के तहत मध्यस्थता करार की "औपचारिक" वैधता की आवश्यकता को प्राथमिकता दी जाएगी।निर्माण के नियम को लागू करना कि एक विशिष्ट विधि और एक सामान्य विधि के बीच संघर्ष के मामलों में, विशिष्ट विधि प्रचलित है और संविदा अधिनियम, 1872 जैसे सामान्य विधि केवल ऐसे मामलों पर लागू होते हैं जो विशेष विधि के दायरे में नहीं आते हैं; इसलिए मेरा मानना है कि संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 2 (ई), 2(जी), 2(एच) औपचारिक वैधता के मामले में विशेष विधि यानी मध्यस्थता अधिनियम, 1996 में निहित धारा 7 को ओवरराइड नहीं कर सकती है।

79.2. इसके अलावा, जब मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 में क़ानून के शब्द में में उल्लिखित "वैधता" या यहां तक कि "निष्क्रिय और निष्पादित करने में असमर्थ" का उल्लेख नही है जैसा कि मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 45 में उल्लेखित है या " प्रथम दृष्टया नहीं " वैध मध्यस्थता करार का उल्लेख नहीं किया गया है। यह समझ में आया कि संविदा अधिनियम, 1872 जैसे एक अलग क़ानून में सामान्य शब्द

63 आनंदजी हरिदास एंड कंपनी (पी) लिमिटेड बनामएस. पी. कस्तूर [ए. आई. आर 1968 एस. सी. 565:(1968) 1 एससीआर 661], पटना इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट बनाम लक्ष्मी देवी [एआईआर 1963 एससी 1077:1963 पूरक (2) एससीआर 812], इथियोपियन एयरलाइंस बनाम गणेश नारायण साबू [(2011) 8 एससीसी 539:(2011) 4 एस. सी. सी. (सी. आई. वी.) 217], उस्मानभाई दाऊदभाई मेमन बनाम गुजरात राज्य (1988) 2 एस. सी. सी.271 :1988 एस. सी.

सी. (सी. आर. आई.) 318], दक्षिण भारत निगम।(पी) लिमिटेड बनामराजस्व बोर्ड [आकाशवाणी]1964 एससी 207:(1964) 4 एस. सी. आर. 280], महाराष्ट्र राज्य माध्यमिक और उच्च माध्यमिक शिक्षा बोर्ड बनाम परितोष भुपेशकुमार सेठ [(1984) 4 एस. सी. सी. 27] ए.

विशेष विधि में उपयोग किए गए विशिष्ट शब्दों को ओवरराइड नहीं कर सकते हैं।कहने का अर्थ यह है कि एक मध्यस्थता करार को धारा 11 न्यायाधीश द्वारा अपर्याप्त मुद्रांकन पर "शून्य" नहीं बनाया जा सकता है जब जाँच केवल मध्यस्थता करार के "अस्तित्व" तक ही सीमित है न कि और "वैधता" तक।

79.3. स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 के तहत साक्ष्य पर प्रतिबंध पर वापस आते हुए यह समझना महत्वपूर्ण है कि चूंकि धारा 11 के न्यायाधीश का दायरा सीमित है, इसलिए अदालत ऐसे मामलों में साक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकती है। मध्यस्थता अधिनियम , 1996 में 2015 के संशोधन से पहले, एस.बी.पी. (उपरोक्त) में निर्धारित स्थिति के अनुसार, मुख्य न्यायाधीश के पास शपथ पत्र सहित साक्ष्य प्राप्त करने और मध्यस्थ की नियुक्ति के चरण में साक्ष्य दर्ज करने की व्यापक शक्तियां थीं। संशोधित धारा 11 के तहत, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, दायरा मध्यस्थता करार के "अस्तित्व" की जांच तक "सीमित" है। इस प्रकार, संशोधन के बाद, यह निश्चित रूप से साक्ष्य को स्वीकार नहीं कर सकता है। धारा 11 न्यायालय "साक्ष्य प्राप्त करने का प्राधिकरण नहीं है" जैसा कि स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 में दिया गया है। इसके अलावा, यह एक निर्विवाद स्थिति है कि मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 35 एक मध्यस्थ को साक्ष्य को परिबद्ध करने या स्वीकार करने से नहीं रोकती है। इसमें कहा गया है कि "कोई भी व्यक्ति जिसके पास विधि या पक्षों की सहमति से साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार है।" इस प्रकार, स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 के तहत वैधानिक प्रतिबंध तब लागू नहीं होगा जब मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 की कार्यवाही के चरण में कोई दस्तावेज प्रस्तुत किया जाता है।

79.4. विशेष विधि की व्याख्या इस तरह से करना आवश्यक है जो इसके विशिष्ट प्रावधानों को प्रभावी बनाता है, साथ ही यह भी सुनिश्चित करता है कि यह यथासंभव सामान्य विधि के अनुरूप है। धारा 11 के स्तर पर शास्ति लगाने से स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 के तहत वैधानिक प्रतिबंध के कारण मध्यस्थता की कार्यवाही शुरू में ही रुक जाएगी। स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 और स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 11 का सामंजस्य स्थापित करना है मध्यस्थता अधिनियम, 1996 धारा 11 न्यायाधीश के लिए मध्यस्थ/कलेक्टर को आवश्यक स्टाम्पिंग और ज़ब्त करने को स्थगित करने के लिए है, जैसा कि लागू हो। स्टाम्प एक्ट, 1899 की धारा 35 के पढनें से यह स्पष्ट होता है कि यह एक मध्यस्थ या कलेक्टर को बिना स्टाम्प वाले /अपर्याप्त रूप से स्टाम्प वाले दस्तावेज़ को परिबद्ध करने से नहीं रोकता है।

79.5. इस संदर्भ में, भले ही हम यह मान लें कि स्टाम्प अधिनियम, 1899 एक मूल विधि है, हमारे द्वारा लिया गया दृष्टिकोण किसी भी महत्वपूर्ण तरीके से स्टाम्प अधिनियम, 1899 को कमजोर करने का इरादा नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि प्राथमिक उद्देश्य राजस्व सृजन हैं फिर भी इसें प्राप्त किया जा सकता है, भले ही स्टाम्प शुल्क का संग्रह मध्यस्थ के लिये स्थगित कर दिया जाए, न कि मध्यस्थता के लिए मामले को संदर्भित

करने वाले न्यायाधीश के स्तर पर। इसके अतिरिक्त, यदि संदर्भित न्यायाधीश के समक्ष ऐसा विवाद उठाया जाता है, तो वह मध्यस्थ को स्टाम्प शुल्क न होनें/ स्टाम्प शुल्क के कमी के पहलू पर भी आगाह कर सकता है।

संबंधित लिखत इस तरह का पाठ्यक्रम राजस्व और मूल विधि के हितों की भी रक्षा करेगा।

के. <u>लेन–देन की बदलती प्रकृति और प्रौद्योगिकी के आगमन का प्रभाव</u>

80. जैसा कि हम इस आधार पर आगे बढ़ रहे हैं कि एक मध्यस्थता करार स्टाम्प शुल्क के लिए उत्तरदायी है, यह न्यायालय तकनीकी प्रगति से भी अनजान नहीं हो सकता है क्योंकि वाणिज्यिक लेनदेन कलम और कागजी करारों से परे जा रहे हैं। मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 7 में 2015 का संशोधन, जो मध्यस्थता करार को परिभाषित करता है, इलेक्ट्रॉनिक संचार को मान्यता देता है, इस प्रक्रिया को UNCITRAL मॉडल विधि के अनुच्छेद 7 के अनुरूप लाता है जिसे 2006 में संशोधित किया गया था ।इसने अंतर्राष्ट्रीय संविदा प्रथाओं के अनुरूप मध्यस्थता करार के रूप का आधुनिकीकरण और विस्तार किया। पत्रों, टेलेक्स, तार या दूरसंचार के अन्य साधनों का आदान–प्रदान इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के माध्यम से संचार जो एक रिकॉर्ड प्रदान करता है करार को अब वैध मध्यस्थता करार के रूप में मान्यता दी गई है।

80.1. डॉ. पीटर बाइंडर ने UNCITRAL मॉडल लॉ ज्यूरिसडिक्शन [64] में अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता और मध्यस्थता में नोट किया:

> ""पत्रों, टेलेक्स, तार या दूरसंचार के अन्य साधनों के आदान–प्रदान" में शब्दांकन मॉडल विधि के लचीलेपन को इंगित करता है। सख्त प्रत्यक्ष के बजाय पूरी तरह से "करार के रिकॉर्ड" पर तैयार होकर संचार के भविष्य के साधनों की ओर करार पर हस्ताक्षर।संयोग से, वॉरसॉ कन्वेंशन के मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल नंबर 4 के अनुच्छेद 5 (धारा III), जो एक एयर वेबिल की औपचारिक आवश्यकताओं से संबंधित है, ने शब्दों के लिए प्रोत्साहन प्रदान किया "कोई भी अन्य साधन जो प्रदर्शन किए जाने वाले वाहन के रिकॉर्ड को संरक्षित करेगा, प्रेषक की सहमति से, एक एयर वेबिल की डिलीवरी के लिए प्रतिस्थापित किया जा सकता है।" प्रोटोकॉल में विशेष रूप से संचार के इलेक्ट्रॉनिक साधनों को ध्यान में रखा गया था, क्योंकि विमानन उद्योग व्यवसाय में इस तकनीक का उपयोग करने वाले पहले लोगों में से था।"

80.2 उपरोक्त से तार्किक रूप से जो मिलता है वह यह है कि पारंपरिक कानूनों को अपर्याप्त स्टाम्पिग पर करारों के इन नए रूपों को अप्रवर्तनीय नहीं बनाना चाहिए। हाल ही में, स्टॉकहोल्डिंग कार्पोरेशन आफ इंण्डिया लिमिटेड को ई–स्टाम्प सेवाएं प्रदान करने के लिए अधिकृत किया गया है, जो कुछ भारतीय राज्यों के लिए स्टाम्प शुल्क के भुगतान की अनुमति देता है। भारतीय स्टाम्प अधिनियम (स्टॉक एक्सचेंज, क्लियरिंग कॉर्पोरेशन और

डिपॉजिटरी के माध्यम से स्टाम्प–शुल्क का संग्रह) नियम 2019 अखिल भारतीय प्रतिभूति बाजार के निर्माण और राजस्व बढ़ाने के लिए वित्त अधिनियम, 2021 लाया गया है। इसने इलेक्ट्रॉनिक रूप में भी हस्ताक्षर को शामिल करने के लिए "निष्पादन" की परिभाषा में संशोधन किया।

64 नोट 40 पर सुप्रा; पी. 67–68 ए

80.3. तथापि, स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 2 (11) में "विधिवत मुद्रांकित" की परिभाषा अपरिवर्तित बनी हुई हैः

"'एक लिखत पर लागू किए गए 'विधिवत मुद्रांकित' का अर्थ है कि लिखत पर एक चिपकने वाली या प्रभावित स्टाम्प होती है जो कम नहीं होती है। उचित राशि की तुलना में और यह कि इस तरह की स्टाम्प को कुछ समय के लिए लागू विधि के अनुसार चिपकाया या इस्तेमाल किया गया है।"

80.4 स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 62 में ऐसे दस्तावेजो के लिये दंड का पा्रवधान है जिस पर "विधिवत स्टाम्पित" नहीं किया गया है। इस चर्चा में, हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि स्टाम्प अधिनियम, 1899 लगभग 125 साल पहले अधिनियमित किया गया था और विधि निर्माता विधि की प्रगति और असंख्य मुद्दों पर विचार नहीं कर सकते थे जो प्रौद्योगिकी के आगमन और मध्यस्थता अधिनियम, 1996 जैसे नए अधिनियमों के माध्यम से सामने आएंगे। भारत में ई–अनुबंधों से संबंधित कानूनी ढांचा अभी भी शुरुआती चरण में है।

80.5. रिचर्ड सस्किंड ने अपनी पुस्तक [65] द एंड आफ लायर्स" में लिखा है। कानूनी सेवाओं की प्रकृति पर पुनर्विचार ", सुझाव देता है कि नया कृत्रिम बुद्धिमत्ता और ब्लॉक चेन जैसी प्रौद्योगिकियां और प्रक्रियाएं भविष्य में मध्यस्थता प्रक्रिया को सरल और सुव्यवस्थित करने में सक्षम हो सकती हैं।अब हमारे पास वाणिज्यिक लेन–देन के क्षेत्र में स्मार्ट संविदा और मेटावर्स की घटना है जहां प्रौद्योगिकी और कृत्रिम बुद्धिमत्ता एकीकृत हैं। कानूनी ढांचे में विकास को प्रौद्योगिकी में इस तरह के विकासशील रुझानों के अनुरूप होना चाहिए और आज और भविष्य के लिए उनके प्रभावों के प्रति जागरूक होना चाहिए।

80.6. उभरते रुझानों को ध्यान में रखते हुए, भारत के मुख्य न्यायाधीश ने हाल ही में एक सम्मेलन में कहा [66] कि दुनिया भर में कानूनी पेशेवर स्मार्ट संविदा मध्यस्थता की सिफारिश कर रहे हैं।

स्मार्ट अनुबंधों और विवादों को हल करने के लिए मध्यस्थता का उपयोग कैसे किया जा सकता है, इसका वर्णन करते हुए मुख्य न्यायाधीश डी. वाई. चंद्रचूड़ ने टिप्पणी कीः

> "प्रौद्योगिकी और कृत्रिम बुद्धिमत्ता वाणिज्यिक लेन–देन में एकीकृत किया गया हैं। प्रौद्योगिकी और अनुबंधों के एकीकरण का ऐसा ही एक उदाहरण एक स्मार्ट संविदा

है, जिसमें संविदा के नियमों और शर्तों को कूटबद्ध किया जाता है। संविदा की शर्तों का उल्लंघन स्वचालित रूप से संविदा को लागू कर देगा।

65 रिचर्ड सस्किंड, वकीलों का अंत? कानूनी सेवाओं की प्रकृति पर पुनर्विचार करना, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2010

66 डॉ. डी. वाई. चंद्रचूड़, अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनःवैश्वीकरण के युग में मध्यस्थता (चौथा संस्करण, दुबई, 19–3–2022)।

80.7. आधुनिक मध्यस्थता [67] विधि फॉर्म पर सार पर केंद्रित है। प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से पेश हुए विद्वान वकील श्री रमाकांत रेड्डी ने 2008 में ग्रेट ऑफशोर लिमिटेड बनाम सी. ईरानी ऑफशोर इंजीनियरिंग एंड कंस्ट्रक्शन लिमिटेड [68] मामले में दिए गए एक फैसले का उल्लेख किया। जहाँ न्यायाधीश दलवीर भंडारी के माध्यम से बोलते हुए न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित कियाः

"59. न्यायालय को विधायी इरादे का अनुवाद करना पड़ता है, विशेष रूप से जब अधिनियम के "मुख्य उद्देश्यों" में से एक के प्रकाश में देखा जाता हैः"मध्यस्थता प्रक्रिया में न्यायालयों की पर्यवेक्षी भूमिका को कम करना। [देखिएःधारा 4 (v) के उद्देश्यों और कारणों के विवरणअधिनियम]। यदि यह न्यायालय टिकटों, स्टाम्पों और मूल जैसी कई अतिरिक्त आवश्यकताओं के लिये हम अपनी भूमिका बढायगें, न कि इसें कम करेगें, इसके अलावा, व्यापार करने की लागत भी बढ़ेगी। इस तरह की औपचारिकताओं को लागू करने में समय लगता है। इससे भी अधिक चिंताजनक बात यह है कि मध्यस्थता करने के पक्षकारों के इरादे को औपचारिकता द्वारा विफल कर दिया जाएगा। इस तरह का रुख मध्यस्थता के विचार के विपरीत होगा, जिसमें दुनिया भर के न्यायाधिकरण आम तौर पर यह सुनिश्चित करने के लिए पीछे की ओर झुकते हैं कि मध्यस्थता करने के पक्षों के इरादे को बरकरार रखा जाए।तकनीकीताओं को जोड़ना पक्षों की "वसीयत की स्वायत्तता" (एल 'ऑटोनोमी डी ला वोलोंटी), यानी उनकी इच्छाओं को बाधित करता है।[इस सिद्धांत पर एक सामान्य चर्चा के लिए पृष्ठ 4 और 53 पर लॉ एंड प्रैक्टिस ऑफ इंटरनेशनल कमर्शियल आर्बिट्रेशन, एलन रेडफर्न और मार्टिन हंटर, स्ट्रीट एंड मैक्सवेल, लंदन, 1986 देखें।

60. डाक टिकट, स्टाम्प और यहां तक कि हस्ताक्षर जैसी तकनीकें लालफीताशाही हैं जिन्हें पार्टियों को वह प्राप्त करने से पहले हटा दिया जाना चाहिए जो वे वास्तव में चाहते हैं–उनके विवाद का एक कुशल, प्रभावी और संभावित रूप से सस्ता समाधान। स्वतंत्रता की स्वायत्तता सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार विधि पर संयुक्त राष्ट्र आयोग ("UNCITRAL") अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता पर मॉडल विधि, 1985 के नीतिगत उद्देश्यों में निहित है, जिस पर हमारा मध्यस्थता अधिनियम आधारित है। [अधिनियम की प्रस्तावना देखें]।न्यायालयों को विधायी इरादे को लागू करना चाहिए। न्यायालयों के लिए कई अतिरिक्त औपचारिकताओं को जोड़ना अनुचित और अवांछनीय होगा जिनकी

परिकल्पना विधि द्वारा नहीं की गई है। न्यायालय के निर्देश विधायी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए होने चाहिए।"

67 टिप्पणी 59 पर सुप्रा; पी. 274

68 (2008) 14 एस. सी. सी. 240 ए

80. 8 उपरोक्त मामले पर भरोसा करते हुए, ट्राइमेक्स इंटरनेशनल एफजेडई बनाम वेदांत एल्यूमीनियम लिमिटेड,[69] भारत में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि किसी संविदा का कार्यान्वयन केवल इसलिए प्रभावित नहीं हो सकता है क्योंकि प्रस्ताव और स्वीकृति ईमेल के माध्यम से की गई थी।

80.9 विकसित विधि के संदर्भ में, यह देखना महत्वपूर्ण है कि हालांकि एक मध्यस्थता करार अवशिष्ट प्रविष्टि के तहत स्टाम्प शुल्क के लिए उत्तरदायी है, स्टाम्प की तकनीकीता मध्यस्थता कार्यवाही में दक्षता और प्रभावकारिता सुनिश्चित करने में बाधा डालती है। मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 7 के अनुसार एक मध्यस्थता करार को वैध होने के लिए अनिवार्य रूप से हस्ताक्षर की भी आवश्यकता नहीं होती है। स्टाम्प अधिनियम, 1899 यह अतीत में निहित है और मध्यस्थता अधिनियम, 1996 जैसे लेनदेन और अधिनियमों की बदलती प्रकृति को ध्यान में नहीं रखता है। यह एक ऐसा पहलू है जिस पर विधायिका को ध्यान देने की आवश्यकता होगी।

जे. पृथकता का सिद्धांत

81. ऐसा प्रतीत होता है कि अदालत ने गरवारे (ऊपर) में पृथकता की अवधारणा को खारिज कर दिया जब उसने कहाः

> "15. ... .प्रत्यर्थी/प्रतिवादी की ओर से विद्वान वकील द्वारा दिए गए इस तर्क को स्वीकार करना मुश्किल है कि धारा 16 यह स्पष्ट करती है कि मध्यस्थता करार का अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व है, और 1996 के अधिनियम की धारा 11 के तहत एक आवेदन पर निर्णय लेते समय इसे लागू किया जाना चाहिए।

81.1. ऐतिहासिक रूप से, एक मध्यस्थता करार को मुख्य संविदा [70] के सहायक के रूप में माना जाता था। भले ही मुख्य संविदा शून्य या अप्रवर्तनीय पाया गया हो, मध्यस्थता करार में शामिल था इसमें भी शून्य [71] माना गया था। इसने एक विवाद समाधान तंत्र के रूप में मध्यस्थता की प्रभावशीलता को कम कर दिया क्योंकि इसने मध्यस्थता करारों की प्रवर्तनीयता को अंतर्निहित संविदा की वैधता पर निर्भर बना दिया। मध्यस्थता खंडों को लगभग हर क्षेत्राधिकार में समान रूप से पक्षकारों के अंतर्निहित संविदा का "एक अभिन्न

अंग" सें अलग माना जाता है । इसे अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता सम्मेलनों, राष्ट्रीय मध्यस्थता विधानों, न्यायिक निर्णयों, संस्थागत मध्यस्थता नियमों और मध्यस्थता पुरस्कारों में परिलक्षित एक सामान्य सिद्धांत के रूप में माना जाता है [72]।

69 2010 (1) स्केल 574
70 गैरी बी. बोर्न, अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता (तीसरा संस्करण।, क्लूवर लॉ इंटरनेशनल 2014) पी. 380 ए
71 भारत संघ बनाम किशोरीलाल गुप्ता एंड ब्रदर्स (1959) 1 एससीआर 493
72 सुप्रा नोट 70 पर; पृष्ठ 379–380।

पृथकता सिद्धांत की प्रारंभिक वैधानिक मान्यता को संयुक्त राज्य अमेरिका में भी मान्यता दी गई है, जिसमें पृथककरणीयता का अनुमान ठोस संघीय मध्यस्थता विधि का मामला है।[73] अंग्रेजी विधि में भी, पृथकता का सिद्धांत अंग्रेजी मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 7 के तहत संहिताबद्ध है। इसें कई न्यायालयों में मध्यस्थता की आधारशिलाओं में से एक के रूप में पहचाना गया है।

81.2 अपीलार्थियों के लिए विद्वान वकील, गगन सांघी द्वारा दिया गया तर्क कि पृथक्करण का सिद्धांत एक कानूनी कल्पना है, भारत में सुस्थापित न्यायशास्त्र के आलोक में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इस सिद्धांत को इस न्यायालय द्वारा लगातार बरकरार रखा गया है।[74] इसके अलावा यह मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 16 (1) में संहिताबद्ध है जो इस प्रकार हैं –ः

> "16(1) मध्यस्थ न्यायाधिकरण मध्यस्थता करार के अस्तित्व या वैधता के संबंध में किसी भी आपत्ति पर निर्णय सहित अपनी अधिकारिता पर निर्णय दे सकता है, और उस उद्देश्य के लिए, –
>
> (i) एक मध्यस्थता खंड जो एक संविदा का हिस्सा है, उसे संविदा की अन्य शर्तों से स्वतंत्र करार के रूप में माना जाएगा; और
>
> (ii) मध्यस्थता न्यायाधिकरण का यह निर्णय कि संविदा शून्य है, न्यायिक रूप से मध्यस्थता खंड की अयोग्यता को लागू नहीं करेगा।"

81.3 एन.एन. ग्लोबल (ऊपर) में इस न्यायालय ने आधुनिक और समकालीन मध्यस्थ न्यायशास्त्र में इस सिद्धांत के महत्व को ध्यान में रखते हुए अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस में निर्णयों पर चर्चा कीः

> "4. मध्यस्थता न्यायशास्त्र में यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि एक मध्यस्थता करार एक अलग और अलग करार है, जो उस मूल वाणिज्यिक संविदा से स्वतंत्र है जिसमें वह अंतर्निहित है। यह इस आधार पर आधारित है कि जब पक्ष एक मध्यस्थता खंड वाले वाणिज्यिक संविदा में प्रवेश करते हैं, तो वे दो अलग–अलग करार कर रहे होते हैं अर्थात (i) मूल संविदा जिसमें वाणिज्यिक लेनदेन से उत्पन्न होने वाले पक्षों के अधिकार और दायित्व शामिल होते हैं; और, (ii) मध्यस्थता करार जिसमें मध्यस्थता के माध्यम से अपने विवादों को हल करने के लिए पक्षों का बाध्यकारी दायित्व शामिल है।"

81.4 मेरे विद्वान भाई, न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ ने बहुमत की राय में कहा कि संदर्भ का पूरा आधार हटा दिया गया है क्योंकि हम इस आधार पर आगे बढ़ रहे हैं कि एक स्वतंत्र मध्यस्थता करार भी स्टाम्प शुल्क के लिए उत्तरदायी है। उनकी राय है कि मध्यस्थता करार को एक अलग करार के रूप में मानने के सिद्धांत के पीछे का उद्देश्य एक

73 बकये चेक कैशिंग इंक. बनामकार्डेग्ना, 2006 एससीसी ऑनलाइन यूएस एससी 14
74 राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ इंडिया लिमिटेड बनाम गेन्स ट्रेडिंग लिमिटेड (2007) 5 एस. सी. सी. 692; नैहाटी जूट मिल्स लिमिटेड बनाम खयालिराम जगन्नाथ ए. आई. आर. 1968

एस. सी. 522; पी. मनोहर रेड्डी और ब्रदर्स।बनाम महाराष्ट्र कृष्णा घाटी विकास निगम और अन्य (2009) 2 एस. सी. सी. 494 ए

तंत्र बनाना है, जिसमें मध्यस्थता करार संविदा में बना रहता है ताकि मध्यस्थता करार के भीतर आने वाले विवादों को हल किया जा सके, सही है। लेकिन मैं उस प्रस्ताव से सहमत होने में असमर्थ हूं जो इस बात का प्रचार करता है कि चूंकि एक मध्यस्थता करार स्टाम्प शुल्क के लिए उत्तरदायी है, इसलिए पृथक्करण की धारणा हमें इस मामले में आगे नहीं ले जाती है। मुझे इस तरह के प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए अपनी अनिच्छा का कारण बताने दें ।

81.5 जैसा कि इस राय में पहले कहा गया है, पृथक्करण सिद्धांत मध्यस्थता खंड की रक्षा करता है, भले ही मुख्य संविदा की वैधता पर हमला किया गया हो। इसलिए, यदि कोई मध्यस्थता करार अप्रभावित रहता है, भले ही मुख्य संविदा धोखाधड़ी या गलत प्रतिनिधित्व के मुद्दों पर शून्य हो, तो इसे तार्किक रूप से एक मध्यस्थता करार को स्टाम्पिंग जैसे तकनीकी/औपचारिकता पर शून्यनही बनाना चाहियें। पृथक्करण के सिद्धांत के पीछे अंतर्निहित तर्क को तब निरर्थक बना दिया जाएगा। यह विचार कि एक मध्यस्थता करार अपनी वैधता आवश्यकताओं के साथ अलग और स्वतंत्र है, यह सुनिश्चित करने के लिए है कि मध्यस्थता करार की प्रवर्तनीयता में कोई बाधा न हो। यह सिद्धांत उन परिस्थितियों को कम करने के लिए भी महत्वपूर्ण है जिनमें मध्यस्थता प्रक्रिया को रोका/विलंबित किया जा सकता है। एस. एम. एस. टी. (सुप्रा) में, यह उल्लेख किया गया था कि पृथकता का सिद्धांत ए का विस्तार कर सकता है। एक अपंजीकृत दस्तावेज़ के लिए, लेकिन एक बिना स्टाम्प लगें दस्तावेज़ के लिए नहीं क्योंकि धारा 35 के तहत प्रतिबंध पूर्ण है। जैसा कि मैंने ऊपर उल्लेख किया है, धारा 35 के तहत प्रतिबंध को ठीक किया जा सकता है और स्टाम्प शुल्क बाद के चरण में एकत्र किया जा सकता है। इस प्रकार, एन.एन. ग्लोबल (ऊपर) ने इस पहलू पर एस.एम.एस.टी. (ऊपर) को सही ढंग से खारिज कर दिया। ऐतिहासिक रूप से, पृथक्करण सिद्धांत को मध्यस्थता खंड की रक्षा के लिए पेश किया गया था, जिसने बदले में, मध्यस्थों को मुख्य संविदा [75] की वैधता पर निर्णय लेने में सक्षम बनाया। भले ही पृथकता का सिद्धांत और कोम्पेटेंज़ कॉम्पेटेंज़ अलग हैं जैसा कि एन. एन. ग्लोबल (सुप्रा) में उल्लेख किया गया है, दोनों सिद्धांतों का मिलान करने से यह सुनिश्चित होगा कि एक मध्यस्थ वैधता, अस्तित्व के साथ–साथ यदि आवश्यक हो तों आवश्यक मुद्रांकन की आपत्तियों पर निर्णय ले सकता है। कोम्पेटेंज़ कोम्पेटेंज़ के सिद्धांत पर अगले खंड में अधिक विस्तार से चर्चा की गई है।

82. गरवारे (ऊपर) में निर्णय की ओर मुड़ते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि गरवारे (ऊपर) में न्यायालय ने केवल एस बी पी. (ऊपर) पर भरोसा करके पृथक्करण की अवधारणा को खारिज कर दिया, जब उसने कहाः

> "15. सात न्यायाधीशों की पीठ द्वारा निर्धारित विधि को देखते हुए, [एस. बी. पी. (सुप्रा)] प्रतिवादी की ओर से विद्वान वकील द्वारा दिए गए इस तर्क को स्वीकार करना मुश्किल है कि धारा 16 यह स्पष्ट करती है कि मध्यस्थता करार का अपना

एक स्वतंत्र अस्तित्व है, और 1996 के अधिनियम की धारा 11 के तहत एक आवेदन पर निर्णय लेते समय इसे लागू किया जाना चाहिए।

75 एच. एम. होल्ट्ज़मैन और जे. ई. न्यूहॉस, ए गाइड टू द UNCITRAL मॉडल लॉ ऑन इंटरनेशनल कमर्शियल आर्बिट्रेशनःविधायी इतिहास और टिप्पणी (क्लूवर)विधि और कराधान द हेग 1989)

83. एस.बी.पी. (उपर) में, जैसा कि हमने इस राय में पहले देखा है, धारा 11 के स्तर पर एक न्यायाधीश के रूप में विधायी रूप से खारिज कर दिया गया था जो विस्तृत निर्णय ले सकता था और मध्यस्थ को स्थगित किए बिना पूर्व–संदर्भित स्तर पर एक निर्णायक निर्धारण कर सकता था। जैसा कि उपर बताया गया है मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 16 और धारा 11 इंगित करती है कि जब "अस्तित्व" शब्द की बात आती है तो एक ओवरलैप होता है। जैसा कि धारा 16 विशेष रूप से अस्तित्व और वैधता दोनों से संबंधित है जबकि धारा 11 केवल अस्तित्व से संबंधित है, पूर्व को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। इस प्रकार, कोम्पेटेंज़ कोम्पेटेंज़ का सिद्धांत लागू होता है क्योंकि मध्यस्थ एक करार की वैधता पर निर्णय ले सकता है और रेफरल न्यायाधीश को मध्यस्थता करार के अस्तित्व तक अपनी जांच को सीमित करने की आवश्यकता होती है। हालाँकि, एस.बी.पी. (ऊपर) में आम तौर पर यह अभिनिर्धारित किया गया था कि रेफरल न्यायाधीश को सभी पहलुओं पर निर्णय लेना चाहिए। यदि इस तरह के दृष्टिकोण को वर्तमान संदर्भ का उत्तर देने के लिए लागू किया जाना है, तो एक लघु–परीक्षण करना होगा । रेफरल न्यायाधीश द्वारा संचालित किया जाए। यहाँ यह सवाल पूछा जाना चाहिए कि क्या हमें धारा 11 के न्यायाधीश को इतनी सारी चीजों से निपटने के लिए प्रेरित करना चाहिए जो उन्होंने प्रवीण इलेक्ट्रिकल्स (उपरोक्त) में वर्णित एलिस इन वंडरलैंड नाटक में लिटिल एलिस जैसी स्थिति में छोड़ दी थी ?

84. एन. एन. ग्लोबल (ऊपर) में रेफरल क्रम में, गरवारे (ऊपर) में अनुच्छेद 29 पर संदेह किया गया था। गरवारे (ऊपर) निर्णय में, यह अदालत ने यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड पर भरोसा किया। वी.हुंडई इंजीनियरिंग एंड कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड [76] (संक्षेप में "हुंडई इंजीनियरिंग) इसकें बाद होने वाली चर्चा के लिये पैराग्राफ 29 नीचे दिया गया है

> "29. हुंडई इंजीनियरिंग के मामलें में यह निर्णय [यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम.हुंडई हुंडई इंजीनियरिंग एण्ड कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड, (2018) 17 एस. सी. सी. 607:(2019) 2 एस. सी. सी. (सी. आई. वी.) 530] इस मायने में महत्वपूर्ण है कि जो विशेष रूप से विचाराधीन था वह एक मध्यस्थता खंड था जो केवल तभी सक्रिय होगा जब कोई बीमाकर्ता दायित्व स्वीकार या स्वीकार करता है। तथ्यों के आधार पर यह पाया गया कि बीमाकर्ता ने दावे को अस्वीकार कर दिया, हालांकि एक मध्यस्थता खंड मौजूद था, इसलिए पॉलिसी में, यह विधि में मौजूद नहीं होगा, जैसा कि उस फैसले में माना गया था, जब एक महत्वपूर्ण तथ्य पेश किया जाता है, अर्थात्, बीमाकर्ता ने दायित्व को स्वीकार या स्वीकार नहीं किया है। वैसा ही वर्तमान मामले के तथ्यों में यह स्पष्ट है कि उप–संविदा में निहित मध्यस्थता खंड तब तक विधि के मामले के रूप में " अस्तित्व में " नहीं होगा जब तक कि उप–संविदा पर विधिवत स्टाम्प नहीं लग जाती, जैसा कि हम ऊपर मान चुके हैं। यह तर्क कि धारा 11 (6–ए) धारा 8 के विपरीत "अस्तित्व" से संबंधित है। धारा 16 और

धारा 45, जो एक मध्यस्थता करार की "वैधता" से संबंधित हैं, का उत्तर हुंडई हुंडई इंजीनियरिंग में अभिव्यक्ति "अस्तित्व" की इस न्यायालय की समझ से मिलता है। मामला [यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम. हुंडई इंजीनियरिंग कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड, (2018) 17 एस. सी. सी. 607:(2019) 2 एस. सी. सी. (सी. आई. वी.) 530] जैसा कि हम अनुसरण करते हैं।"

76 (2018) 7 एससीसी 607 ए

84.1. हुंडई (ऊपर) में, स्टांम्पिंग का मुद्दा बिल्कुल भी विचार का विषय नहीं था और न्यायालय ने विवाद की मध्यस्थता पर निर्णय लिया और क्या यह एक अपवादात्मक मामला था और उस प्रक्रिया में, यह अभिनिर्धारित किया कि मध्यस्थता करार "अस्तित्व में नहीं होगा ", क्योंकि मध्यस्थता खंड इस बात पर निर्भर था कि बीमाकर्ता ने दायित्व स्वीकार किया है या नहीं। इन परिस्थितियों में, हुंडई में प्रस्ताव का अनुप्रयोग गरवारे (ऊपर) में (अनस्टैम्प) बिना स्टाम्प लगें दस्तावेज़ के मुद्दे से निपटने के लिए अंग्रेज़ी (ऊपर) एक गलत दृष्टिकोण प्रतीत होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि गरवारे (ऊपर) में, न्यायालय ने पाया कि स्टाम्पिंग का मुद्दा विधि में मध्यस्थता करार के अस्तित्व में जाएगा। यह हुंडई (सुप्रा) में

प्रतिपादित सिद्धांत को गलत तरीके से आयात करके किया गया था और इसलिए पहले के हुंडई (सुप्रा), जिसका दस्तावेज़ पर स्टाम्प लगाने से कोई लेना–देना नहीं था, को अलग किया जाना चाहिए था। इस बिंदु पर, हम लर्नड एमिकस के तर्क पर भी ध्यान दे सकते हैं, जिन्होंने तर्क दिया था कि हुंडई इंजीनियरिग (ऊपर) में न्यायालय नें ओरिएंटल बीमा कंपनी लिमिटेड बनाम नरभेरम पावर एंड स्टील (पी) लिमिटेड [77] पर भरोसा किया था,जिसका अवसर कभी नहीं था धारा 11 (6ए) की व्याख्या करने के लिये , इन कारणों से, मेरा विचार है कि गरवारे (सुप्रा) पर हुंडई (सुप्रा) सिद्धांत को लागू करना स्वीकार्य नहीं है। नतीजतन, विद्या द्रोलिया (ऊपर) में पैरा 147.1 में न्यायालय का निष्कर्ष उपरोक्त पैराग्राफ पर भरोसा रखता है। गरवारे (ऊपर) में अनुच्छेद 29 भी गलत प्रतीत होता है। इसलिए एन.एन. ग्लोबल (ऊपर) में विधि का प्रस्ताव सही पाया गया है।

<u>एल. कोम्पेटेंज़ कोम्पेटेंज़ और भारत में न्यायिक गतिरोध का मुद्दा</u>

85. कानूनी विद्वानों ने नोट किया है कि कोम्पेटेंज़ कॉम्पेटेंज़ के सिद्धांत को विभिन्न देशों में विभिन्न रूपों में अपनाया गया है। UNCITRAL मॉडल लॉ[78] के अनुच्छेद 16 ने कोम्पेटेंज़ कॉम्पेटेंज़ के सिद्धांत को अपनाया जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि एक मध्यस्थ न्यायाधिकरण के पास अपने अधिकार क्षेत्र में जांच करने और शासन करने का अधिकार क्षेत्र है। हाल ही में हेनरी शाइन, इंक. बनाम आर्चर एंड व्हाइट सेल्स, इंक.[79] मामलें में अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले में यह कहा गया था कि जहां एक मध्यस्थता खंड मध्यस्थता के निर्णय को प्रस्तुत करता है, अदालतों को कोई अधिकार होना चाहिए, भले ही वे पक्ष में तर्क को "पूरी तरह से आधारहीन" मानते हों। न्यायमूर्ति ब्रेट कैवनॉग ने कहाः

> "जिस तरह एक न्यायालय एक योग्यता प्रश्न का निर्णय नहीं कर सकता है जिसे पक्षों ने एक मध्यस्थ को सौंपा है, उसी तरह एक न्यायालय एक मध्यस्थता प्रश्न का निर्णय नहीं कर सकता है जिसे पक्षों ने एक मध्यस्थ को सौंपा है।"

77 (2018) 6 एस. सी. सी. 534

78 जॉन जे. वर्जनसेल्लो III, मध्यस्थों के अधिकार क्षेत्र को कौन तय करता है? अन्तरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में पृथकता और क्षमता–क्षमता, वेंडरबिल्ट जर्नल ऑफ अन्तरराष्ट्रीय विधि, खंड। 36, नंबर 4, अक्टूबर 2003

79 2019 एस. सी. सी. ऑनलाइन यू. एस. एस. सी. 1 ए

आगे बढ़ते हुए, मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 16 (1) यह नीचे लिखा हैः

"16. मध्यस्थता न्यायाधिकरण की अपनी अधिकारिता पर निर्णय लेने की क्षमता–

(1) मध्यस्थता न्यायाधिकरण मध्यस्थता करार के अस्तित्व या वैधता के संबंध में किसी भी आपत्ति पर निर्णय सहित अपनी अधिकारिता पर निर्णय दे सकता है, और उस उद्देश्य के लिए, –

(क) एक मध्यस्थता खंड जो एक संविदा का हिस्सा है, उसे संविदा की अन्य शर्तों से स्वतंत्र करार के रूप में माना जाएगा; और

(ख) मध्यस्थता न्यायाधिकरण का यह निर्णय कि संविदा शून्य है, न्यायिक रूप से मध्यस्थता खंड की अयोग्यता को लागू नहीं करेगा।"

85.1 मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 16 (1) से यह स्पष्ट है जो "सम्मिलित" शब्द का उपयोग करता है कि एक मध्यस्थता न्यायाधिकरण न केवल अपने अधिकार क्षेत्र पर बल्कि अस्तित्व या वैधता पर "किसी भी" आपत्तियों पर भी निर्णय ले सकता है। वेदरफोर्ड ऑइल्टूल मिडिल ईस्ट लिमिटेड बनाम बेकर ह्यूजेस सिंगापुर पीटीई [80] मामलें में यह न्यायालय जहाँ मुद्दा एक अनस्टैम्प्ड दस्तावेज़ की वैधता से संबंधित था, नीचे उल्लिखित हैः

> "8. उपरोक्त वर्णित प्रावधान के नंगे पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि मध्यस्थता न्यायाधिकरण न केवल अपने अधिकार क्षेत्र पर शासन करने के लिए सक्षम है, बल्कि मध्यस्थता करार के अस्तित्व या वैधता के मुद्दे पर भी निर्णय लेने के लिए सक्षम है। यह आगे स्पष्ट करता है कि एक मध्यस्थता खंड जो एक संविदा का हिस्सा है, उसे अधिनियम की अन्य शर्तों से स्वतंत्र एक करार के रूप में माना जाएगा, और यह कि मध्यस्थता न्यायाधिकरण द्वारा यह निर्णय कि संविदा शून्य और अकृत है, न्यायिक रूप से मध्यस्थता खंड की अयोग्यता को लागू नहीं करेगा।"

85.2 .एन.एन. ग्लोबल (ऊपर), में कोम्पेटेंज़ कोम्पेटेंज़ सिद्धांतों पर चर्चा करतें हुये यह नोट किया गया थाः

> " 4.3.कोम्पेटेंज़–कोम्पेटेंज़ के सिद्धांत का तात्पर्य है कि मध्यस्थता न्यायाधिकरण के पास अपने अधिकार क्षेत्र को निर्धारित करने और शासन करने की क्षमता है, जिसमें मध्यस्थता करार के अस्तित्व, वैधता और दायरे के संबंध में आपत्तियां शामिल हैं, जो

8 मध्यस्थता अधिनियम के तहत,कार्यवाही के बाद के चरण में अदालतों द्वारा न्यायिक जांच के अधीन है। अंतिम निर्णय पारित होने के बाद ही न्यायालय के समक्ष चुनौती कायम रखी जा सकती है। जैसा कि धारा 16 की उप–धारा (6) द्वारा प्रदान किया गया है। जिस स्तर पर न्यायाधिकरण का अपने अधिकार क्षेत्र के संबंध में आदेश न्यायिक समीक्षा के लिए उत्तरदायी है, वह क्षेत्राधिकार से क्षेत्राधिकार में भिन्न होता है। कोम्पेटेंज़–कोम्पेटेंज़ सिद्धांत पूर्व–संदर्भ स्तर पर न्यायिक हस्तक्षेप को कम करने और मध्यस्थता न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र के मुद्दे पर उठाई गई अप्रत्याशित चुनौतियों को कम करने के लिए हुआ है।"

80 2022 एस. सी. सी. ऑनलाइन 1464 ए

85.3 न्यायमूर्ति ठक्कर ने एस.बी.पी. (उपरोक्त) में अपनी असहमति वाली राय में इस बात पर जोर दिया, जहां यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विधायिका का इरादा न्यायाधिकरण को अपने अधिकार क्षेत्र पर शासन करने की अनुमति देना है और धारा 11 (6) के तहत मुख्य न्यायाधीश का कार्य केवल "बिना समय बर्बाद किए एक मध्यस्थ की नियुक्ति करना" है।"

85.4 . इस बिंदु पर हम जॉर्ज ए बर्मन का उल्लेख करके लाभान्वित हो सकते हैं। जिनके लेख का शीर्षक था "मध्यस्थता की दहलीज पर न्यायालयो की भूमिका [81] शीर्षक से इस चर्चा में काफी प्रासंगिकता होगीः

"न्यायिक भागीदारी के स्पेक्ट्रम के ध्रुवीय छोर पर स्थितियां विशेष रूप से आकर्षक नहीं हैं। एक ऐसी प्रणाली जो मध्यस्थता से पहले मध्यस्थता करारों की प्रवर्तनीयता के सभी पहलुओं में पूर्ण न्यायिक जांच की अनुमति देती है, वह मध्यस्थता के आधार परिसर के विपरीत बहुत बड़े पैमाने पर लागत, देरी और न्यायिक भागीदारी को आमंत्रित करने का जोखिम उठाती है। दूसरी ओर, एक प्रणाली जो इन उद्देश्यों के लिए न्यायालय तक पहुंच को पूरी तरह से सीमा से बाहर मानती है, चाहे चुनौती की गंभीरता कुछ भी हो, मध्यस्थता वैधता के मामले में बहुत बड़ी कीमत चुकाने का जोखिम उठाती है।प्रभावकारिता कम कठोर साधनों के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।"

85.5. भारतीय संदर्भ के लिए विशेष रूप से, कोम्पेटेंज़ कॉम्पेटेंज़ पर चर्चा करते समय, अत्यधिक बोझ वाली न्यायपालिका और हमारे न्यायालयों में लंबित मामलों की भारी संख्या को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। यदि न्यायालय से मध्यस्थ की नियुक्ति के स्तर पर न केवल अस्तित्व के मुद्दे पर बल्कि करार की वैधता पर भी विचार करने की अपेक्षा की जाती है, तो मध्यस्थता को प्राथमिकता देने के पीछे का इरादा विफल हो जाएगा। इस संदर्भ में, 246 वीं एल.सी.आई. रिपोर्ट (ऊपर) में निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गई थींः

"22. मध्यस्थता की कार्यवाही में न्यायिक हस्तक्षेप मध्यस्थता प्रक्रिया में देरी को काफी बढ़ाता है और अंततः मध्यस्थता के लाभों को नकारता है। इस तरह की देरी के दो कारण हो सकते हैं। पहला, न्यायिक प्रणाली काम के बोझ से बोझिल है और मामलों, विशेष रूप से वाणिज्यिक मामलों को आवश्यक गति

और प्रेषण के साथ निपटाने के लिए पर्याप्त रूप से कुशल नहीं है। दूसरा न्यायिक हस्तक्षेप के लिए प्रतिबंध (अधिनियम की धारा 5 के अस्तित्व के बावजूद) भारतीय न्यायपालिका द्वारा लगातार निम्न सीमा पर निर्धारित किया गया है, जो न्यायालय में कई और मामलों को स्वीकार करने में बदल जाता है जो अधिनियम से उत्पन्न होते हैं या उससे संबंधित होते हैं। [जोर दिया गया।]

81 जॉर्ज ए. बर्मन, मध्यस्थता की सीमा पर राष्ट्रीय न्यायालयों की भूमिका, 28 अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता की अमेरिकी समीक्षा 291 (2017) यहां उपलब्ध हैः// छात्रवृत्ति। विधि।कोलंबिया।शिक्षा/संकाय _ छात्रवृत्ति/3012 ए

85.6. 246 वीं एल.सी आई. रिपोर्ट (ऊपर उल्लिखित) द्वारा उल्लिखित मामलों की बड़ी संख्या में लंबित मामलों को ध्यान में रखते हुए , यह आवश्यक है कि मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 16 को पूरी तरह से लागू किया जाए। भारत में मध्यस्थता विधि के इतिहास पर चर्चा करते हुए, 246 वीं एल. सी. आई. रिपोर्ट (ऊपर) में गुरु नानक फाउंडेशन बनाम रतन सिंह एंड संस [82] के मामले में न्यायमूर्ति डी.डी. ए. देसाई की टिप्पणियों का हवाला दिया गया है। जहां मध्यस्थता अधिनियम, 1940 के कार्यकरण पर टिप्पणी करते हुए, यह नोट किया गया कि न्यायालयों में मध्यस्थता कार्यवाही की चुनौती ने "वकीलों को हंसाया है और कानूनी दार्शनिकों को रूलाया " आज की स्थिति अलग नहीं है जैसा कि हाल ही में इस न्यायालय ने मैसर्स श्री विष्णु ई कंस्ट्रशन बनाम इंजीनियर इन चीफ मिलिट्री इंजीनियरिंग सर्विस और अन्य [83] के मामले में कहा था जहां यह नोट किया गया कि धारा 11 के तहत कई आवेदनों का निर्णय लिया गया और चार साल की अवधि के बाद उनका निपटारा किया गया, जिसने संशोधित मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के उद्देश्य को विफल कर दिया। इस तरह का अवलोकन तेलंगाना उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित धारा 11 आवेदनों की संख्या पर एक विस्तृत रिपोर्ट/बयान पर किया गया था। इस न्यायालय ने देखा कि वर्ष 2006 में दायर एक आवेदन भी अभी भी लंबित था। तदनुसार देश भर के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीशों से यह सुनिश्चित करने का अनुरोध किया गया था कि धारा 11 के तहत आवेदनों पर छह महीने की अवधि के भीतर निर्णय लिया जाए।

85.7 इस न्यायालय नें इंटरकांटिनेंटल होटल्स जी. ग्रुप (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड बनाम वाटरलाइन होटल्स प्राइवेट लिमिटेड के मामलें में हाल के फैसले में अपर्याप्त/गलत तरीके से स्टाम्प लगे दस्तावेजों को जारी करने के लिए, धारा 11 (6) के तहत मध्यस्थ नियुक्त करने की कार्यवाही की और विचार करते हुए –मध्यस्थता से निपटने के दौरान संवेदनशीलता। इसने स्टाम्पिग के मुद्दे को बाद में तय करने के लिए खुला छोड़ दिया।

85.8 महत्वपूर्ण रूप से, मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 (13)यह प्रावधान है कि मध्यस्थों की नियुक्ति 60 दिनों के भीतर की जानी चाहिए और इस तरह के प्रावधान से यह पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि पूर्व–संदर्भित स्तर पर न्यायालयों द्वारा ठोस निर्णय नहीं लिया जा सकता है। गरवारे (ऊपर) में इसका प्रचार किया गया था, लेकिन न्यायालय ने इसके बजाय निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ निर्णय के लिए 45 दिनों और मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए 15 दिनों की समय सीमा निर्धारित कीः

82 (1981) 4 एस. सी. सी. 634

83 एसएलपी (सी) सं. 5306/2022 दिनांक 1.4.2022 84 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 83 ए

> "37. महाराष्ट्र स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 और 34, जो कि राजस्व की सुरक्षा से संबंधित एक सामान्य क़ानून है, और 1996 के अधिनियम की धारा 11 (13), जो विशेष रूप से एक मध्यस्थ की नियुक्ति द्वारा विवादों के त्वरित समाधान पर लागू होती है, में निहित प्रावधानों को सुसंगत बनाने का एक उचित तरीका यह घोषणा करना है कि धारा 11 के आवेदन के साथ आगे बढ़ते समय, उच्च न्यायालय को उस लिखत को परिबद्ध करना चाहिए जिसने स्टाम्प शुल्क वहन नहीं किया है और इसे महाराष्ट्र स्टाम्प अधिनियम के तहत प्राधिकरण को सौंप देना चाहिए, जो तब स्टाम्प शुल्क और शस्ति (यदि कोई हो) के भुगतान के बारे में जल्द से जल्द निर्णय लेगा, और अधिमानतः उस तारीख से 45 दिनों की अवधि के भीतर जिस दिन प्राधिकरण को लिखत प्राप्त होगी।जैसे ही दस्तावेज़ पर स्टाम्प शुल्क और शास्ति (यदि कोई हो) का भुगतान किया जाता है, कोई भी पक्ष दस्तावेज़ को उच्च न्यायालय के ध्यान में ला सकता है, जो तब धारा 11 के आवेदन की तेजी से सुनवाई और निपटान के लिए आगे बढ़ेगा।यह यह भी सुनिश्चित करेगा कि एक वर्जन धारा 11 के आवेदन की अनुमति मिलने के बाद और एक मध्यस्थ नियुक्त होने के बाद, मध्यस्थ 1996 के अधिनियम की धारा 29ए द्वारा प्रदान की गई समय सीमा के भीतर विवाद का फैसला करने के लिए आगे बढ़ सकता है।

85.9 गरवारे (ऊपर) में उपरोक्त कथन, जैसा कि स्पष्ट है, उस विधायी आदेश के खिलाफ है जिसने मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 (13) के तहत मध्यस्थों की नियुक्ति के लिए 60 दिनों की समय सीमा निर्धारित की थी। इस आलोचना को भी हल्के में नहीं लिया जा सकता है कि 45 दिनों की समय सीमा अव्यवहारिक होगी।

एन. विद्या द्रोलिया पर चर्चा

86. यह मामला मकान मालिक–किरायेदार विवादों की मध्यस्थता और उस मंच से संबंधित था जिसके समक्ष मध्यस्थता का मुद्दा था। सबसें पहले एक कों उठाया जाना चाहिए। जैसा कि नीचे उद्धृत अनुच्छेद 146 में विचाराधीन मुद्दे के संदर्भ पर फिर से विचार करने की आवश्यकता हो सकती है।

"146. अब हम इस प्रश्न की जांच करने के लिए आगे बढ़ते हैं कि क्या धारा 11 में "अस्तित्व" शब्द केवल संविदा गठन (क्या कोई मध्यस्थता करार है) को संदर्भित करता है और प्रवर्तन (वैधता) के प्रश्न को बाहर करता है और इसलिए बाद वाला निर्देश स्तर पर न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर आता है।न्यायशास्त्र और पाठ्यवाद पर मध्यस्थता करार के अस्तित्व और मध्यस्थता करार की वैधता के बीच अंतर करना संभव है।इस तरह की व्याख्या "अस्तित्व" शब्द के स्पष्ट अर्थ से समर्थन प्राप्त कर सकती है।हालाँकि, न्यायशास्त्र और प्रासंगिकता पर यह मानना भी समान रूप से संभव है कि एक करार का कोई अस्तित्व नहीं है यदि यह प्रर्वतनीय नहीं है और बाध्यकारी नहीं है। एक मध्यस्थता करार का अस्तित्व एक वैध करार का अनुमान लगाता है जिसे अदालत द्वारा पक्षकारों को मध्यस्थता के लिए खारिज करके लागू किया जाएगा। कानूनी और सादे अर्थ की व्याख्या परिभाषा खंड सहित प्रासंगिक पृष्ठभूमि के विपरीत होगी और इसके परिणामस्वरूप अप्रिय परिणाम होंगे। अस्तित्व की एक उचित और न्यायपूर्ण व्याख्या के लिए संदर्भ को समझने की आवश्यकता होती है। बाध्यकारी और प्रवर्तनीय मध्यस्थता करार के लिए लागू उद्देश्य और प्रासंगिक कानूनी मानदंड। लिखित रूप में प्रमाणित करार का कोई अर्थ नहीं है जब तक कि पक्षों को शर्तों का पालन करने और उनका पालन करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है।एक पक्ष एक अप्रवर्तनीय दस्तावेज़ के आधार पर अधिकारों का दावा नहीं कर सकता है।इस प्रकार, यह मानने के लिए अच्छे कारण हैं कि एक मध्यस्थता करार केवल तभी मौजूद होता है जब वह वैध और कानूनी होता है। एक शून्य और अप्रवर्तनीय समझ कुछ भी करने के लिए कोई करार नहीं है।मध्यस्थता करार के अस्तित्व का अर्थ है एक मध्यस्थता करार जो मध्यस्थता अधिनियम और संविदा अधिनियम दोनों की वैधानिक आवश्यकताओं को पूरा करता है और संतुष्ट करता है और जब यह विधि में प्रर्वतनीय होता है।"

86.1. जैसा कि देखा जा सकता है, न्यायालय ने अस्तित्व और वैधता की बराबरी की और यह अभिनिर्धारित किया गया कि एक संविदा केवल तभी मौजूद है जब वह वैध हो। और यह केवल तभी मान्य है जब यह प्रर्वतनीय हो। जहां तक वर्तमान मामले में मुद्दे का संबंध है, अंग्रेजी विधि के संदर्भ में मध्यस्थता [85] (24 वां संस्करण) पर रसेल में लेखकों की टिप्पणियां इस संदर्भ में उपयोगी संकेत प्रदान करती हैं:

" मध्यस्थता करार का अस्तित्व और वैधता।.....एक न्यायालय मध्यस्थता करार के अस्तित्व के बीच अंतर करता है, जो न्यायालय के लिए एक मामला होने की संभावना है (जब तक कि अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के तहत रोक नहीं दी जाती है) और इसकी वैधता के बीच अंतर करता है, जो कि जहां भी संभव हो मध्यस्थों पर छोड़ दिया जाना चाहिए।"

[मूल में जोर]बी.

86.2 मैं पहले ही चर्चा कर चुका हूँ कि भारतीय शासन में, धारा 16 के तहत मध्यस्थ को "अस्तित्व" और "वैधता" पर निर्णय लेने का अधिकार क्षेत्र है। धारा 11 (6ए) के एक सादे अध्ययन से पता चलता है कि न्यायालय द्वारा जांच केवल "अस्तित्व" तक ही

सीमित है और "वैधता" तक नहीं।इसके अलावा, वर्तमान संदर्भ में, हम केवल स्टाम्पिंग की औपचारिक आवश्यकता से संबंधित हैं न कि मध्यस्थता से। स्टाम्पिंग की औपचारिक आवश्यकता पर एक मध्यस्थता करार को शून्य बनाने के लिए प्रासंगिक व्याख्या को लागू करने से मध्यस्थता अधिनियम, 1996 का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा। किसी दस्तावेज़ को शून्य या अप्रवर्तनीय नहीं बनाया जा सकता है, विशेष रूप से यदि दोष स्टाम्प अधिनियम, 1899 के तहत ठीक किया जा सकता है जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है।इ सके अलावा, स्टाम्प अधिनियम, 1899 के किसी भी प्रावधान का किसी भी दस्तावेज़ को शून्य करने का प्रभाव नहीं है। इस प्रकार, हम विद्या द्रोलिया (ऊपर) में इस हद तक स्थिति पाते हैं कि यह गरवारे (ऊपर) पर निर्भर करता है जो गलत है।

85 टिप्पणी 58 पर सुप्रा; अध्याय 7, पृ. 369 क

निष्कर्ष

87. चार्ल्स इवांस ह्यूजेस को याद करते हुए, जिनके शब्दों के साथ हमने निर्णय शुरू किया था, आइए हम उसी न्यायाधीश के निम्नलिखित उद्धरण के साथ समाप्त करते हैं जो प्रॉपेट्स बाय ऑनर में परिलक्षित होता है:[86]

> "कुछ लोग हैं जो सोचते हैं कि यह वांछनीय है कि असहमति का खुलासा नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि वे निर्णय के बल से विचलित होते हैं। निस्संदेह वे ऐसा करते हैं।जब विश्वास के त्याग के बिना सर्वसम्मति प्राप्त की जा सकती है, तो यह जनता के विश्वास के लिए निर्णय की दृढ़ता से सराहना करता है। लेकिन सर्वसम्मति, जो केवल औपचारिक है, जो मजबूत, परस्पर विरोधी विचारों की कीमत पर दर्ज की जाती है, अंतिम उपाय की न्यायालय में वांछनीय नहीं है, उस समय जनमत पर जो भी प्रभाव पड़ सकता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि अंततः अदालत को जनता के विश्वास में न्यायाधीशों के चरित्र और स्वतंत्रता को बनाए रखना चाहिए।"

87.1 न्यायिक निर्णय लेने की प्रक्रिया में असहमति की प्रथा विचारशील लोकतंत्र के प्रति संवैधानिक प्रतिबद्धता को प्रकट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। न्यायाधीशों को अलग-अलग विचार व्यक्त करने और विधि और इसकी व्याख्या के बारे में बातचीत करने की अनुमति देने से संभावित रूप से विधि की अधिक सूक्ष्म और परिष्कृत समझ पैदा हो सकती है, क्योंकि न्यायालय प्रतिस्पर्धी व्याख्याओं से जूझता है और उन्हें सैद्धांतिक तरीके से मिलाने का प्रयास करता है।

87.2 इसी तरह की स्थिति का सामना करते हुए, जो आज हमारे सामने है, जहां वर्तमान राय अल्पमत में है, अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति स्टीफन ब्रेयर ने अपनी असहमति वाली राय [87] संघीय मध्यस्थता अधिनियम (एफ.ए.ए.) के संदर्भ में प्रश्न के बारे में बात की गई न केवल क़ानून के उद्देश्य की बल्कि संभावित उद्देश्य की भी व्याख्या करना। परिणामः

"किसी क़ानून की व्याख्या करते समय, न केवल क़ानून के शाब्दिक शब्दों पर, बल्कि क़ानून के उद्देश्यों और हमारी व्याख्या के संभावित परिणामों पर भी विचार करना अक्सर सहायक होता है। अन्यथा, हम एक ऐसी व्याख्या को अपनाने का जोखिम उठाते हैं, जो पाठ के अनुरूप होने पर भी अनावश्यक जटिलता और भ्रम पैदा करती है।"

87.3. मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के अधिनियमन के पीछे का उद्देश्य, अन्य बातों के साथ–साथ, प्रक्रियात्मक जटिलता और न्यायालयों के समक्ष मुकदमेबाजी में देरी से बचना था। धारा 11 के स्तर पर इम्पाउंडिंग और स्टाम्पिंग संशोधित मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के उद्देश्य को विफल कर देगा क्योंकि मध्यस्थता करारों का प्रवर्तन किसी ऐसे मुद्दे पर रुका होगा, जिसे बाद के स्तर पर हल किया जा सकता है। मध्यस्थ के स्तर तक स्टाम्पिंग को स्थगित करना मेरे विचार में मध्यस्थता अधिनियम, 1996 और स्टाम्पिंग दोनों के उद्देश्य को प्राप्त करेगा।

86 एलन बार्थ, प्रॉफेट्स विद ऑनर, 1974 एड। पी 3–6 ए

87 बैंजेरो बनाम वाल्टर्स, 596 यू. एस. 2022 ए

87.4. मध्यस्थता के लिए मामलों को संदर्भित करने वाले न्यायाधीश के अधिकार क्षेत्र की रूपरेखा को भ्रम और अस्पष्टता से ग्रस्त होने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। जैसा कि देखा जा सकता है, वर्तमान 5 न्यायाधीश–पीठ खंडित फैसले के कारण हमें भेजे गए मुद्दे पर स्पष्टता प्रदान नहीं कर सके, जिससे कानूनी अनिश्चितता पैदा हो गई। इस न्यायालय में एक बड़ी पीठ का गठन निश्चित रूप से आम बात नहीं है क्योंकि आखिरी वर्जन 2017 में 7 न्यायाधीशों की बैठक हुई थी। लगभग 5 मामले जैसा कि मुझे सूचित किया गया है, पहले से ही 7 न्यायाधीशों की पीठ के ध्यान का इंतजार कर रहे हैं। ऐसी पृष्ठभूमि में, अधिनियमों के बीच परस्पर क्रिया और मध्यस्थता कार्यवाही के दौरान या तो रेफरल स्तर पर या उसके बाद इसके उद्देश्य को कैसे प्राप्त किया जाना है, यह इतना महत्वपूर्ण है कि इसे एक बड़ी पीठ द्वारा स्पष्टीकरणात्मक निर्णय के लिए स्थगित नहीं किया जा सकता है। इसलिए, मैं राज्य की विधायी शाखा से उन संशोधनों पर पुनर्विचार करने की अपील करूंगा जो स्टाम्प अधिनियम, 1899 में मध्यस्थता अधिनियम, 1996 को लागू करने में आवश्यक हो सकते हैं।राज्य एक सुविधाजनक तंत्र स्थापित कर सकता है जो मध्यस्थता अधिनियम, 1996 और स्टाम्प अधिनियम, 1899 दोनों में विसंगतियों को दूर करेगा। यदि हम मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के विधायी इरादे को देखें और हमारा देश मध्यस्थता के लिए पसंद के गंतव्य के रूप में क्या होने की उम्मीद कर रहा है, तो मेरा मानना है कि विधायी इरादे को पराजित किए बिना और मध्यस्थता के लिए त्वरित रेफरल को विफल किए बिना रचनात्मक तरीके से वैधानिक अंतःक्रिया की व्याख्या करना उचित होगा।

88. उपरोक्त चर्चा के बाद, संदर्भित मुद्दे पर मेरी राय इस प्रकार हैः

(i) मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 11 के तहत पूर्व–संदर्भ स्तर में, किसी न्यायालय द्वारा स्टाम्पिंग और ज़ब्त करने की जाँच करने की आवश्यकता नहीं है।

(ii) किसी मामले को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करनें कें उददेश्य सें,मूल संविदा/लिखत की गैर–स्टाम्पिंग/अपर्याप्त स्टाम्प मध्यस्थता करार को विधि में

अस्तित्वहीन और अप्रवर्तनीय/शून्य करार नहीं बनाएगी । गरवारे (ऊपर) ने हुंडई (ऊपर) में इस सिद्धांत को गलत तरीके से लागू किया कि एक मध्यस्थता करार अस्तित्व में नहीं होगा यदि उस पर स्टाम्प नहीं लगाई गई है /अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगाई गई है। एक मध्यस्थता करार को शून्य नहीं माना जाना चाहिए यदि वह स्टाम्प की कमी से पीड़ित है जो एक उपचार योग्य दोष है। इस हद तक, गरवारे (ऊपर) और हुंडई (ऊपर) नें सही विधि निर्धारित नहीं किया हैं।

(iii) एस.एम.एस.टी. (ऊपर) में निर्णय को खारिज कर दिया गया है। गरवारे (ऊपर) में अनुच्छेद 22 और 29, जिन्हें विद्या द्रोलिया (ऊपर) में अनुच्छेद 146 और 147 में अनुमोदित किया गया था, उस हद तक खारिज कर दिए गए हैं।

89. न्यायमित्र के रूप में विद्वान वरिष्ठ वकील श्री गौरव बनर्जी द्वारा प्रदान की गई अमूल्य सहायता इस राय को अंतिम रूप देने में विशेष उल्लेख के योग्य है।

बिभूति भूषण बोस संदर्भ ने जवाब दिया।

(सहायकः शुभांश ठाकुर, साहिल राजन

और राहुल राठी, एलसीआरए)